वन्देमातरम्।

[श्]री ग्रन्थ भूषण माला-रत्न १

विचित्र-परिवर्त्तन।

(एक राष्ट्रीय उपन्यास)

गिरे पसीना नहीं, रुधिर भी, विचलित हो मत,
विजय-सुमन की सेज बिछाता है साहससत्।
विघ्न-शिला के बाद रखा जो सुखप्रद निर्मल,
तुमको भी हे बन्धु! मिलेगा वह स्वराज्य-फल॥

लेखक—

'सेवक'

प्रथम संस्करण]

मेरी-प्रतिज्ञा

हे जन्मभूमि जननी ! मै तुझको आदरूँगा,
निज बाहुबल से तेरे संकट सभी हरूँगा ।
निज बुद्धिवाक्य-बल से साहित्य घर भरूँगा,
सम्पत्ति सारी अपनी चरणो मे तव धरूँगा ॥
तन, मन, वचन औ धनसे सेवा तेरी करूँगा ।
तेरे लिये जिऊँगा तेरे लिये मरूँगा ॥

दुर्लभ शरीर न[illegible] दि[illegible] है,
फल, फूल, अन्न देकर परि[illegible] है।
घी, दूध, नीर तेरा भरपेट पिया है,
इस हेतु मैने मन मे दृढ नेम यह लिया है ॥
तन, मन, वचन और धन से सेवा तेरी करूँगा ।
तेरे लिये जिऊँगा तेरे लिये मरूँगा ॥

जननी ! सुप्रेम तेरा मन मे मेरे भरा है,
निज देश-भाइयो का शुभ नेह भी खरा है ।
चातक के चित्त मे जबतक स्वाती का आसरा है,
तबतक के हेतु मैने मन मे यही धरा है ॥
तन, मन, वचन औ धन से सेवा तेरी करूँगा ।
तेरे लिये जिऊँगा, तेरे लिये मरूँगा ॥

आवेगा कब सुदिन वह जब मै जवान हूँगा ?
कर मात 'मालवी' को 'दादा' समान हूँगा ।
कब लाजपति बनूँगा, ताता सुजान हूँगा ?

होकर सुरेन्द्र सा भी हरदम यही चहूँगा—
तन, मन, वचन औ धन से सेवा तेरी करूँगा।
तेरे लिये जिऊँगा तेरे लिये मरूँगा॥

देवी सरोजिनी सी पाऊँ अगर सुवानी,
विद्या, चतुर तिलक की मेहता की बुद्धिमानी।
दृढयुक्त गोखले की सैयद की छेड़खानी,
तो भी सदा रटूँगा बस एक यह कहानी—
तन, मन, बचन औ धन से सेवा तेरी करूँगा।
तेरे लिये जिऊँगा तेरे लिये मरूँगा॥

आयेगी यदि विपत्ति कुछ हसकर उसे सहूँगा,
सेवामे तेरी माता! तत्पर सदा रहूँगा।
सम्मान, धन, सुपदवी, कुछ भी न मै चहूँगा,
कहता हूँ, कह चुका हूँ आगे यही कहूँगा॥
तन, मन, बचन औ धनसे सेवा तेरी करूँगा।
तेरे लिये जिऊँगा तेरे लिये मरूँगा॥

सुन ली है तेरी महिमा ग्रन्थो मे जो बखानी,
पर देखता नही हूँ सम्पत्ति वह पुरानी।
लख 'दीन' हीन तुझको पचता नहीं है पानी,
इस हेतु पैज मैने है अपने मन मे ठानी॥
तन, मन, बचन औ धन से सेवा तेरी करूँगा।
तेरे लिये जिऊँगा तेरे लिये मरूँगा॥

स्वतंत्रता

नरक ही मे बास हो पर नर नहीं परतंत्र हो,
हे दयामय ईश ! हमको शीघ्र अब यह मंत्र दो।
कष्ट सहते भी सदा स्वाधीनता से प्रेम हो,
आधीनता मे दूसरो की सुख हमे अक्षेम हो ॥
झोपड़ी जरजर भली हो राज-मन्दिर से हमे,
रेशमी-पट त्याग रुचिकर नग्न रहना हो हमे।
रौप्य, कंचन से महा प्रिय मृत्तिका के पात्र हों,
निर्धन, निराश्रय होइ के भी 'स्वाधीनता' के पात्र हों ॥
'स्वाधीनता' पर वार दे त्रैलोक्य की सब सम्पदा,
झेलनी ही क्यो न हो दुस्तर भयकर आपदा ?
भूख, तृष्णा का गला हम घोट दे, मन मोड़ दे,
मुक्ति के आकृष्टि करने के लिये सुख छोड़ दे ॥
परतन्त्रता के साथ कोई यदि हमे पीयूष दे,
रोग हरने के लिये यदि वैद्य कोई यूष दे,
पर कही 'स्वाधीनता का अंग जो विच्छिन्न हो,
तो नहीं स्वीकार हो वरु प्राणपचक भिन्न हो ॥
कठपूतरी की भाति करना नृत्य है भाता नही,
भृत्य बनकर लोक मे रहना हमे आता नही।
सिद्धान्त एक 'स्वतंत्रता' का मान्य है बहु मान्य है,
'शंकरें' सदा 'स्वातंत्र्य' का साधन हुआ प्राधान्य है ॥

विशेष विवरण।

यह मानी हुई बात है कि उपन्यास साहित्यका एक प्रधान अंग है; उससे किसी देशके साहित्यको जो लाभ होता है, वह सर्वमान्य है। समाज व राष्ट्रका दिग्दर्शन उपन्यासो द्वारा कराकर उनमे बहुत कुछ परिवर्तन व उन्नति की जा सकी है, और बहुधा देखनेमें आया है कि ऐसा होता भी है। हिन्दी-साहित्यमे इस समय उपन्यासो की कमी नहीं है, चाहे वह मौलिक अथवा अनूदित कैसे ही क्यों न हे? परन्तु हिन्दी-साहित्यमे इस समय ऐसा कोई उपन्यास दृष्टिगोचर नहीं होता, जो भारत की वर्त्तमान स्थितिके अनुसार सामयिक विचारो पर प्रकाश डालता, अर्थात् उस प्रश्नके, जो इस समय भारतके एक कोनेसे दूसरे कोने तक आन्दोलन हो रहा है, ऊपर कोई उपन्यास नही है। यद्यपि इस विषयपर अन्य नानाप्रकारकी बहुतसी पुस्तके लिखि जा रही हैं और प्रकाशित हो चुकी है, तथापि हिन्दी साहित्य को अभी ऐसे उपन्यासो की आवश्यकता है, क्योंकि उपन्यास ही जनतामे जागृति उत्पन्नकर लोकमत को प्रबल बना सक्ते है, इसलिये यदि हम अपने नवयुवकोमे सच्ची देश-भक्तिके बीजांकुरित कर उन्हे मातृ-भूमिके सच्चे सेवक, राष्ट्रके यथार्थ उद्धारक और कठिनाइयो, विपत्तियो और बाधाओं को दृढताके साथ सहन करते हुए अपने ध्येय पर अग्रसर करना चाहें तो हमे हिन्दी-साहित्य की परिपुष्टिके लिये तद्विषयक उपन्यासों और गल्पोंको तयार करना चाहिये।

लगभग दो वर्ष हुए यह बात मेरे एक मित्रने मुझसे कही थी और तब से यह बराबर मेरे मस्तिष्कमे स्थान किये हुए थी, परन्तु कोई यथेष्ठ सामिग्री और उपन्यास लिखनेका विशेष साधन न होने

के कारण मैं अपना यह मन्तव्य कार्य्यरूपमे परिणित न कर सका था, क्योकि मै हिन्दी का न कोई सुलेखक और न ज्ञाता ही हूं, तिसपर उपन्यास जैसे कठिन विषयका लिखना तो महा कठिन और कितना दुष्प्राय: है, यह सभी जानते है। परन्तु धन्य है उस परमब्रह्म परमात्मा को जिसने मेरे विचारो को कार्य्यरूप मे परिणित करनेका साधन और समय दिया। उसी समय 'प्रताप' पत्रका राष्ट्रीय अंक प्रकाशित हुआ, जिसमें हिन्दी और उर्दूके धुरन्धर गल्प लेखक श्रीयुत प्रेमचन्द्रजी द्वारा लिखित 'वियोग और मिलाप' नामक एक गल्प छपी। फिर क्या था? 'डूबते को तिनकेका सहारा' मेरी इच्छा पूर्ण हुई और मैंने उसीके आधारपर एक उपन्यास लिखना निश्चिय किया। यह 'विचित्र-परिवर्तन' जो इस समय आप लोगोंके करोमे उपस्थित है, उसीका फल है।

वर्त्तमानकाल उन्नतिका युग है, चारो ओर उन्नति और स्वाधीनताका राग सुनाई दे रहा है; प्रत्येक नवयुवकके हृदयमे राष्ट्रीयताके भाव उदय होकर, वह स्वाभिमान, जातीयगौरव और आत्मनिष्ठा की रक्षाके हेतु स्वदेशानुरागसे प्रेरित होकर मातृ-भूमि की सेवामे सलग्न होना चाहता है, परन्तु कहीं २ बहुधा देखनेमें आता है कि देशप्रेम स्वदेशहितैषिता और स्वाभिमानके प्रिय नवयुवकोके मार्गमे उनके पूज्यगण जैसे माता, पिता, ज्येष्ठभ्राता आदि ही जो पुरातन विचारोके मनुष्य होते है अथवा चिरकालीन स्थिति से जिनका हृदय निर्बल बना हुआ है, कण्टकमय हो जाते है और उन्हें जिस प्रकार भी हो कर्त्तव्य भ्रष्ट करने और उनके मार्गसे हटानेका प्रयत्न करनेमे कुछ उठा नहीं रखते। फल यह होता है कि नवयुवक जिनके हृदय पुष्ट और बलवान नहीं होते अन्तको पथभ्रष्ट होकर अपने लक्ष्यसे गिर जाते है। किन्तु जिनकी आत्मामे राष्ट्रीयता का राग जाग उठा है; जिनके हृदय कमल देशसेवा से परिपूर्ण हैं और जो राष्ट्रके सच्चे सेवक और जातीयताके

उपासक है, इन विघ्न बाधाओं से नहीं हिचकते और विपत्तियोंका सामना करते हुए प्रहलाद की भांति अपने ध्येय पर अटल और अपने कर्त्तव्य पर दृढ़ रहते हैं, और अपने संकल्प को त्याग कभी पथविचलित नहीं होते। वे राष्ट्रीयता और देश सेवाके सन्मुख माता, पिता, स्त्री, भ्राता आदि किसी की भी कुछ नहीं सुनते और कभी अपने मार्गसे नहीं हटते, क्योंकि सच्चे देशभक्त अपने कुटुम्ब को कुटुम्ब नहीं मानते, वरन् जिस जाति, समाज अथवा देशमें वे जन्मधारण करते हैं, जिसके जलवायु और अन्नसे उनका शरीर पोषित और परिपुष्ट हुआ है, उसीको अपना वास्तविक कुटुम्बी और सच्चा सखा समझते हैं और उसकी सेवासे अपनेको धन्य और अपने जीवनको सफल मानते हैं। क्योंकि:—

अन्न, वायु, जल, दुग्ध मुग्ध मन जिसके करते,
रोग, शोक, सन्ताप जहाँके रजकण हरते।
है जिसका शुचि नाम जातिकी बिभव भूमिका,
पशु है वह जिसको न ध्यान उस मातृ-भूमिका॥

इस प्रकार अपनी कर्त्तव्यपरायणतापर आरूढ़ रहनेका कभी कभी यह फल होता है, कि जो लोग आरम्भमें हमारे कार्य्यमें विघ्न व बाधाए उपस्थित कर हमको लक्ष्यहीन बनानेका उद्योग करते है; अन्तमें हमारी दृढ़ता देखकर स्वयं भी अपनी भूलको स्वीकार कर अपने कर्त्तव्य पालनमें लग जाते है और देशके सच्चे हितैषी और राष्ट्र के वास्तविक सेवक निकलते है।

प्रस्तुत पुस्तकमे यही दिखलाया गया है, साथही भारतकी वर्त्तमान स्थिति और अवस्थाका जो सच्चा और मार्मिक चित्र खींचनेका उद्योग किया गया है, उसे देखकर कौनसा भारत-सेवक ऐसा होगा जो नेत्रोंसे दो विन्दु अश्रुजल बहाए बिना रह सके? जहाँतक हुआ है, मैंने कोई बात ऐसी छोड़ी नहीं है जिसकी समयके अनुसार आवश्यकता है। परन्तु कहाँ तक उसके लिखनेमें मैं सफल हुआ हूँ, यह पाठकोंपर

ही छोड़ता हूं। हाँ इतना अवश्य कहूँगा कि इस पुस्तकमें कोई नवीन बात नहीं है, सभी प्राचीन भावों और विचारोंहीका जो समय समय-पर सामयिक पत्र, पत्रिकाओंमे प्रकाशित होते रहे हैं, इसमे समावेश किया है; फिर भी जिस उद्देश, आकाँक्षा और आदर्शको सामने रखकर मैंने इसे लिखा है, उसकी यदि किंचितमात्र भी यह पूर्ति कर सकी तो इसीमें मै अपने परिश्रम को सफल और अपने को कृतकार्य्य समझूंगा। एक बात और है, जिसप्रकार नाना भांतिके पुष्प अलग अलग रहते हुए उतने शोभित नहीं होते, वरन् एक मालामें गुंथ जानेसे उनमे और ही मनोहरता, सुन्दरता और मनोरमता आ जाती है, उसी प्रकार भाँति भाँतिके भाव और विचार अलग अलग लेखोंके रूपमें रहते हुए उतने प्रभावशाली और मार्मिक नहीं होते, वरन् उन्हे संक-लित करके यदि मालाकी भांति एक सुगठित और विस्तृत लेखके रूपमे कर दिया जाय तो उनमे और ही नवीनता, लालित्य, भावकता, प्रभाव-शालिनी शक्ति मनुष्योका हृदय उत्साहित करनेवाली छटा और उप-योगिता आ जाती है और तब उसका प्रभाव और मर्म ही और हो जाता है। वही बात प्रस्तुत पुस्तकमे है, भिन्नभिन्न लेखको और देश सेवियोंके भावो और विचारों को सकलित करके मैंने उन्हे श्रेणीवद्ध करनेका उद्योग किया है; परन्तु ऐसा करनेमे मैं कहाँ तक समर्थ और सफलीभूत हुआ हूं, यह मै स्वय कुछ भी नही जानता, इसका निर्णय मैं अपने दयालु और प्रेमी पाठको पर छोड़ता हूं। यदि उनके चित्तको यह पुस्तक कुछ भी आकर्षित कर सकी और उन्हे इसमे कुछ भी भाव-कता और रोचकता जान पड़ी, तो इसीमे मैं समझलूंगा कि मेरा परिश्रम और उद्योग सफल हुआ।

जितनी आलोचना इसमे देश सेवा सम्बन्धी-विषयोकी पुरुषोके लिये की गई है, स्त्रियोके लिये भी उससे कुछ कम नहीं की गई;

अतएव यह पुस्तक बालक, युवा, वृद्ध, स्त्री और पुरुष सबही और सबही स्थितिके लोगोके लिये उपयोगी सिद्ध होगी।

जिस गल्पके आधारपर मैने इस उपन्यासको लिखा है उसके रचयिता और प्रकाशक दोनो महोदयोका मै हृदयसे आभारी हूँ। साथही जिन अन्य पुस्तको और पत्र, पत्रिकाओसे मुझे इसके लिखनेमे सहायता मिली है उनके लेखक और सम्पादक-सम्पादिका महाशयोको भी सहृदय धन्यवाद देता हूँ। विशेषतः लेखमालाके लिखनेमे तो मुझे प्रतापके पुराने अकोसे पूर्ण सहायता मिली है, तदर्थ मै प्रतापके सचालक महोदयोका हृदयसे कृतज्ञ हूँ। हिन्दीसमाचार, भारतमित्र विद्यार्थी, पाटलिपुत्र आदिसे भी कुछ कम सहायता नही मिली है। कविताएं, विशेषतः सरस्वती और भारतभारतीसे ली गई है उनके सम्पादक व लेखक महोदयोको भी हार्दिक धन्यवाद है। जिन पुस्तक, पत्र और पत्रिकाओसे सहायता मिली है उन सबकी सूची सधन्यवाद नीचे दी गई है।

पुस्तक भली अथवा बुरी जैसी कुछ है, आपके सम्मुख उपस्थित है, यदि आपने किंचितमात्र भी इसको अपनाकर मेरे उत्साहको बढाया तो मै शीघ्र ही कोई अन्य पुस्तक लेकर आपके सम्मुख उपस्थित होऊँगा।

जिस विषयपर पुस्तक लिखी है, उसका पूर्णज्ञान न होनेपर भी मैने उसके लिखनेका साहस किया है, अत. यह मेरी अनाधिकार ही चेष्टा समझिये कि मैने उसके लिखनेको लेखनी उठाई, फिर इतना अवश्य है कि स्वदेशानुराग, मातृभूमि-प्रेम और देश-सेवासे वाध्य और उत्सहित होकर मैने यह किया है। ऐसी दशामे भाषा सम्बन्धी तथा अन्य कई प्रकारकी त्रुटियॉ और भूले रह जाना सम्भव और सहज ही है, उनके लिये मैं पाठकोसे सविनय क्षमा याचना करके प्रार्थना करता हूं कि जहॉ कहीं ऐसी भूले और त्रुटियॉ वे पावे, मुझे

सूचना दे देनेकी कृपा करे, जिससे आगामी संस्करणमे उनके सुधारकी व्यवस्था कर दी जावे।

मार्ग शीर्ष १९७६
दिसम्बर १९१९

'सेवक'

सहायक पुस्तकों और पत्र पत्रिकाओं की नामावली

प्रताप	मर्यादा,	
हिन्दी समाचार	पाटलिपुत्र,	
विद्यार्थी	निर्बल सेवक	
भारत मित्र	स्त्रीदर्पण	
गृहलक्ष्मी	सरस्वती	केवल कविताएं
स्वराज्य और साहित्य	भारत भारती	केवल कविताएं
भारतीय राष्ट्र	प्रवासी भारतवासी	

संसारमे हो कष्ट कम तो नर्कमे पहुँचाइये ।
पर हे दयामय ! दासताके दुःख ना दिखलाइये ॥

विचित्र-परिवर्तन
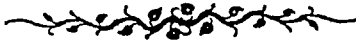
प्रथम परिच्छेद

सूत्रपात

ठोकरे खाती मनोकी शक्तियॉ, दुर्वल हृदय है हो रहे ।
देश-सेवामे नहीं लगते अहो, स्वार्थवश जीवन सभी है खो रहे ॥

बाबू मदनमोहन जब पाँच वर्षके थे, तभी उन्हें विद्याध्ययन कराना आरम्भ करा दिया गया। प्रथम् वे हिन्दी चटशाल में पढ़नेके लिये बैठाये गये और पांच वर्ष तक पढ़ते रहे। दस वर्षकी अवस्थामें वर्नाक्यूलर मिडिल पास कर अंग्रेज़ी स्पेशल क्लासमें भर्त्ती हो गये। बहुधा अँग्रेज़ी स्कूलोंमें यह नियम है कि जो विद्यार्थी वर्नाक्यूलर मिडिल करके अंग्रेज़ी पढ़ना चाहते हैं, वे एक ऐसे कक्षामें भर्त्ती किये जाते हैं जिससे फिर उन्हें एन्ट्रेन्स पास करनेमें केवल पाँच वर्ष ही लगते हैं। इस कालमें उन्हें केवल अंग्रेज़ी भाषाहीका ज्ञान करना रह जाता है, शेष सब जैसे गणित, इतिहास, भूगोल और मापविद्या आदि वे

वर्नाक्यूल स्कूलोंमें ही पढ़ लेते हैं। मदनमोहनकी बुद्धि स्वभावतः ही तीव्र थी, वे परिश्रमी भी पूरे थे, अतएव १५ वर्षकी अवस्थामें उन्होंने एन्ट्रेन्सन पास कर लिया।

एन्ट्रेन्स पास कर चुकने पर मदनमोहन कालिजमें भर्त्ती हुए। परन्तु अब उन्हें बोर्डिंग हाउसमें रहना पड़ता था, कारण कि उनके नगरमें केवल एन्ट्रेन्स तकही स्कूल था। इस लिये आगे पढ़नेके लिए उन्हें दूसरे बड़े नगरमें कालिजमें जाकर भर्त्ती होना पड़ा था। कालिजमें भी मदनमोहनने अपने परिश्रम, तीक्ष्ण बुद्धि और नियमबद्ध होनेका पूर्ण परिचय दिया, दो सालमें एफ-ए पास कर लिया और आगामी दो वर्षोंमें बी. ए की परीक्षा दे उसमें भी उत्तीर्ण होगये।

देखनेमें आता है कि बहुधा विद्यार्थी जिस समय अपना स्कूल जीवन समाप्त कर कालेजमें पदार्पण करते हैं, उनके हृदयमें स्वदेशसेवाका बीजांकुरित होने लगता है। उसी समय से विद्यार्थियोंको स्वदेश और उसके प्रति अपने कर्त्तव्यका ज्ञान होता है। स्वदेश-प्रेम एकताका मूल है, एकता राष्ट्रीयताकी जड़ है, राष्ट्रीयता उन्नतिका पथ और राष्ट्रीयउन्नति लौकिक तथा पारलौकिक सुख पानेका साधन है—यह बातें उस समय विद्यार्थियोंको आभास होने लगती हैं और वे देशसेवा करनेका अवसर पानेकी खोजमें रहते हैं। परन्तु इन अवसर ढूंढने वाले विद्यार्थियों में बहुत कम ऐसे होते हैं जो अपनेको देशकी सेवामें संलग्न करते हैं, शेष किसी न किसी प्रकार पथ-भ्रष्ट होकर उनके भाव बीचहीमें निर्मूल हो जाते हैं और फिर वह मातृभूमिकी सेवा करनेमें समर्थ नहीं हो पाते अथवा यों कहिये देश सेवाको वह एक प्रकारका जंजाल समझ उससे दूर रहना ही उचित समझते हैं।

बाबू मदनमोहनके हृदयमें भी देशप्रेमका बीज उसी समय अंकुरित हो चुका था, जब उन्होंने कालेजमें चरखा दिया, परन्तु बी-ए पास होते ही उनके चित्तमें देश और स्वार्थका संग्राम आरम्भ हुआ। देश कहता था कि भारत-सेवक-समिति में नाम लिखाओ और मेरा उद्धार करो, और स्वार्थ कहता था कि किस झगड़ेमें पड़ते हो? बैठ कर आनन्द जो उड़ाओ। इस संग्रामने उनके हृदयमें दुविधा उत्पन्न कर दी, किन्तु अन्तको स्वार्थने देश पर विजय पाई, उन्होंने ला (Law) पढ़ना आरम्भ किया और समय आने पर वकील हो गये। वकील बन जाने पर फिर वही संग्राम उनके हृदयमें आरम्भ हुआ; देशानुराग कहता था निर्बलोंकी सेवा करो, दुखियोंको सहायता दो, अभागे देशका उद्धार करनेका वृत्त धारण करो और माताके सच्चे सपूत बनो, जन्मभूमिकी वर्त्तमान स्थिति देख कर उससे निकालनेका प्रयत्न करो और कर्मक्षेत्रमें आ कर कर्म्म वीर कहलाओ; और स्वार्थ कहता था, धन और कीर्ति कमाओ, इन व्यर्थकी बातोंमें पड़नेमें रखा ही क्या है? इन झगड़ोंमें पड़ कर सहस्रों मनुष्य नष्ट हो गये और फिर भी कुछ उनके हाथ नहीं लगा, इससे इसे हृदयसे निकाल सुख से घर बैठो और रुपया कमाकर बड़े आदमी बनो......"। देशकी फिर हार हुई, धनने अपनी ओर खींचा। मातृभूमि की सेवाका भाव धनकी लालसासे ऐसे दब गया, जैसे अग्नि राख के नीचे दब जाती है। परन्तु दबी हुई अग्निकी भाँति वह भाव भी भीतर जागता रहा, यहाँ तक कि पाँच वर्ष बीत गये और उनके नैतिक ज्ञान और ग्राह्यताकी इतनी ख्याति हुई कि उनका नाम गवर्नमेण्ट प्लीडर्स (वकीलों) के सम्बन्धमें लिया जाने लगा। इसी बीचमें 'स्वराज्य' आन्दोलन आरम्भ हुआ। मदनमोहनके

मनमें भी फिर वही संग्राम आरम्भ हुआ। वे कार्य्यकुशल थे, चतुर थे, यूनीवर्सिटीके स्नातक (ग्रेज्युएट) थे, परिश्रम शील अच्छे वक्ता और अच्छे लेखक थे परन्तु अभाव था तो केवल साहस, आत्मबल और दृढ़ इच्छाशक्ति का। उनका चित्त चाहता तो बहुत था कि स्वराज्य आन्दोलनमें सम्मिलित होवें, कार्य्यक्षेत्रमे पदार्पण कर कर्त्तव्यका पालन करें, सर्वसाधारण-को देश-सेवा और स्वदेशानुरागका पाठ पढ़ावें, परन्तु ऐसा करनेके लिये उनका साहस नहीं होता था, आत्मबल काम न देता और जो भाव चित्तमें उठते वे वहीं विलीन हो जाते थे।

परन्तु मनुष्यका हृदय जिस कामके करनेको बारबार चाहता है, वह एक दिन अवश्यही उसे आरम्भ कर देता है, उसकी प्रवृत्ति अवश्यही समय आने पर उस ओर हो जाती है—ऐसा प्रकृतिका नियम है। स्वयं ईश्वर उसका सहायक होकर उसके सामने उसी प्रकारके भाव, साधन और युक्तियाँ ला उपस्थित कर देता है।

बाबू मदनमोहन कर्त्तव्यशील होना तो चाहते थे, परन्तु साहस न होता था, यह भी उक्त नियमानुसार उनके सहपा-ठियों और मित्रोंके प्रोत्साहनसे दूर हो गया, वह स्वराज्य-सभा में सम्मिलित होगये और दो एक अधिवेशनके पश्चात् ही उनकी कार्य्य कुशलता देखकर सर्व सम्मतिसे उनके ऊपर मंत्री-पदका भार रख दिया गया। अब मदनमोहन कार्य्य करना तो चाहते थे, परन्तु गुप्त रीतिसे—इस कारण नहीं, कि अब भी वे भीरु और साहस हीन थे वरन् इस कारण कि वे अपने वृद्ध पिताको अप्रसन्न करना नहीं चाहते थे।

एक दिन सभाका अधिवेश समाप्त होनेपर मदनमोहन घर पहुँचे और अभी कपड़े ही उतार रहे थे कि नगरके कोत-

वाल दो कानिस्टबिलोंको साथ लेकर उनके मकान पर आये। मदनमोहनके पिता बाबू सोहनलाल घबरा कर बाहर निकले और किसी अमंगलकी आशंका कर उनका चेहरा पीला पड़ गया। वे बोले—आइये दरोगाजी साहब! चित्त तो प्रसन्न है? और साथ ही नौकरको पान आदि लानेकी आज्ञा दे कोतवाल साहबके पास बैठ गये।

कोतवालने कहा—इस समय मुझे आदर सत्कारसे क्षमा कीजिये, मैं एक सर्कारी कार्य्यसे आपके यहाँ आया हूँ, आपसे मेरा पुराना परिचय है, परन्तु सर्कारी कर्त्तव्यको क्या करूँ? कहिये बाबू मदन मोहन घर पर हैं क्या?

बाबू सोहनलाल काँपते हुए बोले—जीहाँ, होंगे तो, अभी कचहरीसे आये हैं। (धीरे) परमात्माकी दया होगी तो थोड़े ही दिनोंमें सर्कारी वकील हो जाँयगे, जज साहबने मुझे वचन दे दिया है।

कोतवालने इन बातोंको सुनी अनसुनी करके और बाबू सोहनलालके आन्तरिक भावको ताड़ कर कहा—अच्छा तो उन्हें बुला दीजिये, उनसे कुछ पूछना है। यह कह कर कोतवालने एक पाकेटबुक और पेन्सिल जेबसे निकाली। सोहनलाल का रक्त ठंडा पड़ गया, पसीना आने लगा, हृदय कांप गया और सोचने लगे न जाने क्या विपत्ति आ गई। परन्तु हृदयका भाव छिपा कर बोले क्या कोई आवश्यकीय बात है?

कोतवाल—जी हाँ, आज लोगों ने बड़े समारोह के साथ स्वराज्य सभा का उत्सव किया है। बा० मदनमोहन उसके सेकरेटरी हैं, उनसे उत्सवमें आये हुए मनुष्योंके नाम पूछने हैं, साथ ही साथ यह भी मैत्रिक सम्मति देनी है कि अब वे

इस काम से हाथ खींच लें, नहीं सम्भवतः कभी वे विपत्ति में पड़ जाँय।

सोहनलाल के पैरों तले पृथिवी घूम गई, दौड़े हुए भीतर गये और बड़े क्रोधमें आकर मदनमोहनसे कहने लगे—"यह तुमने क्या आग लगा ली? देखो तो द्वार पर कोतवाल खड़े क्या कह रहे हैं? जो अब तक नहीं हुआ था, वह तुम्हारे कारण आज हो गया।"

मदनमोहन सहर्ष बाहर आये, कोतवाल ने तीव्र दृष्टि से उन की ओर देखकर पूछा—

आज आप स्वराज्य सभामें थे?

मदनमोहन—जी हाँ।

कोतवाल—आप उसके मंत्री हैं?

मदन—जी हाँ।

को०—आज उत्सव में कौन२ मनुष्य थे, कृपा कर उनके नाम बतला दीजिये।

मदन०—मुझे यों स्मरण नहीं। एक दो तो थे ही नहीं. सहस्रों मनुष्य थे, किस २ के नाम स्मरण रह सकते हैं?

को०—अच्छा तो केवल सभाके सदस्योंके ही नाम बतला दीजिये।

मदन०—सभाकी सदस्य नामावलीसे देख लीजिये, वहाँ सब ज्ञात हो जाँयगे।

को०—और पदाधिकारी?

मदन०—वह भी वहीं मिल जायँगे, सभा-भवनमें सबकी नामावली तयार रहती है।

दूसरा परिच्छेद
तर्क वितर्क

पीठ दिखाकर जो कहीं कर्म्मक्षेत्रसे मुड़गये ।
तो जीवन-साफल्यके मानो साधन उड़गये ॥

बाबू सोहन लाल नगरके बड़े आदमियोंमें हैं। बालकपन में आपने अच्छी शिक्षा पाई थी। प्राचीनकालके अनुसार आप टूटी फूटी अंग्रेजी पढ़करही वकील होगयेथे। आपकी विकालत अच्छी चलती थी, इससे सरस्वतीकी कृपा आप पर थी सो तो थीही—लक्ष्मीका अनुग्रह भी पूर्णहुआ। आपने विकालत द्वारा बहुतसा धन कमाया। धीरे २ पूरे मालदार होगए, कई गाँव और जिमीन्दारियां ख़रीदलीं और नगर में उच्चकोटिके मालदार समझे जाने लगे। बाबू सोहन लाल धार्मिक और कर्त्तव्यपरायण व्यक्ति थे, नगर में आपका मान भी कुछ कम न था। सुधारप्रिय भी समझेजाते थे, परन्तु एक बातथी—जोकुछ करना चाहतेथे, गुप्तरीतिसे ही करना चाहतेथे, कारण कि आप बड़े भीरु और असाहसी थे, डरतेथे कि कहीं ऐसा नहो जो बदनाम होजाये, तो फिर और उल्टी पड़े। सबसे बड़ी बात आपमें यह थी कि आप चापलूस बड़े थे, इसी में वे अपना मनुष्यत्व मान बैठेथे। इन्हीं कारणों से आप का अफसरोंमें बड़ा मान था, सब आपसे प्रसन्न रहतेथे। युवाकालमें आप सबप्रकारके कार्यों में भाग लेतेरहेथे, परन्तु उसी प्रकार, जिससे कोई अफसर अप्रसन्न न होजाय। परन्तु पूर्णतः आपका समय स्वार्थसाधनही में व्यतीत होताथा, सब प्रकार के कार्यों को छोड़बैठे थे, यही एक उपाय करने में लगेरहते थे

कि जिससे धन और बढ़े, और अफसरोंके भी प्रियपात्र बनेरहें ।

आपके एक पुत्र और एक कन्या थी, पुत्रका नाम था मदन मोहन और पुत्री का कमला । बाबू सोहनलालने कमलाको सब प्रकारसे चतुर और सुशिक्षिता बनाने में कुछ उठा नहीं रखा, जब प्रत्येक कार्य्य में पूर्ण दक्ष होकर वह होशियार हुई, तो बा० सोहनलाल ने उसका विवाह एक चतुर और योग्यवर के साथ कर दिया ।

बाबू मदनमोहन की शिक्षा का वृत्तान्त पाठक गत् परिच्छेद में पढ़ ही आये है, इस लिये यहाँ उसके दुहराने की आवश्यकता नहीं । हाँ इतना अवश्य है-उनके वकील होते ही बा० सोहन लाल ने अपनी विकालत करना छोड़ दिया था और घर पर रह कर ही अपना समय विताने लगे । इस समय उनकी अवस्था कोई पचास वर्ष होगी, तथापि उनका स्वास्थ्य अभी बहुत अच्छा था । अब वे सब कुछ मदनमोहन के ऊपर छोड़ बैठे थे और उन्हीं की मंगलकामना और शुभाकांक्षाओं में निमग्न रहते थे । मदनमोहन उनके एक मात्र और स्नेहभाजन कमाऊ पुत्र थे । यद्यपि बा० सोहनलाल सब कुछ छोड़ बैठे थे, परन्तु अधिकारी वर्ग की बिदाई और बधाई के जलसों में वे बड़े उत्साह और सहानुभूति से कार्य्य करते, उन में पूर्ण भाग लेते थे । ऐसे अवसरों पर उनकी वक्तृताएं अब भी बड़े मार्के की होती थीं, भाव और भाषा सब ही सुन्दर और उत्साह बर्द्धक होते थे । इसके लिये तो अब भी उन में पूर्ण बल और साहस आ जाता था । परन्तु विपरीत इसके देशसम्बन्धी कार्य्योंमें योग देने से वे सदैव हिचकते, ऐसा करना उनके लिये असम्भव और उनकी सामर्थ्य के बाहर था ।

समय आने पर कमला की भाँति बा० सोहनलाल, मदनमोहन का विवाह भी एक योग्य और गुणवती कन्या से कर उससे भी निश्चिन्त हो गये थे, परन्तु शोक कि मदनमोहन की माता पतोहू का सुख न देख सकीं, विवाह पर ही कुछ दिनों के लिये पतोहू का मुख देख कर वे इस संसार से चल बसी थीं।

* * * * *

कोतवाल के चले जाने के पीछे बा० सोहनलाल मदनमोहन से बोले—"तुम्हें यह क्या सूझी है? तुम अपने को क्या मुझसे भी अधिक बुद्धिमान समझते हो? मैं तुमसे स्पष्ट कहे देता हूँ-धोखा खाओगे। समय पड़ने पर कोई काम न आवेगा। इस समय जो तुम्हें फुसला २ कर ले जाते हैं और जिनके कहने में आकर तुम यह कार्य्य कर रहे हो, समय पड़ने पर वेही कोसों भागेंगे। इस लिये मैं तुमसे कहता हूँ इसे छोड़ो, इन व्यर्थकी बातोंमें क्या लोगे? इस समय स्वदेश सेवा करना मानो अपने ऊपर विपत्ति लेना है। मैं सदैव समझाता रहा हूँ, अब भी समझाता हूँ, कि इन कामोंमें हाथ न डालो, सब छोड़ कर घर बैठो। वृद्धावस्थामें मेरा जन्म कंलकित करनेके कार्य्य मत करो और यदि तुम्हारी यही इच्छा है, तो जबतक मैं जीवित हूँ, तब तक तो मेरे ऊपर दया करो, और जब मैं मरजाऊँ तब चाहो सो करना मैं देखने नही आऊँगा, परन्तु इस समय तुम इस कामको छोड़ कर सीधे २ अपना कार्य्य जो करो।

मदनमोहनने नम्रता पूर्वक कहा—मुझे लोग बलात्कार खींच ले गये और वहाँ मंत्री बना दिया, उस समय मैं क्या करता? 'मना करना' सबकी दृष्टिमें कायर बनना था, नपुंसकताका परिचय देना था। फिर मेरी समझमें भी इसमें कोई भयकी बात नही, देश भर इस बातमें सहमत है। इस समय देशकी

जैसी दशा है, उसे आप भी जानते हैं; ऐसे समयमें प्रत्येक भारतवासीका यही लक्ष्य है, कि किसी प्रकार स्वराज्य प्राप्त हो। फिर भी हमारा तात्पर्य्य 'स्वराज' से सर्वथा स्वतंत्र होना-नहीं है, वरन् इंगलैण्डाधिपतिके आधीन रहते हुए निज जन्म स्वत्वोंका उपभोग करना है। मेरी समझमें इस प्रकारके प्रचार में और इस आन्दोलनमें कोई दोष नहीं, कोई हानि नहीं और कोई द्रोह नहीं।

सोहनलाल—इन बातोंसे क्या मतलब? अब यही उचित है कि त्यागपत्र लिखकर "मंत्री" पदसे तुरन्त अलग हो जाओ।

मदन०—यह तो अब मुझसे नहीं होगा।

सोहन०—तुम पिताका पुत्र पर कुछ अधिकार मानते हो या नहीं?

मदन०—मानता हूँ, और यही कारण था, कि अब तक मैं इन कार्य्यों से दूर रहा हूँ, परन्तु अब देशमें जागृति फैल रही है, अब अकर्मण्यताका समय नहीं है, चहुँओर परिवर्तन दिखाई देता है, मनुष्य अपने अधिकारों और स्वत्वोंको पहि-चान रहे है। अब पूर्वमें भी स्वतंत्रताकी सूर्यलालिमा देख पड़ती है, भारत-सन्तान अब भक्तिभावसे अपने शरीर-पुष्प-हृदयके सूर्यको अपना तन, मन, धन सब कुछ अर्पण कर देनेके लिये तयार हैं, अब रात्रि नही रही, दिनका अवसान है, अब जागृति और उन्नतिका समय है; हम किसीसे द्वेष नहीं करते, किसीके साथ द्रोह नहीं करते, अब हम भी उन्नति-पथ पर अग्रसर होना चाहते है, बस यही बात है। इसमें भय की कोई बात नहीं, डरनेका कोई कारण नहीं। माता प्रकृतिका भी यही उपदेश है-सबके स्वत्व समान हैं, निर्भय होकर अपना काम करना चाहिये, तभी कल्याण है, कहा भी है :—

बच्चो ! न डर किसी का करना कभी न रुकना ।
लातों कुचल भगाना बाधा प्रसन्न रहना ॥
दुःख भी मिले जो कर्त्तव्य से न हटना ।
पुत्रो ! स्वदेश के लिये विपता से नाहिं डरना ॥
जब स्वदेशसेवामे यह तन लगे तुम्हारा—
माता की कोख मानो तबही पवित्र धारा ॥

अब कहिये इसमें डरकी क्या बात है ? उत्तमकार्य्योंमें भयभीत होना अपनी असमर्थता प्रकट करना है । फिर इसी आन्दोलनमें क्या भय है ? हमारी इच्छा साम्राज्यकी छत्र-छायामें रहनेकी है, वह भी इस लिये, कि समयपर सब प्रकार से हम उसकी सहायता कर सकें और उसकी सेवा करनेमे समर्थ हो सकें । अब तटस्थ बैठे रहना देशवासियोंके साथ अन्याय और साम्राज्यका अहित करना है । हम साम्राज्यकी सबसे अच्छी सेवा और देशका भला तभी कर सक्ते हैं, जब हमारे वास्तविक अधिकार हमें प्राप्त हों और हम उनका पूरापूरा उपभोग करते हों । ब्रिटिश साम्राज्यके अन्तर्गत रह-कर देशोन्नति करनेहीमे हमारा सबका भला और कल्याण है । जिस मातृभूमिने हमको जन्म दिया, जिसकी गोदमें बैठ कर हम इतने बड़े हुए और जिसके अन्न, जल, वायु आदिसे हमारा उदर पोषण होता है, यदि उसकी सेवा और उन्नति न की जाय, तो उसके साथ कृतघ्नता करना होगा। देशसेवाकी महिमा बड़ी अपार और अलौकिक है । वही लौकिक और पारलौकिक धर्म्मोंका केन्द्र और स्वर्गकी दायिनी है । जो जाति; जो माता पिता और जिस देशके निवासी अपने बालकोको

सबसे प्रथम स्वदेश-सेवाकी शिक्षा दीक्षा नहीं देते, वह जाति और देश कभी उन्नति नहीं कर सक्ते और वे माता पिता अपना अनिष्ट आप करते हैं। प्रत्युत जो माता पिता अपने बालकों को स्वदेश-सेवा की शिक्षा देते हैं, उन्हें 'जननी, जन्म-भूमिश्च स्वर्गादपिगरीयसी' का पाठ पढ़ाते हैं, उन्हें धन्य है, और उनके उत्साहको धन्य है। वे अपना हित और कर्त्तव्य पालन करते हैं सो तो है ही, साथ ही देशका भी बड़ा उपकार करते हैं। 'इसलिये प्रत्येक माता पिता का मुख्य धर्म है, परम कर्त्तव्य है कि वे अपनी सन्तानको अपने लाड़िले पुत्र पुत्रियोंको स्वदेश सेवाकी शिक्षा दें और अपने भरसक उन्हे पूर्ण देशभक्त और मातृभूमिके सच्चे सेवक बनावें; और इसीमें जातिका हित और देश का कल्याण है।

सोहन०—मैं यह सब कुछ सुनना नहीं चाहता। बस तुम वही करो जो मै कहता हूँ।

मदन०—आप क्या कहते है ?

सोहन०—यही कि जाकर स्वराज्य-सभाके मंत्रिपदसे त्याग पत्र दे आओ और सभासे अपना सब सम्बन्ध तुरन्त तोड़ दो।

मदन०—ऐसा अब मुझसे नहीं होने का। यह करना मेरी सामर्थ्यके बाहर और मनुष्यधर्मके विरुद्ध है।

सोहन०—अच्छी बात है, तुम्हारा जी आए सो करो। तुम्हारे कहनेसे जान पड़ता है कि अब मुझे तुम्हारी बातोंमें बोलने तकका अधिकार नहीं है।

मदन०—ऐसा आप समझिये, मेरा यह तात्पर्य्य कभी नही ह। मैने तो वही कहा है जो मेरा और आपका कर्त्तव्य है, इससे अधिक मैने आपसे ऐसी कोई बात नहीं कही, जैसा आपका विचार है।

सोहन०—परन्तु पुलिस को प्रतिदिन अपने घर पर खड़े देखना मेरी शक्तिके बाहर है। मैं यह सहन नहीं कर सक्ता, इससे क्या मेरे मुखपर कालिमा नहीं लगेगी ?

मदन०—पुलिस ? पुलिसका इसमें क्या अपराध है ? वे अपना कर्त्तव्य अभी ठीक प्रकार नहीं समझते। उनको समझानेका यत्न भी नहीं किया जाता। हम लोग भी तो अपना कर्त्तव्य ठीकतौरसे पालन नहीं करते उन्हें ही क्या दोष दिया जाय ? दूसरे वह स्वतंत्र भी नहीं, उन्हें तो अपने अफ़सरोंकी आज्ञाओंका पालन करना, जो आदेश उनके अफसर उन्हें करें, उसका पालन करना उनका धर्म्म है। हाँ इतना अवश्य है, इस समय पुलिस अधिकतर देशहितैषियों की ही खोज ख़बरमें रहती है, कहा नहीं जा सक्ता, इसका क्या कारण है ? परन्तु इससे हमें भयभीत नही होना चाहिये। दोनों ही अपने अपने कर्त्तव्य पालनमें आरूढ़ हैं, तो हर्ज क्या ? हाँ यदि हम नियमबद्ध होकर कार्य्य करते हैं, तो हम दोषी नही ठहराए जा सक्ते। भय निन्द्यकार्य्य करनेवालोंके लिये है, हमारे लिये नहीं।

सोहन०—मुझे ज्ञात होता है—तुम्हारी मत मारी गई है, जब ऐसा है, तो तुमसे क्या कहा जाय ? अच्छा, जो तुम्हें सूझे सो करो, किन्तु मुझे क्षमा करो। यदि तुम्हें यह फुलझड़ियाँ छोड़ना ही है तो मेरे घरसे दूर जाकर छोड़ो, इस घरमें आग मत लगाओ। अब यह बातें मैं अधिक नहीं देख सुन सक्ता और न सहन कर सक्ता हूँ।

मदनमोहनने अपने पितासे कभी ऐसी निष्ठुर बातें नहीं सुनीं थी, यह बातें उनके हृदयमें चुभ गईं। "जैसी आपकी इच्छा" इतना कहकर वे भीतर चले गए।

तृतीय परिच्छेद ।

गृहत्याग ।

साहससे दुख, द्वन्दवृन्दको दूर करो तुम,
चिन्ताको बन धीरधुरन्धर चूर करो तुम ।
दुख, दरिद्रका दिल दिलेर कर दल मल डालो,
प्राणोंके ही साथ अटल प्रण अपना पालो ॥

भीतर पहुँचकर मदनमोहन अपनी पत्नी सरस्वतीसे बोले— पिताजीने आज मुझे घरसे निकल जानेकी आज्ञा दी है। इससे तुम अब चलनेकी तयारी करो। मैं दूसरा मकान ढूढ़ने जाता हूँ।

सरस्वतीने अचम्भित होकर पूछा—"सो किस बातपर"?

मदन०—कुछ नहीं, मैं आज स्वराज्यसभाके उत्सवमें गया था, उसीके सम्बन्धमें नगरके कोतवाल कुछ पूछनेके लिये यहाँ आए थे, पिताजी इससे अपनी मानहानि समझते हैं और कहते हैं, "या तो स्वराज्य-आन्दोलन त्यागो, अथवा मेरे घरसे निकल जाओ।" मुझे स्वराज्य घरसे कही अधिक प्रिय है। मेरी रात्रि अब किसी और घरमें ही कटेगी। मेरा कार्य अब सम्भवतः पिताजीको अखरने लगा है, नही तो इसप्रकार मुझे घरसे निकल जानेको एक साथ न कह देते। मैं जबतक घर खोजकर आता हूँ, तुम सब सामान ठीक कर रखना। घर क्या स्वराज्य आन्दोलनके लिये मैं सर्वस्व त्यागनेको प्रस्तुत हूँ। आज समस्त देशमें इसकी धूम मच रही है, लोगोंने अब समझ लिया है कि "ब्रिटिश-साम्राज्यके साथ एक सूत्रमें बंधे रह कर सामाजिक महासभाके आदेशोंको अन्तर्जातीय विषयोंमें सानन्द

स्वीकार करते हुए अपने देशका शासन अपने ही चुने गये प्रतिनिधियों द्वारा करनेमें देशका और हमारा कल्याण है"। इसकारण उसीकी पूर्ति करनेमें अब मनुष्योंने कार्य्य करना आरम्भ कर दिया है। उन्होंने इस बातको अच्छी तरह समझ लिया है, और उसेही वे न्याय और नियम पूर्वक लेना चाहते हैं, इसमें भयकी कोई बात नहीं। परन्तु पिता जी जब इससे भी दुखी होते हैं, तो इसका इलाज ही क्या?

सरस्वती—प्राणनाथ! क्षमा कीजिये। जो आप कहते हैं सब ठीक है। परन्तु आप देखते हैं—आपके पिता जी आपके ऊपर कितना स्नेह रखते है? वे सदैव आपकी हितकामनाहीमें निमग्न रहते हैं। सदैव आपको सुखी और प्रसन्न करनेहीमें अपना सुख समझते है। फिर उनके लिये एक मात्र आश्रय आपही हैं, ऐसे समयमें उन्हें त्याग देना अनुचितही नहीं, वरन् धर्म्म विरुद्ध भी हैं। यदि इस समय वे इस कामको वन्द रखनेहीमें भला समझते हैं, तो आपका कर्त्तव्य है, कि उनकी इस आज्ञाका पालन कर उनकी सेवामें ही चित्त लगावें।

मदन०—यह ठीक है, परन्तु देश-सेवासे मुख मोड़ना भी तो धर्म्मभ्रष्ट होना है, तिसपर भी ऐसे समयमें, जब हमारी जन्मभूमिको हमारी सेवाकी विशेष आवश्यकता है। ऐसा करना धर्म्मका उलंघन करना है। अतः जो होना है सो होगा, अब जो उन्होंने मुझे चले जानेकीही आज्ञा दे दी है, तो मैं भी अब यहां रह कर अकर्मन्य वनना नही चाहता। देखो जब तक मैं मकान देख कर आता हूं, तुम सब अस्वाब ठीक कर रखना।

सरस्वती—आपका असबाव तो बाहर ही है।

मदन०—और तुम्हारा?

सरस्वती—(कुछ सोच कर) मैं न जाऊँगी।

मदन०—(अचम्भेमें आकर) क्या तुम मेरे साथ न चलोगी ?

सरस्वती—नहीं ।

मदनमोहन कुछ न बोले । क्रोधमें भरे हुए घरसे चल दिये । सरस्वतीने रोका भी, परन्तु उन्होंने एक न सुनी, दूसरे घरकी खोजमें निकल खड़े हुए । परन्तु सरस्वतीकी निष्ठुरता उनके हृदयमें कांटोंके समान चुभ रही थी । विचारने लगे "मैं इसपर कितना भरोसा रखता था ? मैं समझता था, कि किसी संकटसे इसका चित्त विचलित न होगा, स्वराज्य कार्य्यमें भी यह मेरा पूरा साथ देगी; किन्तु पहिलीही परीक्षामें इसने मेरा गर्व चूर कर दिया ।

आज मुझे प्राचीन ऐतिहासिक स्त्रियोंका स्मरण होता है जो देशहितके कार्य्योंमें पूरा २ भाग लेती थीं, और अपने शरीर और प्राणों तककी चिन्ता नही करती थीं । वे स्त्रियां देवियाँ थीं; जो स्वदेश-प्रेम, देश-सेवा, जन्मभूमिकी रक्षा और उसके प्रेमके वशीभूत होकर सब प्रकारसे अपने पतियोंको अपने वचनों द्वारा उत्साहित करती थीं । और कहती थी "हम अपनेको सच्ची सती और आर्य्य-पत्नी तभी जानेंगी, जब आप देशहितके लिए अपने सर्वस्वको ही नहीं वरन् अपने शरीर और प्राणों तककी आहुति कर देंगे" । अहा ! कैसा पवित्र भाव है ? पुत्रोंसे उनका कहना-'बेटा ! यदि तू सच्चा आर्य्य है, यदि तुझे अपनी जन्मभूमिका कुछ भी गौरव है, यदि तूने हमारा दुग्ध पान किया है, तो मातृभूमिकी सेवासे कभी विमुख मत होना हम उसी समय अपनेको पुत्रवती समझेंगी, जब तू अपने देशके काय्यमें आवेगा; इसीमें तेरे देशकी बड़ाई है, कि जन्मभूमिके लिये तू अपने प्राणों तककी इतिश्री कर दे"-हृदयमें एक अपूर्व

ज्योति उतपन्न कर देता है। ईंटोंमें चुने जाते हुए अपने पुत्रोंसे गुरुगोविन्दसिंह की पत्नीका कहना " बेटा ! प्राण रहते कभी आर्य्य धर्म्मसे विमुखहो हिन्दू जाति और मेरे दुग्धको मत लजाना, देशके नाम पर कलंक मत लगाना"—हृदयमें एक अपूर्व उत्साह उत्पन्न कर बिजलीसी दौड़ा देता है। वीर चूड़ावतकी पत्नीका कहना-" नाथ ! आप रण-भूमिमें जारहे हैं, आइये मैं अपने हाथों आपका वीर-वेष बना दूं। मेवाड़की लाज आपही के हाथ है। ध्यान रखिये—आपकी छातीमें चाहे जितने बाण लगें, परन्तु पीठ बेदाग़ रहे", और फिर अपने धर्म्मके विषय में अपने पतिकी दुविधा दूर करनेके लिये जिससे वह निश्चिन्त होकर युद्ध करसके-अपने सिरको काटकर अपने पतिके समीप भेज देना स्वदेश-भक्ति, देश-सेवा, मातृभूमिके हितार्थ आत्म त्यागका एक अपूर्व दृष्टान्त है। इनके ध्यान मात्रसे ही प्राचीन आर्य्य देवियोंका गौरव स्मरण होकर तुरन्तही शरीरमें जीवनी शक्ति उत्पन्न होने लगती है। अहा ! वह समय था—जब देशमें ऐसी देवियाँ विद्यमान थीं। परन्तु हा ! आज देश वैसी स्त्रियों और देवियोंसे शून्य है, वैसी रमणियोंसे रहित है और यही कारण है, कि देशकी आज ऐसी अवस्था हो रही है। उनके समान देवियोंके अभावसे ही भारत आज इस अधोगतिको प्राप्तहो रहा है और पददलित होकर नाना भांतिके कष्ट पा रहा है। सावित्रीकी दृढ़ प्रतिज्ञाके सामने यमराजका शिर झुकाना, पार्वतीकी तपस्याके आगे शिवजी को अपने संकल्पका त्याग देना और सीताके सामने रावणका अपने मुखको छिपा लेना इस बातके ज्वलन्त उदाहरण और प्रत्यक्ष प्रमाण हैं कि स्त्रियों की कर्मण्यता और कर्त्तव्यशीलताके सम्मुख किसीका साहस नहीं जो किसी प्रकार की बाधा डाल सके। जब तक भारतीय

स्त्रियां अपने वैसेही प्रणको नहीं ठान लेतीं तब तक कुछ नहीं होता। जैसे स्त्रियां मातृस्नेहसे परिपूर्ण होकर अपने बालककी रक्षाके लिये अपने प्राणो तककी चिन्ता नहीं करतीं और पति सुखके आगे अपने सुखको कुछ नहीं समझतीं; उसी प्रकार जब वह स्वदेशप्रेमसे परिपूर्ण होकर देशकी भलाईके लिये अपने प्राण और पुत्रोंको अर्पण करने लगेंगी और अपने पतियों के कार्य्योंमें फिर सहायक होकर उन्हे उत्साहित करने लगेंगी तब इस देशमें दूधकी नदियां फिर बहने लगेंगी, यहां पर सोना फिर बरसने लगेगा, यह देश विद्याका केन्द्र फिर बन जायगा, और शीघ्रही अपनी प्राचीन गरिमाको पुनःप्राप्त करलेगा; भारत माता पुनःसंसारकी साम्राज्ञी और स्वदेशकी देवी बन जायगी। जब तक स्त्रियां इन कार्य्योंमें हाथ नहीं लगातीं तब तक पुरुषों का साहस, बल, परिश्रम, विद्या और आन्दोलन निस्तेज और निर्जीवही रहेगा,—... .....”

इस प्रकार विचारोंमें निमग्न मदनमोहन गली २ घूमते और आगे बढ़ते जाते थे, उन्हें इस बातकी सुधि नहीं थी, कि मैं कहाँ जारहा हूँ। वे इस सोचमें इतने लगे हुए थे कि उन्हे इस बातका ध्यान तक नहीं रहा, कि मुझे कहां जाना है और क्या करना है। यकायक एक स्थान पर पैरमें ठोकर लगनेसे उनका ध्यान भंगहुआ और उनको विचार आया कि मैं तो मकान ढूंढने आया था, यों कहां २ फिर रहा हूँ? वह सब विचारोंको त्याग सावधानहो मकान देखने चले। कई मकान देखे, परन्तु कोई पसन्द न आया, अन्तको बड़ी दौड़धूप, परिश्रम और बीसों मकानोंके निरीक्षणके पश्चात् एक मकान पसन्द आया, उसे मदनमोहनने अपने लिये सब प्रकारसे सुभीते का समझा और उसीमे रहना निश्चय किया।

चतुर्थ परिच्छेद ।

दृढ़—संकल्प ।

हटे न तिल भर भी कदम आतप हो या शीत हो ।
जीवन-रणमे अग्रसर हो तो निश्चय जीत हो ॥

मदन मोहन अब एक अलग मकानमे रहते है; परन्तु सरस्वती उनके साथ नहीं है । उनकी मासिक आय लगभग चारसौ रु० थी । इस नए घरमे उनका कार्य्य बड़ी उत्तमता और सरलता पूर्बक चलता था । नौकर, कहार, रसोइया आदि सब थे । घोड़ा, गाड़ी, उन्होंने कुछ नहीं रखा था । केवल अवसर पर काम आनेके लिये एक साईकिल ले रखी थी । कचहरी सदैव पैदल ही जाया करते । अब उनका यह नियम था कि उनके पास जो मुकद्दमे आते, उनका निर्णय जहांतक होता, वे घर पर ही कर दिया करते । किसी को समझाकर, किसी को दबाकर किसी को ऊँचनीच सुझाकर और कभी किसी को और कभी किसी को अर्थात् कभी वादी को तो कभी प्रतिवादी को और कभी प्रतिवादी को तो कभी वादी को दबाकर आपस ही मे समझौता करा दिया करते । यदि कभी कोई मनुष्य हठ पकड़ जाता तो उससे—"अब आप लोगो को आपसमें लड़ना उचित नही, परस्पर भ्रातृभाव भाव रखना, किसी को न सताना, सहन शील बनना, आपसके झगड़ो के लिये न्याययालयमें न जाना, और आपस ही मे समझलेना उचित है । अब वह समय है कि आपका गृह ही न्यायालय हैं, आपस ही मे बैठकर समझौता कर लेना ठीक है, प्रत्येक बात को बैठकर स्वयं तै कर लेना और मिलकर उन्नति करते चले जानेमें ही अब हमारा

कल्याण है। प्रेम और सहानुभूतिसे आपको कार्य्य लेनेमें ही भलाई, और इसीमें मनुष्यत्व है"–आदि बातें कहकर और देशकी स्थिति बतलाकर भारतके दुखोंका ऐसा मार्मिक चित्र खींचकर उनसे समझाते, कि अन्त को लज्जित होकर उसे मानना ही पड़ता। साथ ही उन्हें पास बैठाकर घंटो प्रेम पूर्वक उनसे वार्त्तालाप करके उन्हें देशकी अन्य बातें बतलाया करते। कभी स्वराज्य पर व्याख्यान देने लगते तो कभी कांग्रेस ही का जिक्र छेड़ देते। कभी शिक्षाकी बात कहते तो कभी व्यापारिक दशा का ही वर्णन करने लगते। भारतकी प्राचीन और अर्वाचीन दशा का ऐसा चित्र उतारते कि सुनने वाले कभी प्रसन्न हो उठते, कभी गद्गद् हो जाते, कभी क्रोधमें भर आते और कभी करुणा पूर्ण होकर अश्रु बहाने लगते थे।

जो ज़िमीन्दार उनके यहां मुकद्दमे लेकर आते, उनके सामने बेचारे किसानो की दुर्दशा और दीनहीन अवस्थाका ऐसा वर्णन करते कि वे स्वयं लज्जित होकर प्रेम, सहानुभूति और करुणासे परिपूर्ण हो उनके सामने ही प्रतिज्ञा करते कि "हम कभी अब दीन किसानों को नहीं सतावेंगे, उनपर कोई अन्याय व अत्याचार नहीं करेंगे और उनके साथ सदैव प्रेम पूर्वक बर्ताव करेंगे"। बहुतो पर तो उसका प्रभाव यहांतक पड़ा कि अपने ग्रामोमे किसानों की शिक्षाके लिये पाठशालाएं खोल दीं; बहुतेरे दुर्भिक्षके समय आसामियोंसे लगान न लेते, उनपर व्याज छोड़ देते और बहुतेरे उनकी सिचांई आदिका प्रबन्ध कर देते, और अपनी आसामियोके साथ वही बर्त्ताव करते जो पिता अपने पुत्रके साथ करता है। कतिपय लोगोपर तो उसका प्रभाव यहांतक पड़ा कि उन्होने अपने २ ग्रामोमे स्वराज्यसभाएं, कांग्रेस कमेटियाँ, सेवा-समितियां, किसान

सभाएं और सहयोग-समितियां आदि खोलकर उनका पूर्ण प्रचार किया और ग्रामवासियों को लाभ पहुंचाया। बहुतोंने उनके कहनेसे अनाथालय, विधवाश्रम और दुर्भिक्ष निवारणी समितियां खोलदीं· कतिपय बड़े मनुष्यों ने कन्या-पाठशालाएं और अशुल्क शिक्षालय उनके परामर्शसे स्थापित कर दिये।

यदि कभी मदन मोहनके यहां कोई भाई २ अथवा पिता पुत्र वा अन्य सम्बन्धियोंका परस्पर कोई झगड़ा आता तो अपना उदाहरण देकर उन्हें ऐसा ऊंच नीच सुझाते कि उन्हें उनका कहना मानना ही पड़ता और परस्परके झगड़ों को त्याग आपससे मिलकर रहते। सुतरां मदन मोहनने अपने भरसक कभी कोई अभियोग न्यायालयमें नहीं जाने दिया और वे ज़िमीन्दार तथा धनवान मनुष्यों को सदैव दीन दुखियों की सहायतार्थ उत्तेजित ही करते रहते। कांग्रेस और स्वराज्य सभाए तथा सेवासमितियोंका तो उन्होंने पूर्ण प्रचार किया और दूसरोंसे कराया। इन्हीं समस्त बातों और गुणों पर मोहित होकर उनके नगर निवासी उनपर बड़ी श्रद्धा और भक्ति रखते, उनका सत्कार करते। दीन हीन उन्हें बड़ी आदर और भक्ति की दृष्टिसे देखते और उन्हें अपने लिये देवतातुल्य ही समझते थे, और वे वास्तवमें थे ही उनके सच्चे सखा और सुधारक। यही समस्त कारण थे जिससे उनकी त्रिकालज्ञ न्यायालय से अभियोगों को न भेजने पर भी पूर्णतः चलती थी। यों क्या हुआ कभी २ कचहरी हो आए?

अवकाशके समय मदन मोहन अपने मुहल्लेके लड़कों को एकत्रित करके उन्हें पढ़ाते और उनसे और बड़े २ मनुष्योंमें स्वराज्यका प्रचार करनेमें अपने समयका सदुपयोग करते। इसका फल यह हुआ कि उनके घरके चारों ओर उनका ऐसा

कोई प्रतिवेशी नहीं था जिसका लड़का अशिक्षित और स्वराज्य मीमांसा—रहित रहा हो। मदन मोहनका अनुकरण करके समस्त स्वराज्य-वादियोने अपने २ मुहल्लोंमें भी ऐसा ही किया; इससे उनके नगरके सब मनुष्य शिक्षित और स्वराज्य-प्रिय हो गए। कतिपय मनुष्योंने अपने २ मकानोपर स्वराज्यके झंडे टांग लिये। अधिकांश मनुष्य गांवोंमे जा २ कर अशिक्षित जनतामे व्याख्यानो द्वारा स्वराज्यका प्रचार करने तथा उसकी आवश्यकता बतलानेमे अपने समयको लगाने लगे, इससे नगर के आसपासके लगभग समस्त गांव स्वराज्यवादी और उत्साही हो गए।

मदनमोहन के कमरोंमें बड़े २ नेताओ तथा समृद्धिशाली महानुभावोके चित्र लगे हुए थे, नाना प्रकार की छोटी २ कविताएं और कहावतें लिखी हुई टँगीथी और बहुतसे प्राचीन स्त्रियों और पुरुषोंके चित्र सुशोभित हो रहेथे। उनके इसकार्य्य का अनुकरण अन्य मनुष्योंने भी किया और अपने २ कमरों और शयनागार आदिमें प्रताप, शिवाजी, तिलक, गांधी, मदन मोहनमालवीय, नौरोजी, कृष्ण, भीष्म, पद्मावती आदि महा पुरुष और सती देवियोंके चित्र टाँगने आरम्भ कर दिये, बहुतोंने कहावतें (मोटो) और कविताएं भी टांगी।

× × × × ×

जिस दिनसे मदनमोहन नए घरमें आये, वे यह सब कुछ करते, परन्तु वे कभी अपने पिताके घर नहीं गये, और न उनके पिताने ही उनकी कोई सुधि ली। सबसे अधिक आश्चर्यकी बात तो यह है कि सरस्वतीभी उनकी ओरसे ऐसी निश्चिन्तसी हो बैठी थी, मानो उनसे उसका कुछ कामही नहीं है। उसने उनके पास न कभी कोई संदेशा भेजा और न उनका ही वृत्तान्त मंगवाया।

कुछ दिनों तक मदनमोहन पिताके व्यवहारसे बड़े रुष्ट रहे, और उसीके उत्साहमे उन्होने स्वराज्यका कार्य्य वड़ेही परिश्रम के साथ किया। थोड़ेही दिनोंमें, जैसा कहाजा चुका है, उनके नगरकी कायापलट होगई। होमरूल पैम्फलेट छपाये और बांटे जाते, मुहल्ले २ में स्वराज्य सभाऐं कराई जातीं, स्वराज्यका अर्थ और लाभ समझा २ कर लोगोंको उत्साहित किया जाता। परिणाम यह हुआ कि नगरमे बड़ीही जागृति फली। जब कभी उस जागृति और उन्नतिका जिक्र नगरमें छिड़ता तो मनुष्य मदन मोहनका नाम पहिले लेते और उनके पितासे झगड़ेका जिक्र करते हुए उनके आत्मबल और साहसकी बड़ी प्रशंसा और सराहना करते।

यह सब कुछ था, परन्तु इतना होने परभी मदनमोहनको अब एक चिन्ता दबाए डालतीथी, ज्यों २ दिन बीतते गए वह चिन्ताभी उत्तरोत्तर बलवती होती गई। दिन भरके कार्य्य और स्वराज्य सम्बन्धी बातोंके परिश्रमसे थककर जब अवकाशक समय मदनमोहन रात्रिको बिछौने पर पड़ते, तब निद्रा आनेके पूर्व वह चिन्ता और भी बलवती हो उठती और उनका हृदय विचारों की तरगोंमें टकराया करता। उस समय मदनमोहन अपनी वर्त्तमान अवस्था और उस समयकी बीती हुई स्थिति का जब वे पिताके पास थे मिलान करने लगते। मदन मोहन सोचतेः—

"अहा! क्याही सुखमय समय वह था जबमैं पिता जीकी गोदमें खेला करताथा? छोटा होनेके कारण वे स्वयं प्रेमपूर्वक मुझे पाठशालामें पहुंचाने जाया करतेथे, जब रोने लगताथा तो प्रेममय बातोंसे मुझे बहलानेका उद्योग करतेथे। यदि भूख से छटपटाकर अवसन्न होने लगता तो तुरन्तही भोजन कराते

थे। सदैव साथ रखते और साथही खाते, पिलाते और घुमाते टहलाते थे। कभी एक दिवसकोभी उनसे विछोह नहीं हुआ। वे मेरे बाल्यकालके सखा और रक्षकथे। कभी क्रोध करना जानतेही न थे। यदि कभी कोई वस्तु खो देता अथवा किसी अन्य वस्तुके लिए हठकरता तो तुरन्तही मंगा कर दे दिया करतेथे; युवावस्थामें भी उन्हींका सहारा था, सदैव उनका आश्रय रहता था,उस समय न चिन्ता थी न भय। उनकी गोद क्याथी-जननीके मृदुल स्नहेका पालना और दैनिक सुख शांति की छाया थी उसने जननीकी सुधिभी भुलादी थी। उस दया-मयी देवीने मृत्यु शय्या पर पड़े हुए मुझको पिताजी की गोदमें रखकर कहाथा कि "अपने इस नेत्रविन्दु-आखोंके तारे प्यारे लालको तुम्हारी शरण छोड़ जाती हूँ; देखो, इसे कोई कष्ट न होनेपावे; सदैव इसपर दया रखना और प्रेम पूर्वक इसका लालन पालन करना।" अहा धन्यहो जननी! और धन्य है तुम्हारा मातृस्नेह! तेरे प्रेम पूर्ण हृदयसे निकली हुई अमृतकी स्वच्छ दुग्ध-धाराको पीकरही मै पलाथा। मेरा यह शरीर तेरेही प्रेमकी विमल धारासे सींचा गयाथा, तूने मेरा पालन पोषण किया, बड़े प्रेम पूर्वक दुलारा और सदैव स्नेह रखा। परन्तु माता! तेरे उस प्रेम और आत्म-त्यागका कुछभी बदला मैं न देसका, मैं तेरी कुछभी सेवा न कर सका, मेरे समर्थ होनेसे पूर्वही तू इस संसारको त्याग देवलोकको चली गई। यदि आज तू होती, तो तेरा यह बालक क्यों अकेला रहता? तू अवश्यही उसपर दया लाती और इन सब अवस्थाओं और परिस्थितिमेंभी सदैव मुझे हृदयसे लगाये रहती। यातो पिताजी को मेरा हठ रखनेको विवश करती अथवा स्वयं मेरे पास आकर रहती। जो माता अपनी मृत्यु शय्या पर अपने प्यारे पुत्रको पिता की रक्षामें दे

उसके स्नेह, उसके प्रेम और उसके ममत्व की क्या सीमा हो सक्ती है? धन्य है मातृ-स्नेह!

परन्तु पिताजीने तेरे उन वाक्यों पर कुछ भी ध्यान नही दिया। आज विधिकी विचित्र गतिसे उन्होंने समस्त प्रेम पर पानी फेर दिया जो पिता मुझे विना देखे एक क्षण भी न रह सके थे, परदेश होने पर उनके पास यदि मैं पत्र न डालता तो विह्वल हो उठते थे। यदि कभी अस्वस्थ होता तो तुरन्त ही वैद्य बुलाकर चिकित्सा कराते, अर्थात् जो किसी प्रकार भी मुझे खिन्न और दुखित नहीं देख सक्तेथे, वेही पिता ऐसे निर्मोह हो गए और ऐसी निष्ठुरता उन्होंने धारण की कभी आज तक सुधि भी न ली।"

इस पर मदनमोहन फिर सोचतेः—

'इसमे उनका अपराधही क्या है? वे पिता और मै पुत्र ही। उनकी आज्ञा मानना मेरा धर्म्म था, यदि वे मेरे इस कार्य्यसे सन्तुष्ट नही थे तो वह मुझे न करना था। यदि करने से वे अप्रसन्न हुए तो मना लेना था, बड़ी भूल हुई-कि मैंने उनसे उसी समय अपराध क्षमा न करा लिया। अच्छा तब न सही तो अब सही। चलो अब जाकर क्षमा माँगले।"

इस प्रकार विचार करके ज्योंही वे जानेके लिये उद्यत होते कि उनका विचार पलटा खाने लगता और वे सोचते—

"इसमें मेरा क्या अपराध है? उन्हींकी तो भूल है। मैं कोई बुरा कार्य्य करने तो जाही नहीं रहा था, हुआ तो देश सेवाके लियेही उद्यत था। ऐसी दशामें उन्हें क्या अप्रसन्न होना था? अब मैं कभी मनाने न जाऊँगा। उनके और मेरे विचारोंमें यहीं तो अन्तर है, और उस समय भी यही था; वे चाहते हैं-'अधिकारी वर्गकी प्रसन्नता' और मैं चाहता हूँ "देश

सेवा करना" । यहीं पर मेरा और उनका मार्ग भिन्न २ है। उस समय अलग नहीं था, अब अलग है। मैं उनको मनाने कदापि नही जाऊँगा। यहीं रह कर देश-सेवा करता हुआ आनन्दसे जीवन यात्रा करूंगा।"

बस इस विचारके चित्तमें उठतेही उनकी सब दुविधा हवा हो जाती, सब मानसिक चिन्ता छूट जाती, और इस भावनाके हृदयमें उठतेही उनका चित्त प्रसन्न हा जाता, मानस कमल खिल उठता। सोचते—

"यदि अब मैं पीछे फिरूंगा तो संसार मेरे ऊपर हँसेगा, मुझे साहसहीन और भीरु बतलायेगा, जो मनुष्य आज मेरी प्रशंसा करते हैं, कल वे ही मेरे पीछे तालियां बजा कर मेरी हंसी उड़ाएंगे, और यदि यह भी न सही तो सबसे वड़ी बात देशके साथ अत्याचार करना होगी। बस अब मैं नहीं जाऊँगा-कभी नहीं जाऊँगा, और यहीं रह कर जननी, जन्म-भूमिकी सेवामें लगा हुआ अपना जीवन विताऊँगा। यद्यपि मैं क्षुद्र हूँ, नगराय हूँ, साधारण और निस्सहाय हूँ, साथही मेरी शक्ति अभी अतिशय कम और सूक्ष्म है, किन्तु मेरे पास हृदय है, संकल्प है, प्रतिज्ञा है और सबसे वड़ी बात आत्मिक वल, दृढ़ आत्मा और महान इच्छाशक्ति है, जो मेरे लिये थोड़ा नहीं है। बस मैं निश्चय कर चुकाहूं कि अपने पूर्व पुरुषाओंका अनुसरण करूंगा, और भारतकी नीच, अछूत और पददलित जातियोंको हृयदसे लगा कर और किसानोंको साथ लेकर स्वराज्य आन्दोलनको उत्तरोत्तर बलवान बनाता चला जाऊँगा, और साथही अपने इन्हीं दीन हीन भ्राताओंकी सेवा और उनकी उन्नति करनेमें अपना जीवन विता दूंगा। किसी समय भारत इन्हीका देश था, येही भारतकी सच्ची सन्तान थीं, परन्तु आज

वे कंगाल हैं, नीच हैं, नंगे हैं, भूखे हैं और अपने अधिकारोंसे वंचित हैं, अशिक्षित और उद्देश विहीन रह अन्धकारमें अपना जीवन विता रहे हैं। अतः उनके जीवनमे ज्ञान-ज्योतिको प्रकाशित करके, उन्हें शिक्षित बना कर उनके विचारोंको उन्नत और उनकी सीमाको विस्तृत करूंगा। भारतमातासे उनका परिचय कराऊँगा और उनके विचारोंको स्वराज्यमय बना कर अपने लक्ष्यकी ओर और भी दृढ़ता, उत्तमता और द्रुतगतिसे बढ़ता चला जाऊँगा, बस अब पीछे नही हटूँगा।"

पंचम परिच्छेद

विचित्र-परिवर्तन

निज अधोगति पर यहाँ है आज कुछ कहना हमे ।
पूर्व स्थिति स्मरण कर है शोकमे बहना हमे ॥

उधर सोहनलालका हृदय भी विचारोंके बेगमें उथल-पुथल हो रहा था । मदनमोहनका इस प्रकार चला जाना उन्हें बहुत अखरा । वे समझते थे कि मदनमोहन उनका कहना मानेंगे और उनकी अप्रसन्नतासे क्षुब्ध होकर उनके चरणों पर आकर गिरेंगे । परन्तु उसी दिन उनका वह भ्रम दूर हो गया । यह जानकर कि वह दूसरे मकानमें चले गये, उनकी रोषाग्नि और भी भभक उठी । बोले—

"ऐं ! पुत्र होकर उसको इतना अहंकार? वह मेरा इतना निरादर करे ? जिस पिताने रात दिनको कुछ न समझ कर अपने शरीरको उसके लिये पिञ्जर कर डाला, उसी पिताके साथ इतने घमण्डका वर्ताव ? जिस मदनको मैंने अपना जीवनाधार माना और अपनी आशाओं और आकांक्षाओंका केन्द्र समझा, उसीकी यह करतूत ? कुपुत्र है; कृतघ्न है; अपने ही जन्मको भ्रष्ट करेगा । मेरा क्या ? अपने संचित धनमेंसे एक पैसा भी तो न दूँगा, जायदाद भी कमलाके नाम कर जाऊँगा, तब देखूंगा-क्या करता है ?"

जो लोग बीचमें पड़कर उन्हें समझाते कि "पुत्रही तो है, अपना ही रहेगा, क्यों उससे इतने क्रोधित होते हो ? आज न सही तो कल समझ ही जायँगे'—वे उनसे भी सदैव मदनमोहनकी बुराई किया करते और कहते—

"अभी तो उसने पिताकी गोदका ही सुख उठाया है। अब तनिक इस जीवनको भी तो देखले। अच्छा है चलो"।

यद्यपि वे इस प्रकारकी बातें किया करते थे, परन्तु अभी उनके पितृ-स्नेहमें अस्थिरता नहीं आई थी, पिता-अधिकारमें धक्का लगा था, इसीसे उन्हें इतना क्रोध आया। सत्ताका हरण अथवा विरोध किसीसे भी नहीं सहा जाता। ज्यों २ दिन वीतते गये, सोहनलालका क्रोध शान्त होता गया, और अन्तको गरम लोहेके समान जो कुछ समय तक तो तप्त रहता है, फिर शीतल हो जाता है-उनकी भी गर्मी दूर हुई और उनके मस्तिष्कमें ठंडक आई। अब उनकी मानसिक अवस्थामें परिवर्तन हुआ, उनकी मनोवृत्तियोंपर प्रतिक्रियाका आधिपत्य हुआ, उनके हृदयमें पश्चात्तापका भाव उदय हुआ। वे अपने क्रोधपर पछताने लगे, उस घड़ीको कोसते जब उनके मुँहसे वे शब्द निकले थे, और सोचते—

"मैंने बहुत बुरा किया। क्या मैं नम्रतासे कार्य्य नहीं ले सक्ता था? उस दुलारे लालपर जब मैं सर्वस्व निछावर करनेको प्रस्तुत था तब क्या उस प्यारेके लिये मैं अपनी जिव्हाको वशमें नहीं रख सक्ता था?"

अब मदनोमोहनकी सूरत उनकी आंखोंमें फिरने लगी, उन्हें उनकी बहुत याद आने लगती, तो कहते—

"देखो तो कैसा निर्दय है! मुझसे रूठने चला है। इस प्रकार छोड़ गया, मानो उसका कुछ हूं ही नहीं। फिर एक बार यहां आते भी नहीं बनता? मुझसे ही घमराड करने चला है। अच्छा देखूँ, भाग कर कहाँ जाता है? वहीं चलकर देखूँगा।"

इतनाही नहीं। पश्चात्तापकी ज्वाला दिन प्रति दिन उनके

हृदयमें ज़ोर पकड़ती गई। सोहनलाल खाना, पीना भूल गये। जब भोजनको बैठते–मदनमोहनका स्मरण हो आता, बस भोजन न किया जाता। नींद कोसों दूर थी। घर काटनेको दौड़ता था, गृहस्थीके कार्य्योंमें चित्त न लगता। अब मदन-मोहनकी एक २ वस्तुको घंटों देखा करते, उनके चित्रको नेत्रोंसे हटाते न थे और घंटों चुपचाप अश्रु-प्रवाह किया करते, और सोचते—

"मैं कैसा पिशाच हूँ? क्या यह मेरा घर है? मुझे घर द्वार-का क्या करना है? भाड़में जाय यह घर। धन क्या होगा? जिसके लिये सब कुछ किया, वही नहीं तो फिर गृहस्थी मेरे किस अर्थकी? सम्मान, ऐश्वरी और अधिकारियोंकी प्रसन्नता मेरे किस काम आवेगी? जिसके लिये मायाजालमें पड़ा हूं, जो उसीको इससे कुछ लाभ नहीं पहुंच सक्ता तो, मेरी तृष्णा व्यर्थ है। मेरा सारा जीवन, मान, मर्य्यादा, समस्त ऐश्वरी, कर्म-शीलता और आनन्दोत्सव आदि केवल एक आधारपर अव-लम्बित हैं और वह आधार है" मदनमोहन! जब वही नही तो उनका क्या करना है"?

परन्तु सरस्वतीको देखकर उन्हे धैर्य्य होता और वे सोचते–

"मेरे ही कारण मदन, पत्नी-वियोगका दुख उठा रहा है। मेरा ही मन रखनेके लिये वह बहूको यहाँ छोड़ गया है और अकेला रहता है"।

दम्पतिके इस वियोगपर कभी २ उन्हें बहुत दुख होता, वे विचलित हो उठते और उस समय वे सोचते—

यदि नम्रता सुशील लड़केको हाथसे न निकल जाने देती तो क्या इस समय रूठा बच्चा मनाया भी नही जा सक्ता?"

बस झट विनय और स्नेहकी मात्रा जोर मारती, परन्तु

आगे बढ़कर वह मनकी टक्करसे टकरा कर पीछे हट जाती। सोहनलाल सोचते—

"मैं पिता होकर क्यों मनाने जाऊं?"

ज्यों २ दिन बीतते गये, सोहनलालकी अशान्ति बढ़तीही गई। एक दिन कलेक्टर साहबका एक पत्र आया, जिसमें उन्होंने सोहनलाल को इस राजभक्ति पर बधाई दी थी; सोहनलालने उसे फाड़ कर फेंक दिया और उसका कुछ उत्तर न दिया। एक दिन पुलिसके सुपिरिण्टेण्डेण्टने, भेंटके लिए याद किया, इन्होंने कहला दिया, 'बीमार हैं'। बात यहीं रह गई।

कुछ दिन और बीते। सोहनलाल को अब एक २ पल युग के समान कटता, अपना अन्याय तीव्र वाणके समान हृदयमें चुभा करता, स्वार्थपरता का मोटा परदा जो नेत्रोंपर पड़ा हुआ था, अब हटने लगा, मदन मोहनके उच्च भाव उनकी समझमें आने लगे और वे उनका मर्म समझने लगे। अब उनकी आत्माकी वेदना और भी बढ़ने लगी। वे कहते—

'मैंने पुत्रको इसीलिये न घरसे निकाला है कि वह अपने देशका कल्याण चाहता है, अपने जीवनको देश पर अर्पण किया चाहता है? मेरी भाँति अधर्म स्वार्थसेवी नहीं बना रहना चाहता। वह भारतके दुख हरना, और देशके कष्ट दूरकर धर्मात्मा बनना और जन्मभूमिकी निःस्वार्थ सेवा करके अपने जीवनको पवित्र और उच्च बनाना चाहता है। देश इस समय विपत्तियोंको भोग रहा है. भारतवासी पराये मुखके ग्रास हो रहे हैं, और अपने धन, मान, मर्य्यादा, शरीर और शक्ति-बल को नष्ट करके उन्होंने दूसरोंके कोष और शक्तिको परिपूर्ण किया है, उन्हींके द्वारा वह कैसे पुरस्कृत हो रहे हैं? उनका सर्वस्व लुट रहाहै और सुख उनसे कोसों दूर है। फिर भी मेरी आँखे नहीं

खुलतीं ! और जो पुत्र अपनेको ऐसे देश वासियोंकी सेवामें अर्पण कर रहा है, उसीसे मैं अप्रसन्न हुआ, उसे घरसे निकाल दिया और उसके कार्य्यमें बाधक हुआ, इससे अधिक नीचता मेरे लिये और क्या हो सक्ती है ? इसके स्थानमें कि मुझे इसके लिये अपने भाग्यको सराहना और उसे अधिक उत्साहित करनाथा, मैने उसके साथ यह वर्ताव किया। शोक !

वह मुझे क्या समझता होगा?–देशका द्रोही, देशबन्धुओं का शत्रु, लंकाका विभीषण, पामर, कृतघ्न और नीच। वह देवता है, मैं राक्षस हूं। मैं इस योग्य नहीं कि वह मुझे अपना पिता कहे। मैंने उसके साथ अन्याय किया। अब इसीमें भला है, कि मानापमानका ध्यान अलग रख उसे मना लाऊँ। जाकर उसके सामने खड़ा हो जाऊँगा, और कहूँगा–बेटा ! मेरा अपराध क्षमा करो। तुम्हारे साथ मैंने अन्याय तो किया ही, परन्तु अब उसे भूल जाओ। तुम्हारे वियोगमे तड़प रहा हूँ, मेरे आँसू पोंछो, मुझे समझाओ और मेरे हृदयको धैर्य्य दो, चलो घर चलो और अपना गृह सम्भालो। मेरा क्या, कुछ दिवसका हूँ जैसे तुम्हारी इच्छा हो रहो।"

इस विचारके हृदयमें उत्पन्न होतेही सोहनलाल पुत्रको मनाने चले। पुत्र-प्रेमके सामने आत्माभिमानने सिर झुका दिया अन्यायके सामने सत्याग्रहकी विजय हुई।

× × × × ×

सन्ध्याका समय है, सूर्य्य भगवान अस्त हो गये हैं, तारे चमकते आ रहे हैं, धीमी २ शीतल, मन्द, सुगंध पवन बह रही है, इसी समय सोहनलाल पुत्रको मनाने जा रहे हैं। उनका हृदय अगाध प्रेमसे उमड़ा हुआ है और अपनी प्राचीन करतूतिको सोचते जारहे हैं, "मैने निस्सन्देह अपनी जन्मभूमिके साथ अत्या-

चार किया। हा! मोह और अहंकारके बश मैंने कुछ विचार न किया अब तक मै अन्धकारमें पड़ा हुआ था, अब मदनने मेरी आँखें खोलदीं। भगवती वसुन्धरे! मेरे इस अन्याय को, इस स्वार्थको, इस अज्ञानको और इस पापको क्षमा करना। माता! मैंने अब तक तुम्हारे वास्तविक स्वरूपको नहीं जाना था, तेरी महिमाको नहीं समझा था। जननी! तू कल्पणा-कारिणी है, तू अपने सुतों के अपराध क्षमाकर अपनी स्नेहमयी गोदमें बिठाती है। माता! तो क्या मुझे शरण नहीं देगी? भगवती! तेरी महिमा बड़ी अगम्य और अगाध,है तेरी दया अपार है तेरा प्रेम असीम है, तेरा स्नेह अवर्णनीय है। मातेश्वरी! यह मानव जाति बड़ी अधम है; मनुष्य धन, मोह और मदके बश होकर एक दूसरेको घृणा की दृष्टिसे देखने लगते है, एक दूसरेके साथ अत्याचार करनेसे नहीं चूकते, फिर तेरी महिमाको क्या समझें? तेरे स्वरूपको क्या जानें? परन्तु जननी! तू दयामयी है, वात्सल्य तेरे हृदयमें कूट २ कर भरा है, तू ऐसे अधर्म पुत्रोंको भी अपनाती है। मैंभी उन्हींमें से हूं,। माता! मेरे अपराधको क्षमा कर और अपने इस पामर और कृतघ्न पुत्रको अपनाकर शरणमें रख तूही अपने प्रेम, अपनी दया और अपने अनुग्रहसे इस क्षुद्र-बुद्ध पुत्रके अज्ञान, ममता, मोह और अन्धकारको दूर कर, सत्य मार्ग दिखला सक्ती और दग्ध हृदयको शान्ति पहुँचा सक्ती है।"

अधिक क्या? सोहनलाल माताकी स्तुति करने और उस की महिमा वर्णन करनेमें ऐसे तन्मय हुए कि वे अपने आपको भूलसे गये और उन्हें यहभी ध्यान न रहा कि उन्हें कहाँ जाना है? वे कहाँ जा रहे हैं? कितनी दूर आगए और कितना अभी और है? वे इस प्रकार चले जा रहेथे कि किसीकी कण्ठ ध्वनी

से उनका ध्यान भंग हुआ और उन्हें ऐसा जान पड़ने लगा मानो कोई गारहा है। सामने मदनमोहन का मकान था, वह स्वर उन्ही की ओरसे आरहा था, सोहनलाल वही खडे हो गये और सुनने लगे—

हे जननी ! हे जन्म-भूमि ! प्राणोंसे प्यारी,
हम तेरे सब पुत्र आज तुझपर हैं वारी।
तू है पुन्य स्वदेश स्वर्गसे बढ कर हमको,
यह जाना है 'आज' छोड़कर पहिले भ्रमको॥
सब फूले नही समा रहे, सुनि स्वराज्य-सन्देशको।
है हम अपनाते जा रहे अपने भापा वेपको॥
बाधाएं हा लाख मगर हम नही हटेंगे,
उमंग और उत्साह हमारे नही घटेंगे।
कष्ट कठिन हो कृष्ण कृपासे सभी कटेंगे,
अहो कभी तो मोह द्रोहके हृदय फटेंगे॥
बस जिसमे भारत-भूमिका श्रेय ध्येय वह कार्य्य है।
त्याज्य सभी हमको लगे प्रिय 'स्वराज्य' वह कार्य्य है॥

......अब तो सोहनलाल प्रेममे और भी अधिक पग गए और पहिलेकी अपेक्षा अधिक तीव्र गतिसे चलने लगे। अब उन्हें मदनमोहनसे मिलनेकी इच्छा इतनी प्रबल हो उठी कि एक २ पग एक २ मीलके समान जान पड़ने लगा। ज्यो २ वह आगे बढ़ते जाते थे, उत्कण्ठा प्रबल होती जाती थी, होते२ वह मकानके समीप पहुँचे। गान अब भी हो रहा था, वे वहीं रुक गए और सुनने लगे—

नीलाम्बर परिधान हरित पटपर सुन्दर है,
सूर्य्य, चन्द्र युगमुकुट मेखला रत्नाकर है।
नदियाँ प्रेम-प्रवाह फूल तारे मण्डल है,
बन्दी विविध विहग शेष-फन सिंहासन है॥
करते अभिषेक पयोध है, बलिहारी इस वेशकी।
हे मातृ-भूमि! तू सत्यही सगुण मूर्त्ति सर्वेश की॥

मृतक समान अशक्त विवश आँखोंको मीचे,
गिरता हुआ विलोकि गर्भसे हमको नीचे।
करके तूने दया हमे अवलम्ब दिया था,
लेकर अपने अतुल-अकमे त्राण किया था॥
तू जननीका भी सर्वदा थी पालन करती रही।
फिर क्यो न हमारी पूज्य हो (तू) मातृ-भूमि भारत मही!

तेरी रजमें लोट पोट कर बड़े हुए हैं,
घुटनोके बल सरक सरक कर खड़े हुए है।
परमहंस सम बाल्य-कालमे सब सुख पाये,
तेरे कारण धूल भरे 'हीरे' कहलाये॥
हम खेले कूदे हर्षयुत् तेरी प्यारी गोदमें।
हे मातृ-भूमि! तुझको निरख मग्न न हो क्यो मोदमे?

पालन, पोषण और जन्मका कारण तूही,
वक्षःस्थलपर हमे कर रही धारण तूही।

अभ्रंषक, प्रासाद और यह महल हमारे,
बने हुए है अहो तूझीसे तुझपर सारे ॥
हे मातृ-भूमि ! हम जब कभी शरण न तेरी पायँगे–
तभी प्रलयके पेटमे सभी लीन हो जायँगे ॥

हमें जीवनाधार अन्न तूही देती है,
बदलेमे कुछ नही किसीसे तू लेती है ।
श्रेष्ठ एकसे एक विविध द्रव्योंके द्वारा–
पोषण करती प्रेमभावसे सदा हमारा ॥
हे मातृभूमि ! उपजे न जो तुझसे कृषि-अंकुर कभी–
तो तड़प तड़पकर जल मरें जठरानलमें हम सभी ॥

पाकर तुझसे सभी सुखोको हमने भोगा,
तेरा प्रत्युपकार कभी क्या हमसे होगा ?
तेरी ही यह देह तुझीसे बनी हुई है;
बस तेरे ही सरस सारसे सनी हुई है ॥
हा ! अन्त समय तूही इसे अचल देखि अपनाइगी ।
हे मातृ-भूमि ! यह अन्तमे तुझमे ही मिल जायगी ॥

जिन मित्रोका मिलन मलिनताको है खोता;
जिस प्रेमीका प्रेम हमें मुददायक होता;
जिन स्वजनोको देखि हृदय हर्षित हो जाता,
नहीं टूटता कभी जन्मभर जिनसे नाता–

उन सबमे तेरा सर्वदा व्याप्त हो रहा तत्व है।
हे मातृ-भूमि ! तेरे सदृश किसका महा महत्व है ?

निर्मल तेरा नीर अमृतके सम उत्तम है,
शीतल, मन्द, सुगध पवन हर लेता श्रम है ।
षट ऋतुओका विविध दृश्ययुत् अद्भुत् क्रम है,
हरियालीका फर्श नही मखमलसे कम है ॥
शुचि सुधा सींचता रातमे तुझपर चन्द्र-प्रकाश है।
हे मातृ-भूमि ! दिनमे तरणि करता तमका नाश है ॥

सुरभित, सुन्दर, सुखद सुमन तुझपर खिलते है,
भॉति २ के सरस, सुधोपम फल मिलते है,
औषधियॉ है प्राप्त एकसे एक निराली,
खाने शोभित कही धातु बर रत्नो वाली ॥
आवश्यक जो होते हमे मिलते सभी पदार्थ है।
हे मातृ-भूमि ! बसुधा, धरा तेरे नाम यथार्थ है ॥

दीख रही है कही दूर तक शैल-श्रेणी,
कही घनावलि बनी हुई है तेरी वेणी ।
नदियॉ पैर पखार रही हैं बनकर चेरी,
फूलोंसे तरुराज कर रही पूजा तेरी ॥
मृदुमलय वायु मानो तुझे चन्दन चारु चढ़ा रही ।
हे मातृभूमि ! किसका न तू सात्विक भाव बढा रही ?

क्षमामयी, तू दयामयी है, क्षेममयी है,
सुधामयी, वात्सल्यमयी, तू प्रेममयी है,
विभवशालिनी, विश्व-पालिनी, दुख हरणी है,
भयनिवारिणी, शान्तिकारिणी, सुखकरणी है।
हे शरणदायिनी देवि! तू करती सबका त्राण है।
हे मातृभूमि! सन्तान हम, तू जननी तू प्राण है॥.

आते ही उपकार याद हे माता! तेरा
हो जाता मन मुग्ध भक्ति-भावोका प्रेरा।
तू पूजाके योग्य कीर्ति तेरी हम गावे, ,
मन तो होता तुझे उठाकर शीश चढ़ावे॥

वह शक्ति कहाँ, हा! क्या करे, क्यों हमको लज्जा न हो?
हे मातृभूमि! केवल तुझे शीश झुका सक्ते अहो॥

करुणा वश जब शोक दाहसे हम दहते है,
तब तुझपर ही लोटलोटकर दुख सहते है।
पाखण्डी भी धूलि चढाकर तनमे तेरी-
कहलाते है साधु नही लगती है देरी॥

इस तेरी ही शुचि धूलिमे मातृभूमि! वह शक्ति है।
जो क्रूरोके भी चित्तमे उपजा सक्ती भक्ति है॥

कोई व्यक्ति विशेष नहीं तेरा अपना है,
जो यह समझे हाय देखता वह सपना है।

तुझको सारे जीव एक से ही प्यारे है,
कर्म्मोंके फल मात्र यहाँ न्यारे न्यारे है ॥
हे मातृभूमि ! तेरे निकट सबका सम सम्बन्ध है ।
जो भेद मानता वह अहो ? लोचनयुत् भी अन्ध है ॥
जिस पृथ्वीमे मिले हमारे पूर्वज प्यारे ।
उससे हे भगवान ! कभी हम रहे न न्यारे
लोट लोट कर यही हृदयको शान्त करेंगे,
उससे मिलते समय मृत्युसे नही डरेंगे ॥
इस मातृभूमि की धूलिमे जब पूरे सन जाँयगे ।
हो भव-बन्धन-मुक्त तव, आत्मरूप वन जाँयगे ॥"

स्तुति समाप्त हुई, सोहनलाल का ध्यान भी भङ्ग हुआ। वे आगे बढ़ने लगे; किन्तु ज्यो ज्यों आगे बढ़ते जाते थे, लज्जा प्रवल होती जाती थी और पीछे लौटने को चित्त चाहता था। मकान की सीढ़ी पर पैर रखते ही उनका हृदय दहल उठा, वे यकायक ठिठक से गए। एक पैर चबूतरे और दूसरा सीढ़ी पर ही रखे हुए उन्होंने गानवाले कमरे की ओर झाँका। देखा-"मदनमोहन बैठे एक समाचारपत्र पढ़ रहे हैं, पासही चार पाँच मित्र बैठे हैं,।एक मेज़ पर एक हारमोनियम रखा है, मित्रों मे से एक महाशय हारमोनियम पर हाथ रखे हुए खड़े हैं।" उन्हें देख कर सोहनलाल ने विचारा कि कदाचित यही महाशय वह स्तुति कर रहे थे। सोहनलाल स्तब्ध हो गये, उनके पैर बँध गये, और उनसे आगे न बढ़ा गया। उनके मन ने फिर कहा—

'इस प्रकार मना कर ले चलने में तुम्हारी क्या बड़ाई है,

क्या गौरव है ? यह सत्य है कि सम्भवतः अब वह मेरी बात नहीं टालेगा, किन्तु वह शृद्धा और भक्ति जो पिता के प्रति पुत्र मे होना चाहिए, कहाँ? नहीं, मुझे ऐसा कार्य्य करना चाहिए कि वह स्वयं मेरे पास आए और मेरी भक्भि और श्रद्धा उसके हृदय मे ज्यो की त्यों बनी रहे। अपने को मेरा पुत्र कहते हुए उसका मस्तिष्क ऊचा हो जाय, नेत्र गौरवान्वित हो जावें और हृदय-कमल विकसि हो उठे। यही अब मेरा कर्त्तव्य है। ईश्वर! मुझे बल दो, मातृभूमि! मेरे हृदय में जागृति उत्पन्न करो।"

सोहनलाल उलटे पैरो लौट पड़े, मदनमोहन से मिले नहीं। पिता पर पुत्र की जीत नहीं हुई, वरन् पुत्र के भावो की विजय हुई; सत्याग्रह का सिद्धान्त अटल रहा। विचित्र-परिवर्त्तन आरम्भ हुआ।

षष्ठ परिच्छेद

संन्यास-धारण

बढो बढो पीछे मत हटना भारत का कल्याण करो ।

जननी जन्मभूमि चरणो मे जीवन का बलिदान करो ॥

जिस दिनसे मदनमोहन दूसरे घरमें गये थे, उस दिनसे सोहनलाल का यह नियम था कि वे सदैव बाहर की बैठकमें सोया करते, यहाँ तक कि वे दिनमे भी बहुत कम क्या—केवल एक बार रसोई जेवनेके लिए भीतर जाते, संध्या को ब्यालूभी बाहर ही मंगा कर खालिया करते थे । सरस्वती अकेली ही भीतर रहती थी ।

एक दिवस की घटना है—प्रातःकाल का समय था, कुछ कुछ उजाला हो आया था, कौए बोलने लगेथे और चिड़ियोंने चहचहाना आरम्भ कर दिया था, मनुष्य भी शय्या त्याग कर शौचादिसे निवृत होते जारहे थे। सरस्वती भी सोकर उठी, अभी वह शौच जानेके लिए प्रस्तुतही हो रही थी कि इतनेही में बूढ़े नौकरने आकर कहा—"बड़े बाबूजी अपने कमरेमें नहीं है। उनके जूते भी नहीं है, और न प्रति दिनके पहिननेके कपड़े, न जाने वे कहाँ चल गये ?

नौकर बाबू सोहनलाल को बड़े बाबू और मदनमोहनको बबुआ कहा करता था ।

इतना सुनतेही सरस्वती का माथा ठिनका, उसे किसी दुर्घटना की अंशका हुई। वह जानती थी कि कुछ दिनोंसे श्वसुर अनमने रहा करते थे, संसार की ओरसे उनका मन उचटसा गया था, उसने सोचा—"कहीं घर छोड़ कर चले तो नहीं गये" ?

परन्तु उनका एक नियम था—'वे प्रातःकाल प्रतिदिन वायु-सेवनार्थ वाहर घूमने जाया करते थे, सरस्वतीने नौकरसे कहा 'कहीं हवा खाने तो नहीं चले गये ?'

नौकर बोला–'सम्भव है, परन्तु इतने शीघ्र तो जाया नहीं करते थे, आज तो मैं उन्हें यहाँ देरसे नहीं देखता हूँ।'

सरस्वती घबड़ा गई, फिरभी उसने उस समय तक जबकि वह टहल कर लौटते थे उनकी प्रतीक्षा करने को कहा। सात बजे, सोहनलाल न लौटे, नौ बजे, फिर भी नहीं आये, दस बजे, होते २ ग्यारह बजे, यहाँ तक कि वारह भी बज गये, परन्तु सोहनलाल का लौटना नहीं हुआ। अभी तक सरस्वती समझे हुई थी–'कदाचित वहाँसे लौटकर किसी अफ़सरसे मिलने चले गये होंगे' परन्तु जब दोपहर होगया और सोहनलाल न लौटे, तबतो उसे चिन्ता हुई, वह उनके कमरेमें यह देखने फिर गई कि वे ले क्या २ वस्तुएँ गये हैं ? परन्तु कमरे में घुसतेही उसकी दृष्टि मेज़ पर रखे हुए एक पत्र पर पड़ी, जिस पर उसीका नाम लिखा था, सरस्वतीने लपक कर उसे उठा लिया, पढ़ा, बस फिर क्या था? पढ़तेही मुर्छित सी हो गई। पत्रमें लिखा था—

"बहू ! चित्त अब संसार की ओरसे विरक्त हो गया है संन्यास लेती हूँ और अब इसीमें मेरा हित है। मैं नीच हूँ, अधम हूँ, पामर हूँ, मैंने जननी जन्मभूमिके साथ घोर अन्याय और अत्याचार किया है। मैं बड़ा कृतघ्न हूँ, जो पुत्र अपने शरीर को देश की सेवामें अर्पण कर रहा था, उसीको रोकनेका उपाय किया, उसीके मार्गमें मैं कण्टक बनता था, उसीकी कार्य्य-शीलतामें विघ्न डालता था, इससे बढ़ कर अपराध, पाप और नीचता और क्या हो सक्ती है? मैं मातृभूमि का द्रोही और उसका कृतघ्न पुत्र हूँ, अब तुमने भी समझ लिया होगा—मैं कितनी अधम

प्रकृति और दुष्मनोवृत्तियों वाला हूँ ? जब मैं स्वयं इन बातोंका विचार करता हूँ तो हृदय व्याकुल हो जाता है, जो पुत्र देश-सेवा करके मेरा और मेरे कुलका नाम उजागर करना चाहता था, जो दुखी देशको स्वाधीन और सुखी बनाने की चेष्टा मे लगा था, हा ! उसी देववत् पुत्रका मैने निरादर किया, उससे अप्रसन्न हुआ, कटुवाक्य कहे, यहाँ तक कि घरसे निकाल दिया, इससे अधिक अन्याय और मातृभूमिके साथ अत्याचार और क्या होसक्ता है ? धिक्कार है मुझे ! इन्हीं सब बातोंके कारण मेरा हृदय चिरकालसे व्याकुल हो रहा है, मेरा मन विह्वलित और चित्त विचलित हो रहा है। यह एक अक्षम्य अपराध है, कैसे क्षमा किया जा सक्ता है ? पुत्र भी इसीके कारण गृह-त्यागी हुआ और पत्नि-वियोगसे वंचित होकर महान कष्ट सह रहा होगा। अस्तु जो कुछ होना था, होगया, वह भी मेरी भलाई ही के लिए था, यदि ऐसा न होता तो आज मेरे चित्तमें यह भाव उत्पन्न न होते, इन विचारों का उदय न होता, मेरे मोही नेत्र न खुलते और मैं संसार-बन्धनसे मुक्त हो अपने जीवनको न सम्भालता। अब धन, घर और मान-मर्य्यादा मेरे कामके नहीं, यह सदा किसीके पास नहीं रहा और न आगे रहेगा। परन्तु, हाँ जो कुछ मेरे हृदयमें हो रहा है—वह मेरे इस निन्द्य और अधम कार्य्यकी प्रज्वलित ज्वाला है जो रात्रि दिवस मेरे हृदयको जलाया करती है, मानसिक-ज्वाला मेरे हृदय को प्रति क्षण बड़वानल की भांति दग्ध किया करती है।

इन सबका प्रायश्चित् यही है कि मैं भी गृहत्यागी होकर उस माता की उस दयामयी प्रेमपूर्ण जननी जन्मभूमिकी, उस क्षमामयी मातृभूमिकी, जिसके साथ मैंने यह घोर अन्याय किया है, दत्तचित्त होकर सेवा करूं। इसी लिए मैं सन्यास धारण

करता हूं और जहॉ तक होगा सब प्रकारके कष्ट संकट विघ्न बाधा और वेदनाओं को सहता हुआ सदैव अपने इस शरीरको मातृभूमि की सेवामे लगा कर पवित्र बनाऊँगा; बस इस कलंकसे उद्धार होने का, इस श्रापसे मुक्त होनेका यही एक द्वार है। लो बस जाता हूँ। अब यह घर मेरा नही, मैं अब इसमे नही आऊँगा, मदनमोहनसे कहला भेजना मेरा अपराध क्षमा करे, मै राक्षस हूँ, क्षमाके योग्य नही, फिर भी, वह देवता है, क्षमा करेगा ही।

रही तुम्हारी, सो तुम यातो मदनको यही बुला लेना, अथवा उसके पासही चला जाना। बेटी! चलते समय तुम्हारे लिये मेरा आदेश और उपदेश है, कि उसके साथ रहकर गृहस्थ-धर्म्मका पालन करना, उसकी आज्ञा मानना, जो वह कहे सोई करना। उसके साथ रहकर देश सेवा कार्य्यमें उसे सहायता पहुँचाना। स्त्रीके लिये यही एक धर्म्म है, कि पतिके साथ गृहस्थ धर्म्मका पालन करती हुई वह भी उसी मार्गका अवलम्बन करे जिसपर उसका पति चल रहा हो। तुम्हारी सहायतासे वह कार्य्यको और भी उत्तमतासे कर सकेगा और तुम्हारी (स्त्री जाति की) वह सहायता माता, जननी जन्मभूमि के दुखोंको दूर कर शीघ्रही उसके उद्धारका कारण और उत्थान का साधन होगी। ध्यान रखो, पतिकी अनुगामिनी होनेसे ही स्त्री भव-मुक्त हो सक्ती है, तभी उसका कल्याण हो सक्ता है जब वह पतिकी सेवा करती हुई प्रति कार्य्यमें उसे सहायता पहुँचावे; और यही सहधर्म्मिणी और अर्द्धांगिनी बननेका सच्चा मार्ग है। अतएव जाओ, और मदनके साथ रहती हुई माताकी सेवामें संलग्न होओ। मैं भी जाता हूँ, मेरे लिये चिन्तित मत होना· क्योंकि ऐसा करना तुम्हारे लिये अहित कर होगा।

मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ—"ईश्वर तुम्हारे हृदयमें दया, प्रेम, परोपकार, सहानुभूति, सेवा-धर्म्म, स्वदेश-प्रेम, पति-भक्तिका बीजारोपण करके शक्तिका संचार करे, जिससे तुम समस्त नारीसुलभ गुणोंसे विभूषिता होकर पति-सेवा करती हुई मातृ-भूमिकी सेवा करके आदर्श रमणी-रत्न और अन्य स्त्रियोंके लिये अनुकरणीय महिला बनो। बस आशीर्वाद, ईश्वर तुम्हारा और तुम्हारे हृदय-देवता मदनका कल्याण करे"।

तुम्हारा कृतघ्न पितावत्

सोहनलाल

× × ×

पत्र पढ़ते ही सरस्वतीने एक लम्बी आह खींची और सन्न रह गई। उसने कहा—

'मैंने पतिका बिछोह इस आशा और विचारसे सहा था कि सम्भव है मेरे ऐसा करनेसे श्वसुरके हृदयमें सन्तापकी कमी होगी और पिता-पुत्रोंके फटे हुए हृदय सरलतासे फिर मिल जावेंगे। परन्तु ऐसा नही हुआ, घटनेके स्थानमें वह सन्ताप वढ़ताही गया और आज इस परिमाणको पहुँच गया, मैं यह क्या पढ़ रही हूँ? हा! अब क्या होगा? वे अप्रसन्न होकर चले गये, क्या वे अब सहजही मान जांयगे?'

परन्तु थोड़ीही देरमें उसे चेत हुआ, मोह दूर होकर ज्ञानका उदय और बुद्धिका संचार हुआ। चिट्ठीके आशयसे उसे धैर्य्य हुआ वह वही बैठ गई और मदनमोहनको पत्र लिखने लगी:—

प्राणनाथ!

मैं क्या मुख लेकर आपको पत्र लिखूं? जिस समय आपके साथ चलनेको मैंने मना कर दिया, उसी समयसे आप मुझसे रुष्ट होंगे। परन्तु स्वामिन्! मैंने ऐसा क्यों किया? इसमें

भी रहस्य था। मेरी धारणा थी—यदि मैं आपके साथ चलूँगी तो आपके पिता जी को बड़ा कष्ट होगा। उनका सन्ताप और क्षोभ बढ़ताही जायगा और सम्भव है कि आपके और उनके मध्य द्वेषाग्नि कम होनेके स्थानमें बढ़ती चली जाय। इन्हीं विचारोंसे मैंने ऐसा किया, मैंने सोचा, यदि मैं आपके साथ न चलूंगी तो उनका सन्ताप भी क्रमशः कम होता जायगा और कदाचित दोनोंके हृदय फिर मिल जावेंगे। परन्तु मेरा यह विचार ठीक न निकला, बात और भी बढ़ गई। आपके पिताजी कल रातको न जाने कहां चले गये? केवल एक पत्र छोड़ गये हैं, उसे भी आपके पास भेजती हूँ। उनका लिखना है 'मैं सन्यासी होता हूँ और अपने कर्मोंका प्रायश्चित करनेके लिये देश-सेवामें कटिबद्ध होऊँगा, तुम (मैं) उनके (आपके) पास चली जाना।

नाथ! अब क्या किया जाय? जो होना था सो होगया। अब अपराध क्षमा कीजिये और दया कर दासी को चरणोंमें बुलाकर अपनाइये।

प्राणेश! आप जानते हैं, स्त्रीके लिये पतिही आधार है, वह उसके लिये देवता और श्रीहरि है। ईश्वर, तीर्थ, पूजा, वृत जो कुछ है पतिही है। स्त्री स्वामीके आगे कैसी ही अपराधिनी हो—वह भी क्षम्य है, क्योंकि वह अबला है, क्षुद्रबुद्ध है और मूर्ख है। मैंने जो अपराध किया है, एक प्रकार यद्यपि वह अक्षम्य है, परन्तु अब दया कीजिये। मुझे अब अकेला रहना अच्छा नहीं लगता, अब यातो आप यहां आजाइये, अथवा मुझेही वहाँ बुला लीजिये। मैंने उस समय जो कुछ किया था, वह उसी विचारसे किया था, परन्तु ऐसा नहीं जानती थी। मेरे लिये तो सुख, ऐश्वरीय जो कुछ है, आपही

हैं, सदैवसे थे और रहेंगे। यदि मैं आपकी सेवामें रहती तो मेरा जीवन सफल होता, क्योंकि नारीके लिये गति, मुक्ति जो कुछ है पति, चरण-सेवाही है। पतिको ही सन्तुष्ट करके स्त्रीके समस्त कामनाएं, तीर्थ, वृत, जप, तप, दान और पूजा पाठादि पूर्ण हो जाते हैं। परन्तु ऐसा मैं न कर सकी; इसका मुझे बड़ा दुख है। आपको मैंने असन्तुष्ट किया, आपकी अविश्वासे अधिक अधर्म और अपराध अन्य क्या हो सक्ता है? परन्तु जो हुआ सो हो गया।

स्वामिन! अब मेरा हृदय दग्ध होता है, आपका वियोग और अधिक नहीं सहा जाता, अब मैं आपकी चरण-सेवा करके आपकी आज्ञानुसार देश-सेवामें प्रवृत्त होऊँगी और सब प्रकारसे आपका हाथ बँटा कर अपने सहधर्म्मिणी-पदका परिचय देकर उसे सार्थक करूंगी।

प्राणेश! अधिक क्या? मनका दुख मन मे है, लिख कर वह कैसे दिखलाया जा सक्ता है? बस यही वहुत है। अब मुझे क्षमा कीजिये और शीघ्र ही चरणोंमें आश्रय दे दया दर्शाइये। मैं आपकी दासी हूं, जिस मार्ग से आप जा रहे है वही मेरा पथ होगा इसीमे मेरा कल्याण है।

आपकी दासी।

सप्तम्परिच्छेद ।

सहायता ।

दिन पर दिन उन्नति करो विघ्नोका संहार हो ।
शब्द गगन भेदी उठे जय 'स्वराज्य' जयकार हो ॥

इस घटनासे मनदमोहनके हृदय पर बड़ी ठोकर लगी। पिता के वैराग्यका कारण अपनेही को समझ उन्होंने मनही मन अपने को बहुत तिरस्कृत किया। उन्होंने और सरस्वतीने सोहनलाल की खोज कराने में कोई कमी नहीं की, परन्तु सोहनलालका कही पता न लगा। जब पिताका कोई चिन्ह तक न ज्ञात हुआ तब तो मदनमोहनकी ग्लानि और भी बढ़ गई। वह बारबार सोचते कि यह सब उन्हीं की अधमताका फल है। चित्तकी चिन्ता उत्तरोत्तर बढ़ने लगी, रात्रि दिवस पिता ही का सोच रहता, किसी प्रकार ढाढ़स न होता था। स्वराज्य कार्य्य में भी अब उनका उतना चित्त न लगता। दूसरे स्वराज्य सभाका कार्य्य भी अब उत्तमता पूर्वक होने लगा था, इससे उन्हे और भी कोई विशेष चिन्ता नहीं थी।

दिन पर दिन बीतते गये; महीने बीते- वर्ष बीते किन्तु सोहनलाल न आये और न कहीं उनका पता ही चला। नियम है—'कालके साथ मनुष्यको प्राचीन स्मृति भी कम होती चली जाती है'। अतः अब मदनमोहनको भी पिताका ऐसा कुछ स्मरण न रहा, वरन् जब कभी उन्हे ज्ञान होता, उन्हे अपनी निर्बलता पर क्रोध आता और उसके लिये अपनेको बार २ धिक्कारते। मदनमोहन स्वराज्य आन्दोलन फिर बड़े उत्साहसे करने लगे।

अब केवल एक बातकी मदनमोहनको विशेष चिन्ता थी। सभाके सदस्योंसे जो चन्दा आता था, वह बहुत कम था। समस्त आवश्यकीय कार्य उससे पूर्ण नहीं होते थे। नगरके धनी-मानी और मालदार मनुष्योंकी यह दशा थी कि चन्दा देना तो एक ओर, वे कभी सभाकी ओर मुँह करके देखते भी न थे, स्वराज्यके नामसे ही उनका हृदय कम्पित होता था।

सच है ऐसे बड़े मनुष्योंने ही देशको दुखी बना रक्खा है यही हैं जिनके कारण भारत वर्ष इस अधोगतिको प्राप्त हो रहा है। यदि हमारे देशके धनी मनुष्य देशकी हितकारिणी सभा, समितियोंकी ओर तनिक भी ध्यान देते, देशहितके कार्य्यमें थोड़ा भी व्यय करते तो देशकी आज यह दशा होती? हमारी सभाओंको धनका अभाव न रहता। हाँ उत्सवों और डालियों, बड़े मनुष्योंकी भेंटो और अपने स्वार्थमे चाहे जितना धन व्यय हो जाय तो कुछ चिन्ता नहीं, परन्तु देशके लिये एक पैसा भी न देंगे। हा शोक! हमारे देशके धनिकोंकी यह दशा? क्यो न देश अधोगतिमे रहे?

* * * *

आज महीनेकी पहिली तारीख थी; प्रातःकाल था, कोई दस बजे होंगे। मदनमोहन स्वराज्य सभाके कार्य्यालयमें इसी चिन्तामें बैठे हुए थे कि चपरासीने डाक लाकर दी। आजकी डाकमें दो चार समाचार पत्र, पांच कार्ड और एक रजिस्टरी लिफ़ाफ़ा था। लिफ़ाफ़े पर लिखा था—

"श्रीयुत् मन्त्री, स्वराज्य सभा...... ।"

मदनमोहनने सबसे पहिले इसी लिफ़ाफ़ेको खोला। देखते -क्या हैं— उसमे १५००) रु० के नोट हैं, साथमे एक पत्र भी है नोटोंको देखकर मदनमोहनको बड़ा आश्चर्य्य हुआ, वह स्तब्ध

रह गये, फिर पत्र पढ़ा, पढ़ते ही हर्ष की सीमा न रही, हृदय-की उदासीनता जाती रही, मुख प्रसन्न होगया, मारे हर्षके वह कुर्सीसे उछल पडे। पत्रमे लिखा था—

मन्त्री जी ?

सेवामें १५००) के नोट भेजता हूं, कृपया स्वीकार कीजिये इस समय स्वराज्यका जैसा आन्दोलन होना चाहिये, सभाकी ओरसे वैसा नहीं होरहा। जिन लोगोंने अपना तन, मन धन इसे अर्पण किया था, इस समय उनकी भरपूर सहायता नहीं हो रही है। हम लोगोमें अधिकतर ग्रामीण हैं, उनके बीच इस आन्दोलनका प्रचार करनेकी बड़ी भारी आवश्यकता है। यदि उन्हें सम्भाल लिया गया, यदि किसानोंके बीच स्वराज्यकी प्रतिध्वनि गुंजार दी गई, तो स्वराज्य कार्य्यकी सफलतामें बड़ी सहायता मिलेगी। अतः इस बातकी आवश्यकता है कि हमें अकर्मण्यता छोड़ कर कृषकोमे स्वराज्यका प्रचार आरम्भ कर देना चाहिये।

परन्तु एक बात है-ग्रामीणोकी जितनी सङ्ख्या है, आपकी सभामें उसके लिये पर्याप्त उपदेशक नहीं हैं, और न उतने कार्य्यकर्त्ता ही हैं। आपके देहाती, मुहल्लो, गलियो, और घरों में व्याख्यान देकर आन्दोलन करने वाले मनुष्य बहुत ही कम है। परन्तु पुस्तकें एक ऐसी वस्तुएं हैं जो उनका कार्य्य भली भांति कर सक्ती हैं और मनुष्योके हृदयोको हिलाकर उनमें पूर्णतः स्वराज्यका प्रचार हो सक्ता है। यदि ग्रामीणोंमे स्वराज्य सम्बन्धी नाना प्रकारकी बहुत सी छोटी २ पुस्तको और समाचारपत्र बाँटने और पढ़नेका प्रबन्ध किया जाय तो सम्भव है, बहुत कुछ कार्य्य हो जाय। परन्तु फिर एक बात है-ग्रामीणोमे पढ़े लिखे और शिक्षित मनुष्य बहुत ही कम क्या सहस्रमे दो

भी न होंगे, फिर उन पुस्तक और पत्र पत्रिकाओको वे लेकर क्या करेंगे ?

अतएव सबसे पहिले हमें यह करना है कि ग्रामीणों को शिक्षित करें और उनमें विद्याप्रचार कर उन्हें साक्षर बनावें। आप के पास इस समय यह १५००) के नोट भेजे हैं, आप इनसे गांवो मे शिक्षाका प्रचार कीजिये और जब वे लोग पढ़ने लिखने लगें तो सरल भाषामें उनमे (१) स्वराज्य विषयक छोटे छोटे निबन्ध और पुस्तकें लागत मात्र मूल्य पर अथवा अमूल्य वितरण कीजिये, (२) गांवोमे वाचनालय स्थापित कीजिये और (३) वैतनिक उपदेशक तथा प्रचारक नियत कीजिये जो उन्हें "आत्मसंयम, आत्मनिर्भर, आत्मनिर्णय, आत्मसुधार, आत्मबल और सत्याग्रहके साथ २ स्वराज्यका भी तत्व समझाकर उनमे जागृति उत्पन्न करें। आवश्यकता पड़ने पर मैं भरपूर आर्थिक सहायता दूंगा।

... . भारतदास .... स्वदेश

× × × × × ×

स्वराज्यसभाने वैसा ही किया, जैसापत्रमे लिखा था। उसके संचालकोने शिक्षा प्रचार कर स्वराज्य पर छोटी २ पुस्तकें छपवाकर सैंकड़ो ही अमूल्य और अल्प मूल्य पर वितरण करनेका प्रबंध कर दिया, दो एक भ्रमण वाचनालय भी स्थापन किये गये। व्याख्यानों और उपदेशोंके लिये वक्ताओं को नियत कर दिया। अल्प समयमें ही नगरके चारों ओर बड़ी जागृति फैली, स्वराज्य आन्दोलनमे बड़ी उन्नति हुई।

× × × × × ×

इस पत्र को एक मास बीत गया दूसरे मासकी आज पहिली ही तिथि थी पहिले की भाँति मन्त्रीके पास आज भी

एक रजिस्टरी वीमा आया। अवकी उसमे २५००) रु० के नोट थे। पत्रमें लिखा था—

आजकल भारतवर्षमें चहुं ओर स्वराज्यकी ध्वनि सुनाई दे रही है। आपकी सभा भी इसके लिये उद्योग कर रही है-यह देखकर मुझे अति प्रसन्नता है। परन्तु देशोन्नतिमें जितना अधिक पुरुषोका हाथ है, उतना स्त्रियोंका नहीं है। इसका कारण है "स्त्री समाजकी अशिक्षा" एक तो वैसे ही हमारे गृह विग्रह-स्थल बने हुए है, जहाँ देखो वहीं रण दुंदुभी वज रही है। जिन घरोंमें सदैव शान्तिका साम्राज्य था, वह अव द्वेषाग्नि की ज्वालामें दग्ध हो रहे हैं, फिर राष्ट्रीय आन्दोलनकी कौन कहे? जव स्त्रियो को विग्रह करने और घरेलू लड़ाई झगड़ोसे ही अवकाश नहीं मिलता, तव देशहित सम्बन्धी कार्य्योंमें कव भाग ले सक्ती हैं? परन्तु इन सवका मूल कारण स्त्री जातिकी मूर्खता है।

सन्तानका सर्वोच्च गुरु माता है, पुरुषोंमें राष्ट्रीय भावोंका प्रचार करनेके लिये शिक्षित स्त्रियोका होना आवश्यक है। आज जो लोग राष्ट्रीय प्रचारसे अलग हैं, यदि उनकी माताएं शिक्षिता होतीं तो ऐसा कभी न होता। अतएव इस समय देशके हितके लिये स्त्रियोंको साक्षरा वनानेकी आवश्यकता है। और उन्हें वह शिक्षा देनेकी आवश्यकता है, जिससे वे सच्ची सती, आदर्श पत्नी और वीर माताएँ वनकर हमारे कार्य्यमे पूर्ण सहायक हों। जवतक स्त्रियाँ शिक्षिता होकर वे अपने प्राचीन गौरव को नहीं पहिचानतीं, जवतक वे अपने वच्चों को गोदमें लेकर यह नहीं वतलातीं कि 'भारतवर्ष क्या है? वह क्या था और अव क्या हो गया तथा फिर उसे वैसा ही वनानेके लिये किन २ वातों की आवश्यकता है? जवतक उनमें राष्ट्रीयताके भाव नहीं उदय

होते और जब तक वे अपने उत्तरदायित्वको नहीं समझतीं, तब तक हमारे कार्य्य उतनी सफलता पूर्वक सम्पूर्ण नहीं हो सकते।

उन्हें सब प्रकारसे योग्य बनाने को उनके लिये शिक्षाका क्षेत्र खोल देनेकी आवश्यकता है। उन्हें भारतके पूर्व और वर्त्तमान् कालीन वीरो, देशभक्तो, लोकमान्यो और राजनीतिज्ञो तथा वीर व आदर्श रमणियोंके चरित्र पढ़ानेकी, उन्हे गूढ़ रहस्योके समझानेकी और प्राचीन साहित्यसे शिक्षा लेकर वर्त्तमान पर विचार करने योग्य बनानेकी आवश्यकता है, जिससे भविष्यमें वे हमारे लिये आशावादी बने। उन्हें उन्नतिका मार्ग सिखलाने, मनुष्योकी आकांक्षायें बतलाने और सुधार तथा जागृतिका मार्ग दिखलाने की आवश्यकता है, जो देशकी भलाई के लिये नितान्त हितकर है। उन्हे बतलाया जाय—वे कौन हैं? किस कारण उनका जन्म हुआ है? उनके कर्त्तव्य क्या हैं? उन्हें देशके पतनके कारण, उनके परिणाम और फलोंके बतलानेकी आवश्यकता है, और आवश्यकता है उन्हें वीरमाता, आदर्श रमणी और सच्ची गृहणी बनाने की। उन्हे इन समस्त गुणोसे भूषिता करनेका एकमात्र साधन शिक्षा है, जबतक स्त्रियोमे शिक्षाका प्रचार नहीं किया जाता, हमारी यह आशाएँ और कल्पनाएँ निरर्थक और निष्फल रहेंगी।

आपके पास जो वह २५००) रु० के नोट भेजे गये है, आप इनसे स्त्री शिक्षाका प्रचार कीजिये, स्थान २ पर कन्या पाठशालाएँ स्थापित करके प्राचीन प्रथानुसार देशी भाषाओ द्वारा शिक्षा देकर उन्हे योग्य बनानेका उद्योग कीजियें। आवश्यकतानुसार और भी सहायता की जा सकेगी।

भारतदास.... स्वदेश

× × × × × ×

समय जाते देर नहीं लगती, यह महीनाभी समाप्त हुआ। आज अगामी मासका पहिला दिवस था सभाके मन्त्रीके पास आज भी एक रजिस्टरी बीमा आया, अबकी ३०००) के नोट थे। पत्रमें लिखा था–

यद्यपि आज देशमे हर ओर उन्नतिके शब्द गूँज रहे हैं, सभा समितियों की धूम है, व्याख्यान पर व्याख्यान दिये जाते हैं और सब प्रकारसे जनतामे जागृति उत्पन्न करनेका उद्योग किया जा रहा है. परन्तु इतना होने पर भी बेचारे भारतवासियोंके लिये समय उत्तरोत्तर विकट होता चला जा रहा है। शारीरिक, नैतिक और सामाजिक सब प्रकारसे उनका ह्रास हो रहा है। आज उन लोगोके मुख निस्तेज हैं. शरीर दुर्बल हैं और रोग, शोक, दुख, दारिद्र और अकाल आदि आक्रमण कर दिनों दिन उन्हें जर्जर किये डालते हैं। साथ ही जातीय-उत्साह, धार्मिक उत्तेजना, आत्म त्याग और संयम आदि जो कुछ भी राष्ट्र रक्षा के हेतु आवश्यक हैं, सब लोप हो गये हैं, सुतराम् आज हम भारतीयोंका जीवन सब प्रकारसे निरर्थक सा हो रहा है। जिसका फल यह है कि हम लोगोकी संख्या दिन पर दिन घटती जा रही है और सहस्रों नहीं लाखों भारतीय विधर्मी होते चले जा रहे है। स्वधर्मके प्रति मनुष्यो की श्रद्धा दिन पर दिन घटती चली जा रही है, यह पतनका एक प्रधान लक्षण है।

इसके अतिरिक्त आज सैकड़ों बालक अकाल मृत्युके ग्रास हो रहे हैं, अधिकांश नवयुवक प्रमेह, दुर्बलता, क्षीणता, अजीर्ण आदि भयानक और दुखदायी रोगोंके शिकार हो रहे है। नगरोंमें विलासता और आमोद प्रमोद की सामिग्री खूब बढ़ रही है, पेटकी ज्वाला और अज्ञानके कारण बहुतसे मनुष्य ईसाई होते

चले जा रहे हैं और हिन्दू-जाति द्वारा अपमानित और उपेक्षित सहस्रो विधवाएँ वेश्याएँ होती चली जा रही हैं।

सबसे अधिक आवश्यकता इस समय भारतवासियोंके जीवन को उपयोगी बनाने की है जिसका सबसे बड़ा सदुपयोग यही है कि उसका कोई उद्देश्य हो और आवश्यकता आ पड़ने पर उसकी कुछ चिन्ता न की जाय। मनुष्यताकी पुकार पड़ने पर उसकी आहुति तक दे देना और संसार की दौड़ (राष्ट्रीय उन्नति) मे अवसर पड़ने पर मानवधर्म्म की रक्षा और सम्मान के लिये उसे बलिदान भी कर देना चाहिये। कौन नहीं जानता-अच्छे कार्य्यमें जीवन लग जाना निष्क्रिय पड़े रहने की अपेक्षा कितना श्रेष्ठ है ?

परन्तु विचारना यह है—मनुष्यका जीवन किस प्रकार यों गठित किया जाय और उसे कैसे उच्च और उपयोगी बनाया जाय ? जहाँ भोजन-सामिग्री, वस्त्र और आत्मरक्षाके साधनोका ही ठीक प्रबन्ध नहीं, वहाँ ऐसा क्योकर किया जा सक्ता है ? उत्तर स्पष्ट है-ऐसे जटिल अवसर पर कर्त्तव्यपरायणतासे मुख न मोड़कर, मनुष्योंके धर्म्मकी रक्षा, उनकी औद्योगिक उन्नति की सहायता और इस बहुव्यापी विधर्मी प्रचारसे धर्म्मोपदेशोद्वारा भारतीयो को बचानेका प्रबन्ध किया जाय।

आप इन ३०००) रुपयोंसे सभा द्वारा एक 'भारतीय-रक्षा-फंड' खोल कर अनाथो, विधवाओं तथा दीनोकी सहायता कीजिए और अपने स्वयम्-सेवक, प्रचारक तथा उपदेशक इधर उधर भेजकर हिन्दूधर्म्म की रक्षाकर भारतीय राष्ट्रकी नीव दृढ़ करनेका उद्योग कीजिये, जिससे हमारे मन्तव्य स्वराज्य-प्रचारमें हमे पूर्ण सहायता प्राप्त हो।

...भारतदास.........देवश

इसके पश्चात् आगामी मास में ४०००) के नोटोंके साथ जो पत्र आया उसमें लिखाथा—

स्वराज्यकी प्राप्तिके लिये उद्योग न करना केवल सदा दुखी रहना और अपने बालकोंको द्वार २ का भिखारी बनानाही नहीं, वरन् वह ईश्वरकी इच्छाके प्रतिकूल चलना, उसकी आज्ञाकी अवहेलना करना और भीषण पाप करना भी है। तात्पर्य्य यह कि स्वराज्य-साधन में सबको सम्मलित होना इस यज्ञकी पूर्ति और सफलताके लिये सामिग्री जुटाना हमारा सबका कर्त्तव्य है। स्वराज्के लिये सबसे पहिली वस्तु जो आवश्यक है, वह शिक्षा है। परन्तु इस लिये नहीं कि बिना शिक्षाके स्वराज्य नही होता, वरन् इस लिये कि हमारा ज्ञान-चक्षु खुला रहे और इस लिये कि हम सब प्रकारसे अपनेको मनुष्य कहने योग्य होसकें। शिक्षाको फलप्रद और सर्वसुख देनी बनानेके लिये यह आवश्यक है कि वह थोड़ाही समय ले और थोड़ा व्यय कराये, परन्तु फल अधिकसे अधिक दे। यह तभी होसक्ता है—जब वह हमको उस भाषा में दी जाया करे जिसे हम माताके दूधके साथ पीते हैं अथवा यों कह लीजिये कि उदरसेही जिसकी गोदमें हमारा लालन पालन और रक्षा होती है। मातृभाषाका तिरस्कार कर कोई जाति संसारमें स्वतंत्र नहीं हो सक्ती, इसका कारण यह है कि अपनी भाषा और अपना पुराना साहित्यही संसारमें ऐसी वस्तुएें हैं जो हमको हमारे पूर्वजोंसे मिलाते हैं और उनके ज्ञानसे हममें आत्म-सम्मान और स्वाभिमान उत्पन्न होते है। प्राथमिक शिक्षाका देश में प्रचार नही होसक्ता यदि वह मातृभाषा में न दी जाय। माता, मातृ—भाषा और मातृभूमि संसार में सबश्रेष्ठ और सर्वमान्य हैं। स्वराज्य की एक मात्र कुंजी पुराने साहित्यको जीवित

रखना और आधुनिक साहित्यको सर्वश्रेष्ठ बनाना है। जिन्होंने संसारके इतिहासको देखा है; वह जानते होंगे कि किसी जाति को दास बनाए रखने और संसारसे उसका अस्तित्व मिटानेके लिये प्रथम और सबसे उत्तम उपाय यह है कि उस जातिके साहित्यका नाश कर दिया जावे और उसकी मातृभाषा मृत-भाषा बनादी जाय। जब साहित्य और भाषा न रहेगी सब काम हो जायगा। भाषा के मृत होते ही स्वराज्यके चैनकी बंशी नहीं बजेगी। इतिहास इस बातका साक्षी है कि स्वराज्य और भाषा में कितना घनिष्ट सम्बन्ध है। जिन देशोंको वहाँके शासकोंको मृत बनाए रखना था; उसके साहित्य और मातृ-भाषाको सब प्रकारसे नष्ट करनेका उद्योग वे निरंतर करते रहते थे।

परन्तु हर्ष है कि आपके मार्गमें इस समय कोई कठिनाई ऐसी नही है, आपसे कोई नहीं कहता कि आप अपनी मातृ भाषाका प्रचार न करें। मातृ-भाषाकी हीनता और तिरस्कारका जो परिणाम होता है, वह किसीसे छिपा नहीं है।

संसारमें कोई भी अंग्रेज ऐसा न होगा जो अंग्रेजी न जानता हो; कोई जापानी, जर्मन तथा फ्रेञ्च सृष्टिमें ऐसा न होगा कि अपनी २ मातृ-भाषाका ज्ञान न रखता हो। किन्तु दुख कि हमारे देशमें ऐसे सहस्रों पढ़े लिखे भारतवासी मिलेंगे जो अपनी मातृभाषा न जानते होंगे। हम लोगोंकी गिरी दशाका एक मात्र कारण यही है। बहुतसे ऐसे मनुष्य होंगे जो कहते हैं "भाई हम हिन्दी गन्दी नहीं जानते" इसका फल क्या होता है? महाभारतमे लिखा है ऐसे लोगोंमें जातीयताका भाव अथवा जातीय-अभिमान कैसे विकाश पा सकता है? इनमें अपने पूर्वजोंका गौरव किस प्रकार आ सकता है? अपने सुखके लिये अपने बच्चोंके कल्याणके लिये, अपने देशके लिये और

संसारमें सब श्रेष्ठ बननेके लिये मातृभाषाका ज्ञान उसका प्रचार और उसके साहित्यकी वृद्धि अनिवार्य्य नीतिसे आवश्यक है। इनके प्रति उदासीनता दिखलाना, इसके प्रति अपना कर्त्तव्य पालन न करना, हिन्दी न पढ़ना और अपने बच्चोंको हिन्दी न पढ़ाना जातीय-पातकका भागी होना है।

सर्कारी कामोंमें भी हिन्दीका प्रचार न होनेसे हिन्दी जानने वालोंकी संख्या घटती जा रही है सोही नहीं, वरन् इसका सबसे बुरा प्रभाव यह है कि प्राथमिक शिक्षाका प्रचार हममें नहीं हो सक्ता। अदालतोंमें हिन्दीको स्थान देनेसेही सरकार प्राथमिक शिक्षाका पूर्ण प्रचार कर सक्ती है। परन्तु वह अपना कर्त्तव्य करे या न करे, हमें अपना करना होगा। हमारा कर्त्तव्य गुरुतर है, क्योंकि हिन्दी हमारी भाषा है-राष्ट्र भाषा है, और उसीके द्वारा हमारी जातिका उद्धार हो सक्ता है। सरकारने हिन्दी प्रचारके लिये अदालतोंमें जो प्रबन्ध कर दिया है उसीसे, हमारा कर्त्तव्य है कि पूर्ण लाभ उठावें। हमारे वकील भाइयोंको चाहिये-यदि उन्हें अपने समाज व देशकी उन्नतिका कुछ भी ध्यान है-कि वे अपने हिन्दी जानने वाले आसामियोंका सब कार्य्य हिन्दीमेंही करें। साथही हमारा आपका कर्त्तव्य है कि हम प्रार्थना-पत्रादि सब हिन्दीहीमें दिया करें। हम आप यह निश्चय करलें तो हिन्दीका प्रचार शीघ्र हो सक्ता है। अब स्वावलम्बन, आत्म-पौरुषका युग है, बिना अपने हाथ पैर हिलाए कोई लाभ, कोई सुख नहीं हो सक्ता। हममेंसे प्रत्येक मनुष्य कुछ न कुछ कर सक्ता है। जो कुछ हमारी शक्तिमें है, यदि हम वह कर दें तो हम अपना कर्त्तव्य पालन कर रहे हैं और हम उतनेही पुन्य और यशके भागी हैं जितना एक बड़े साम्राज्यका शासन-कर्त्ता अथवा वह मनुष्य

जिसकी प्रशंसा करोड़ों मुख एक साथ करते हैं। किन्तु इस बातका निश्चय होना चाहिये कि हम यथाशक्ति सब कर रहे हैं, ईश्वरकी दी हुई शक्तिसे हम कार्य्य ले रहे हैं। हमको सचेत रहना चाहिये कि आलसको हम लोग असमर्थताका नाम देकर सन्तुष्ट न हो जावें। विघ्न बाधाओंसे हमको निरुत्साह न होना चाहिये, क्योंकि यदि हम अपने कर्त्तव्य पालनमें लगे हुये हैं. तो ईश्वर भी अन्तको हमारा साथ देंगे।

पहले कहा है-देशमें चारों ओर जागृतिके लक्षण हैं। क्या राष्ट्रीयक्षेत्रमें स्वराज्य और स्वतंत्रताकी पुकार है? जिस प्रकारसे व्यर्थकी वाह्यकी रोक टोक और कष्टोंको दूर करनेके लिये स्वराज्यकी आवश्यकता है, उसी प्रकार मानसिक-शक्तियों-के विकाशके लिये विचार-स्वातंत्र्यकी आवश्तकता है। राष्ट्रीय तथा मानसिक स्वतंत्रताका प्रायः घनिष्ट सम्बन्ध है। कभी २ और कुछ अंशमें सदैव एकके साथ दूसरी रहती है, किन्तु पूर्ण विकाश दोनोंका साथही साथ सम्भव हैं। इस लिये सब स्वराज्यकी कुंजी हमारी दृष्टिमें साहित्यही है। हमारे साहित्य-स्वातंत्र्यसेही राष्ट्रीय-स्वतंत्रता मिलेगी और स्वातंत्र-साहित्य तभी होगा, जब हम अपनी मातृ-भाषाके गौरवको समझते हुए उससे अटल प्रेम रखेंगे और अपने बालकों को उसके द्वारा शिक्षित बनावेंगे।

हमारे देशकी जो स्थिति है, उसमें हमारी भाषा स्वराज्यके मूलमंत्रका काम देगी। जो लोग अंग्रेजीकी अन्यबातोंके साथ २ उस भाषाको भी अपने आपसके कार्य्योंमें स्थान दे रहे हैं, वे देश का अहित कर रहे हैं। अपनी सब बातोंमें-सभाओंमें; नित्यके कार्य्योंमें; अपनी विचारशैलीमें और अपनी शिक्षामें-तात्पर्य्य यह कि अपने व्यक्तिगत अथवा राष्ट्रीय सभी कार्य्योंमें देश-

भक्तको अपनी मातृभाषाके गौरवका सदा ध्यान रखना चाहिये। हमारे बच्चे अंग्रेजी पढ़ें; अन्य विद्याएं सीखें, किन्तु अपनी भाषा द्वारा। और इसीमें देशका कल्याण है।

इस विषयपर विचार जातेही हमें हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनकी परीक्षाओंका स्मरण हो आता है। इन परीक्षाओंको नियत करके सम्मेलनने अपनी भाषा द्वारा उच्च शिक्षा प्राप्त करनेका न केवल आदर्शही सामने रखा है; किन्तु कार्य्य-क्रम हिन्दी संसारके सामने रखा है। उनमें सम्मलित होनेके लिये नवयुवकोंको उत्तेजित करना समस्त भारतवासियोंका कर्त्तव्य है। कहनेका तात्पर्य्य यह-कि अपने जीवनका क्या छोटा; क्या बड़ा; प्रत्येक कार्य्य देश भाषाके रंगमें रंगा जाना चाहिये; फिर देखिये स्वराज्य कितनी दूर रह जाता है?

आपके पास यह ४०००) रु० के नोट जो अबकी बार भेजे है, उनसे आप तीन कार्य्य कीजिये—

प्रथम तो आप अपनी आर से न्यायालयोंमे हिन्दी लिखने वाले लेखक रखिये ओर इन रुपयोंमेंसे उन्हें वेतन दीजिये। उनका कार्य्य यह होगा कि वे वादी और प्रतिवादी सबके प्रार्थनापत्र नालिश फ़ार्म आदि विना कुछ लिये लिख दिया करें*। दूसरे यह कि इन रुपयेमेंसे होनहार नवयुवको को जो

* पुस्तक छपनेके लिये भेजते २ समाचारपत्रोंमे यह देखकर बडा हर्ष हुआ कि अखिल भारतवर्षीय हिन्दी साहित्य सम्मेलनके प्रयागस्थ प्रधानकार्यालयने इस वातकी सूचना निकाल दी कि युक्त प्रदेशकी कचहरियोंमें वह हिन्दीके अर्जी, दावे, आदि लिख देने वाले मनुष्य नियुक्त करना चाहता है, उन्हें सम्मेलनकी ओरसे वेतन वा पारितोषिक दिया जायगा और वे सव काम विना कुछ लिये करेंगे। हमारे ऐसे हिन्दी जानने वाले नवयुवकोंको जिनकी जीविका का ठीक प्रवन्ध नहीं है, ऐसे अवसरसे नहीं चूकना चाहिये। सबसे अधिक हर्ष

अपना जीवन भविष्यमे मातृभाषा और देशकी सेवामे लगानेको त्यार हों, हिन्दी-साहित्य सम्मेलनकी परीक्षाओके लिये उद्यत कीजिये। और तीसरी यह कि हिन्दी माध्यमके द्वारा सब प्रकारकी प्राथमिक शिक्षा अपने बालकोको देनेके लिये पाठशालाएँ स्थापित कीजिये।

मुझे आशा है, आप केवल समयही देकर ग्राम २ में पाठशालाएँ खोलनेका प्रवन्ध कर मेरे विचारोको सफल करेंगे। जन्मसे लेकर मरणपर्य्यन्त जो पत्येकक्षण आपके साथ रहती है, जिसकी धूलमे लोट २ कर आप बड़े होते हैं, जिसके जल, वायु और अन्नादिसे आपका यह शरीर पुष्ट होता है। जो आपको ही नहीं वरन् आपकी माताको भी माता होने योग्य बनाती है, क्या उसके लिये आप थोड़ा समय भी न दे सकेंगे ? उसके लिये तनिक परिश्रम भी नहीं उठा सक्ते है ? माताको अपने पुत्रोको छोड़ और किसका सहारा और आशा है ? आपही के ऊपर माताने अनेकानेक कष्ट सहे हैं। कष्टके समय सदैव यही ध्यान रहता था कि मेरे पुत्र योग्य होकर, एक दिन आयेगा, जब उनकी आंखे खुलेंगी, वे मेरी सेवामे लीन होगे, मेरा भी समय फिरेगा और अपनी अन्य बहिनोके सामने मेरा सिर नीचा न रहेगा। क्या माताकी यह आशा दुराशामे परिणित होगी ? मुझे विश्वास है—नही। जिस प्रकार आपने अन्य बातो का प्रचार किया है, आशा है—इस रुपयेसे मातृभाषाका प्रचार

तब होगा, जब समस्त भारतके न्यायालयोंमें यह प्रवन्ध हो जाय, किन्तु इस समय इतना ही बहुत है। हिन्दी-हितैषी-सज्जनोंको इस कार्य्यमें सम्मेलनकी सहायता कर यशका भागी बनना चाहिये। इस समय इसी पर सम्मेलनको बधाई है।

लेखक—

लेखमाला।

प्राचीन और नवीन अपनी सब दशा आलोच्य है।
अब भी हमारी अस्ति है, यद्यपि अवस्था शोच्य है॥

भारतवर्ष चाहे पहिले उन्नति शील रहा है, चाहे एक समय वह धन, बल, विद्या, बुद्धि और कलाओंका केन्द्र रह चुका हो चाहे वह पूर्वमे संसारका आचार्य्य और पृथ्वी मण्डलका स्वामी रहा हो; पहिले चाहे वह सुखोंका घर और सम्पत्तिका भण्डार ही था, परन्तु इस समय वह एक अति अवनत देश है। सब प्रकारसे कष्ट झेल रहा है, महानक्लेशों, समस्त विपत्तियो और संसार भरके रोगोंका धाम बना हुआ है। इस समय भारतका व्यापार नष्टप्रायः हो रहा है, धर्म्म पर आघात होते हैं, और शिक्षाका कोई उचित प्रबन्ध नहीं है। घरोंकी यह दशा है कि जिन गृहस्थोंमें किसी समय स्वर्गीयनाद होकर आनन्द पताका फहराती थी, वही आज कलहधाम बन रहे है। भाई २ परस्पर प्रीतिपूर्वक नहीं रह सकते; मनुष्य एक दूसरे को देखकर घृणा करते है और जहाँ तक होता है वे दूसरोंका माल हड़प कर जानेके उद्योगमें ही लीन रहते है। कहनेका तात्पर्य्य है—जो भारत किसी समय सब प्रकार आनन्दोपभोग करता था, जहाँ हर समय चैनकी दुंदुम्भी बजती थी, वह भारत आज सब प्रकार से क्षीण हो रहा है, उसकी जातीय, सामाजिक, राष्ट्रीय और व्यक्तिगत सब प्रकारसे अवनति हो रही है। सुतराम् इस समय भारतके मुख्य २ अङ्गोंकी क्या दशा है; उसका कारण क्या है और वह फिर किस प्रकारसे उन्नत बनाकर प्राचीन अवस्था को पहुंचाया जा सक्ता है? क्रमशः इन्हीं बातों पर विवेचन करना लेखमालाका मुख्य उद्देश्य है। दृष्टान्तके लिये सबसे पहिले भारतीय किसानों को ही ले लीजिये। प्राचीन कालमें जो कृषकसमाज

सब प्रकारसे उन्नत और भरा फूला था, उसकी आज जैसी दशा हो रही है उसके स्मरणमात्रसे हृदय दुखित होने लगता है।

भारतीय किसान।

लखकर किसानो की दशा हा रोगटे होते खड़े !
ससारभरके अन्नदा पा दुख रहे कितने कड़े ?

भारतवर्ष एक कृषि प्रधान देश है। यहाँ लगभग ८५ प्रति शत मनुष्य अपना उदर पोषण कृषिकर्म द्वारा ही करते है, साथ ही शेष पन्द्रह मनुष्य और संसारके अन्य देशवासियोका पेट भी इन्हींके द्वारा उत्पन्न किये गये अन्नसे प्रतिपालित होता है। इसीसे वे संसारके अन्नदाता कहे जाते है। वकीलो, वैरिस्टरो, कलेक्टरो, मास्टरों तथा अन्य सब बड़े २ अफ़सर और साधारण मनुष्यादि सबका उदर पोषण भी इन्हींके द्वारा उपजाये अन्नसे होता है। इन्ही वेचारोके तपसे तपाये हुए शरीरसे उत्पन्न किये अन्न को खाकर बड़े २ पेट वाले धनी, भोगविलास, वेश्यानृत्य तथा अन्य नाना प्रकारके आनन्द को लूटते है। इन्हींके अस्तित्वसे उनका महत्व, मान, मर्यादा, धन, वैभव, ज्ञान, ध्यान और अभिमानादि स्थिर है। जिस समय वे इनसे अलग हो जायंगे, इनका यह महत्व बिल्कुल भी न ठहरेगा। फिर भी भारतके दुर्भाग्यवश इन दीन, दीन और अविद्यान्धकारमें पड़े हुए किसानोंकी ओर बहुतही कम लोगोंका ध्यान है; बहुत कम मनुष्य उनपर कृपा रखते हैं। सभ्यताके वलसे मनुष्य उनको मनुष्यही नहीं समझते। परन्तु क्या सभ्यताका मूल्य यही है कि क्षुद्रोंसे घृणा की जाय, उनका उपहास और उपेक्षा की जाय; उन दीन दुखियोंकी सहायता न करें; उनकी जीवन रक्षार्थ कोई प्रबन्ध व चिन्ता न करें और भांति २ से उनपर अत्याचार करें ?

राष्ट्रकी जड़ कृषकही हैं; देशकी सच्ची जनता वेही हैं; परन्तु वेही इस समय समस्त संसारमें अत्याचारके पात्र हो रहे हैं। कृषक समुदाय अविद्यान्धकारमें डूबा हुआ है। वे न तो यही जानते हैं कि निराई करनेसे क्या लाभ होता है; न यही कि किस वस्तुके लिये कौनसा खाद उत्तम होता है और न यही कि किस प्रकार फसलको उत्तम और अधिक फलदायिनी बनाया जासक्ता है; फिर पढ़ना लिखना और अक्षर ज्ञान तो दूर रहा। वे नहीं जानसक्ते कि जिमीन्दारोंने रसीदों पर पूरे धनकी प्राप्ति लिखी है अथवा कम रुपयोंकी? नहरोंकी सिंचाई का पर्चा पढ़वानेके लिये उन्हें कोसों भटकना पड़ता है, बहुतों की प्रार्थना करनी पड़ती है, फिर भी कार्य्य नहीं होता। इस मूर्खताके वश होकरही उन्हें अपने देश बन्धुओं—पटवारीयों, जिमीन्दारों, महाजनों, कारिन्दों और राज्यकर्म्मचारियों का शिकार होना पड़ता है, जो घूँस और बलात्कार अत्यचार द्वारा बेचारोंको ऐसे २ कष्ट देते हैं कि लिखे नहीं जासक्ते। जिनके कारण वे भूस्वामी बनकर धनी और समृद्धशाली हुए हैं उन्हीं पर नाना प्रकारके अन्याय और अत्यचार करते हैं।

बेचारोंके रहन सहन की अवस्था तो पशुओंसे भी निकृष्ट है; गृह मैले कुचैले और तंग हैं; जिन में वायुसंचारके मार्गके अतिरिक्त और कोई नहीं है। घरके द्वार पर पलों मैला इकठ्ठा रहता है, जिसके कारण सैकड़ों कृषक प्रतिवर्ष प्लेग, मलेरिया, विषूचिका और शीतला आदि रोगोंके ग्रास हो जाते हैं। निर्धनताके कारण पशुओंके रहनेके लिये भिन्न स्थान नहीं बनासक्ते, अतएव उनके साथही अपना दीन जीवन व्यतीत करना पड़ता है।

सामाजिक जीवन बेचारोंका ऐसा निकृष्ट है जो वर्णन नहीं किया जासक्ता। समाज में न उनका कुछ सम्मान है न स्थान और न कोई अधिकार। यहाँ तक कि "किसान" शब्दही मूर्खता, हीनता, निर्धनता, अज्ञान और सामाजिक दुर्दशाका परियायीवाचक हो रहा है। भारतके चाहे जिस प्रान्त मे किसी किसानसे बात कीजिये, बेचारा कहेगा—

"महाराज! हम किसान है, आप बड़े आदमी" (मानो किसान न होनाही बड़ा होना है और किसान होनाही नीच) "हम आपकी बातें क्या समझें, आपकी समानता कैसे करें?" यह अथवा ऐसेही अन्यवाक्य प्रतिक्षण किसानोंके मुखसे उच्चारित होकर देश में हाहाकार मचाते हैं और इस बातके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं कि कृषकों की सामाजिक हीनता किस सीमा तक पहुँच गई है कि न केवल कृषकेतर सज्जनही उन्हें हीन समझते हैं, वरन् वे स्वयं भी अपनी इस दुरावस्थाको प्राकृतिक मानते हैं। नगरनिबासियों और सर्कारी-कर्म्मचारियों, पुलिस, और तहसीलके चपरासियों की तो कौन कहे, ज़िमीन्दारोंके नौकर, गॉवके चौकीदार, दूकानदार और महाजनोंके मुनीम तक उन्हें नीच समझते हैं। इस लिये नहीं कि ऋषि मुनि, वेद, शास्त्र अथवा अन्यान्य महात्माओं और धर्म्मग्रंथोंने उन्हे नीच जाति निर्धारित कियाहो, क्यों कि प्रत्यक्ष बात है कि आजकल ब्राह्मणसे लेकर शूद्र तक सभी कृषी करते है, वरन इस लिये कि वे किसान हैं। हा! सामाजिक अत्याचार क्या इससे भी अधिक और होसक्ता है?

अब धार्मिक दशाको लीजिये, इसके विषय मे तो कहना ही क्या है? द्वार पर आनेवालोंको भिक्षा, त्योहारों पर उधार लेकर तेलका पकवान, अपने गाँवके किसी मन्दिरमें जिसकी

मूर्ति हो उसी की पूजा इत्यादि २ रीतियाँके पालन करने में उनका कर्म्म कांड सम्पूर्ण होजाता है, यही उनका यज्ञ है और यही उनकी धर्म्म, क्रियाएं। उनको इतना अवकाश कहाँ जो कर्म्म काण्ड, धर्म्मकाण्ड अथवा अन्य काण्डोकी मीमान्सा करने बैठें। यद्यपि वे नगरवालोंसे अधिक सदाचारी और संयमी होते हैं, परन्तु उनका सदाचार अज्ञान और अनुकरण-के कच्चे धागे पर स्थिति है, बुद्धि और तर्कपर नहीं। अत्या चार सहना "और ईश्वरने हमे इसी लिये उत्पन्न किया है" माननाही उनके धर्म्म का सार है।

परन्तु हाँ, स्वामि-भक्त मैं धर्म्मके इतने पक्के हैं कि अपने भूस्वामी की भलाईके लिये जी जान तक दे देनेको तयार रहते हैं। जब दो भूस्वामी स्वच्छन्द होकर वादाविवाद करते और झगड़ते हैं, तो वेचारे लठ चलाकर अपने स्वामीकी रक्षा के हेतु अपने प्राण तक विसर्जन कर देने में नहीं हिचकते, सारांश न्याय अथवा अन्याय किसीसे स्वामीके नमकहराम नही होते। यद्यपि इन भूस्वामियोंसे वेचारोंको कोई लाभ नहीं, वही घृणा, उसी अवहेलना और उसी तिरस्कारके पात्र हैं, फिर भी वेचारे यही कहेंगे "तुम्हारी भूमि, तुम्हारी सम्पति और तुम्हाराही देश; देशमें हमारा क्या?" किन्तु वेचारे नही जानते कि वे छलबलसे स्वामी बन बैठे और पीछे मुहँ ताकनेके अतिरिक्त हमारे पास है ही क्या?

इतना होने पर भी जिस परिश्रमसे वे कार्य्य करते हैं उसके स्मरणमात्र से हृदय दुखने लगता है। जिस समय उष्णकालकी विकराल धूप में भारतके अन्य बहुतसे मनुष्य खसकी टट्टियोंसे ढके हुए कमरों में पंखोंके नीचे बैठ मित्र-

मंडली में गपशप लड़ाते है, ताश अथवा शतरंज आदि खेलनेमें समयका दुरुपयोग करते हैं. उसी समय प्रचंड दोपहरी में जब कि कभी शरीरको तप्तकरडालने वाला उष्ण वायु बह रहा होता है. बेचारे खड़े २ नंगे खेतो में काम किया करते हैं। जब भीषण भयानक शीतकी रात्रियों में धनाढ्य लोग चारों ओरसे अपने कमरोंके कपाट बन्दकर चार २ छः २ सेर रुईके गद्दों तोषकोंके बीच आनन्दसे मीठी और गहरी नींदमें निमग्न होते हैं, उस समय हृदय को कम्पित कर देने वाली शीतमय रात्रियोंमें बेचारे कृषकोको नंगे अथवा किसी गज़ीकी फतुई को पहने हुए जलमें खड़े अथवा वैसे ही खेतोकी सिंचाई तथा अन्य कार्य्य करने पड़तेहैं। हाँ हुआ तो कभी घास फूंससे आग जलाकर ताप लिये, नही तो योंही रह जाते हैं। जहाँ बड़े मनुष्यों के शरीरो पर उत्तम २ बढ़िया कपड़े और पैरमें बढ़िया विलायती बूट होता है. वहाँ उनका एक मात्र आधार अग्नि व दिनमें धूप होती है, हुई तो दुसूते की कोई चद्दर ओढ़ली, नहीं उससे भी वंचित, और पैर कांटो और ठोंकरोका स्वागत करते हैं। जहाँ देशके अधिकांश मनुष्योंका भोजन पूड़ी, हलुआ, मिठाई तथा पकवानादि है. वहाँ बेचारे कृषक भूखे अथवा मठेसे ज्वार वा बाजरेकी थोड़ी सी रोटी खाकर अधपेट रह जाते हैं और इसीमें सन्तुष्ट हो फिर कार्य्य करने लगते हैं। उनकी स्त्रियोंकी पोशाक सालमें, सो भी बड़ी कठिनतासे. एक मोटी धोती अथवा गज़ीका लहंगा और टुकरी की ओढ़नी है। आभूषण कांसे गिलट अथवा रांग और पीतलके बिछुए और हुई तो एक दो चूड़ियाँ मात्र होते हैं। रोगी होने पर एक मात्र ईश्वरका सहारा: पैसा पास न होनेके कारण बेचारे वैद्य अथवा औषधि नहीं ला सकते। -

कविवर मैथिलशरण गुप्त किसानोंके विषयमें एक स्थान पर लिखते हैं :—

घनघोर वर्षा हो रही है गगन गर्जन कर रहा,
घरसे निकलनेको कड़ककर वज्र वर्जन कर रहा।
तो भी कृषकगण क्षेत्रमें करते निरंतर काम हैं,
किस लोभसे वे आज भी लेते नहीं विश्राम हैं॥
बाहर निकलना मौत है आधी अँधेरी रात है,
हा शीत कैसा पड़ रहा है थरथराता गात है।
तब भी कृषक ईंधन जलाकर खेत पर है जागते,
वह लाभ कैसा है न जिसका लोभ अब भी त्यागते?
बरसा रहा है रवि अनल भूतल तवा सा जल रहा,
कै चल रहा सनसन पवन तनसे पसीना ढल रहा।
पर हा कृषक शोणित सुखाकर हल तथापि चला रहे!
किस लोभसे इस आँचमें वे निज शरीर जला रहे?
मध्यान्हमें ले नारि उनकी रोटियाँ पहुँचीं वहीं,
हैं रोटियाँ रूखी खबर है शाककी हमको नहीं।
संतोषसे खाकर उन्हें वे काममे फिर लग गये,
भरपेट भोजन पागये तो भाग मानो जग गये॥
पानी बनाकर रक्तका कृषि कृषक करते है यहाँ,
फिर भी अभागे भूखसे दिन रात मरते हैं यहाँ।
जाता महाजनके यहाँ वह अन्न सारा अन्तमें,

अधपेट रहकर फिर उन्हे है कांपना हेमन्तमे ॥
उन कृषक-बधुओ की दशा पर नित्य रोती है दया,
हिम, ताप, वृष्टि सहिष्णु जिनका रंग काला पड़ गया।
नारी सुलभ सुकुमारता उनमे नहीं है नामको!
वे कर्कशांगी क्यो न हो देखो न उनके कामको?
गोबर उठाती थापती है भोगती आयास वे,
कृषि काढ़ती, लेती फरोहे, खोदती है घास वे।
गृह-कार्य्य जितने और हैं करती वही सम्पन्न है,
तो भी कदाचित ही कभी भरपेट पाती अन्न है ॥

अस्तु, ऐसी दशामे रहते हुए, इतना तप करते हुए और इतना कष्ट भोगते हुए भी जो कुछ अन्न वेचारे किसान उत्पन्न करते हैं, उसका बहुत थोड़ा भाग जिसमे भी मोटा अनाज जैसे बाजरा, जोड़री, मक्का आदि उनके पास रहता है, शेष सब खेतोंके लगान, ब्याज तथा भेटके रूपमें उन्हे अपने कृपालु ज़िमीन्दारो को सौंप देना पड़ता है, तिस पर भी उनके मनमाने अत्याचार और नादिरशाहीको सहना होता है। ज़िमीन्दार भरपूर सवाया, ड्योढ़ा लगान मय ब्याजके लेकर भी बलात्कार हल बैल सहित किसान को पकड़वा अपना खेत जुतवाते हैं। चाहे उस दीन हीन निस्सहायका खेत बेजुताही पड़ा रहे, उस पर पड़ती ही क्यों न पड़ जाय, पर ज़िमीन्दार प्रथम अपना खेत जोतवाए बिना उसे कैसे छोड़दें? गाड़ी, बैलकी जब कभी आवश्यकता पड़ेगी, तभी बेचारा किसान ज़िमीन्दारके सिपाहियों द्वारा पकड़ बुलाया जायगा। उसकी खेती भले ही नष्ट

हो जाय। शाक, भाजी, जो कुछ किसानके खेतमें होगा, उसको वे जब चाहें तब अपने स्वामिभक्त चपरासी द्वारा तुड़वा मंगावें सो भी वह चपरासी एक सेरके स्थानमें तीन सेर ही तोड़ेगा। सुतरां किसानकी सारी फसल और कुटुम्ब पर ज़िमीन्दारका पूर्ण आधिपत्य है। जहाँ किसी दीन कृषकने ज़िमीन्दार महाशयकी किसी आज्ञा पर आनाकानी की कि उसको गाली, डंडे और जूतोंका प्रसाद मिलने लगा। कतिपय नीच और नारकी ज़िमीन्दार तो जोश, मद और बल पूर्वक कितने ही निकृष्ट अत्यचार कर डालते हैं, पर दीन दुखी कृषक भयके वशीभूत हो कुछ चूँ भी नहीं करते और सब कुछ देखते हुए भी रुधिरका घूँट पीकर रह जाते हैं। यदि कोई ज़िमीन्दार वेश्याभक्त है, तो वह जब कभी अपने यहाँ अपनी पूज्या देवीका उत्सव कराएगा, प्रत्येक किसानको विवश होकर उस समय एक २ रुपया देवीजी की भेंट करना होगा। आज ज़िमीन्दारके यहाँ उसके लड़केका अन्नप्राशन है, अतः किसानोके यहाँसे उसके घर दूध, घी आदि अवश्य आना चाहिये।

जब इतने २ अत्याचार और हरण बेचारे किसानोंके ऊपर होते हैं तो सहज ही विचारा जा सक्ता है कि उनकी आर्थिक दशा क्योंकर अच्छी हो सक्ती है, उसका निकृष्ट होना तो स्पष्ट है।

कृषक समुदाय संख्यामें बीस करोड़से भी अधिक है। भारतमें सदासे मालगुज़ारी (भूमिकर) ही सरकारी कोषका प्रधान आधार है। अब भी देशकी आयका चतुरांशसे भी अधिक भूमिकर द्वारा प्राप्त होता है, परन्तु किसान भूखों मरते हैं। उनकी आय सरकारी गणनाके हिसाबसे तीन आना प्रति दिन प्रति कुटुम्ब है। एक कुटुम्बमे जितने व्यक्ति होते हैं, सबको इन्हीं तीन आनोसे अपना पेट पालना पड़ता है। तिस पर भी

गृहस्थके अन्यान्य व्यय अलग। तब आज खाकर संध्याको नहीं, इसमे आश्चर्य्य ही क्या है? पीतल की दो एक थालियाँ, लोटे एक दो टूटी खाट, खुरपी और हो तो निजका हल जुआ-यही उनकी सर्वस्व सम्पत्ति है। जन्मसे पूर्वही बेचारो पर ऋणका भार चढ़ जाता है जो मरणपर्य्यन्त भी नहीं उतरने पाता। महाजन बाज़ार भावसे एक सेर प्रति रुपया अनाज कम दिते और एक सेर अधिक लेते है। इस पर भी एक आना प्रति रुपया मासिक ब्याज-वह भी चक्रवृद्ध ब्याज, जितना रुपया हो फ़सल पर उससे सवाया नाज लौटाना तो एक साधारण बात है। राशि तोलते समय महाजन अथवा ज़िमीन्दार को प्रति मन आध सेर अधिक नाज धूल मिली होनेके नाम पर भी देना पड़ता है, तुलाई आदिका व्यय भी इन्ही बेचारोंके मत्थे है। तीन आने आय, कई मनुष्य और इतने कर, क्यो न बेचारे प्लेग, अकाल, और मानसिक रोग आदि महामारियोके कारण असमय मृत्युके कवर हो? बेगार करना तो उनका साधारण कर्त्तव्य माना जाता है, नगरमे गाड़ी लावे तो गाड़ियोंके ठेकेदार और चौधरी की भेट अलग रही, यदि न दे तो पकड़े जावे, और गाली और मारका पुरस्कार मिले, अन्तको बड़ी कठिनता और प्रार्थनाके पश्चात् तहसीलके चपरासियो और पुलिसके सिपाहियो की मुद्रापुष्प भेट करनेसे छुटकारा मिले।

ज़िमीन्दार और महाजनोका रसीद और तमस्सुख न देना, तथा भृकुटी बदलजाने पर झूठी नालिशे करना और एकके दो बसूल करना उनके रक्तको और भी सुखाए डालता है। हा हन्त! क्या किसानो को ऐसो वेदना सहनेके लिये ही उत्पन्न किया है जिनके सुननें मात्र हृदय दहल उठता है?

ज़िमीन्दारोंके पश्चात् उनके रक्तको चूसने वाले दूसरे

भयानक जीव गावोके छोटे २ अमले और ज़िमीन्दारोंके प्रतिनिधि स्वरूप कारिन्दे हैं। यह लोग इसी प्रकार झूठ, बेईमानी, छल, कपट, बलप्रयोग और धमकियोंसे अपनी २ बढ़ी हुई आवश्यकताएँ उन्हींके द्वारा पूरी करते है। यद्यपि कारिन्दोंकी भेट पहिले ही से एक रुपया प्रति किसान नियत है, घास, फूस ईंधन और दूध आदि इनके अन्यकर भी किसानोसे छोटे २ करोके रूपमे बंधे हुए हैं। सुतरां जहाँतक होता है, बेचारे भोले भाले दीन किसानोंको ठगनेमें वे नहीं चूकते, हाँ यदि जिमीन्दारका रुपया व्याज सहित समय पर न पहुंचे तो अन्न, गाय, बैल आदि (यदि हों) पर कुरकी की नौबत पहुंचती है, यहाँ तक कि खेत, हल, जुआ भी हड़प लिये जाते हैं, साथ ही सेवा और दासना अलग।

सिचाईके काममे भी किसानोको बड़ी कठिनाइयों और विपत्तियोंका सामना करना पड़ता है। जहाँ पानी नहरोसे लिया जाता है, वहाँ ज़िमीन्दार बलात्कार प्रथम अपने खेतोंको पानी लेते हैं, चाहे किसानोंके खेत भले ही सूख जाँय। पीछे उनका नम्बर आनेपर वही किसान पानी पा सकेगा, जो छोटे कर्म्मचारियो को प्रसन्न कर सके, चाहे सिचाईका कर पहले दे ही क्यो न चुका हो। यदि उसकी सूचना उच्च कर्म्मचारियो को दी जाय तो कोई सुनाई नही होती, प्रार्थना पत्र बीच ही मालूम नहीं, क्या हो जाता है ? हा किसानी !

अब उनकी राष्ट्रीय अवस्थाको देखिये। राष्ट्रीयता अथवा राजनीति वे नाममात्रको भी नही जानते, पर उसके भले बुरे फलोको भोगते है। करे क्या ? राजनीति तक बेचारोकी पहुँच ही नहीं, तब राजनीति जाने कैसे ? देश और राजनीति से उन्हें लाभ ही क्या है, जो वे राष्ट्रका गर्व करके उसकी राज-

निति जाननेका प्रयत्न करें ? रही बुरे भले फल भोगनेकी, सो 'अपराध कोई करे और फल कोई भोगे, क़ानून और नियम तो स्वीकृत हो जॉय और उनका फल भोगे किसान। सबके दण्डोका फल भोगनेके लिये तो ईश्वरने उन्हे उत्पन्न ही किया है। परन्तु बेचारे सन्तोषी हैं; सब कुछ सहन कर लेते हैं। उनके लिये उनका खेत ही उनका देश और तहसीलके चपरासी, पुलिसके सिपाही, क़ानूनगो, कारिन्दे और पटवारी उनकी सरकार है। हाथ पैरोंकी बेगार, गाली, मार, और कर देना ही उनकी राजनीति है।

भारतमें आज सैंकड़ो धर्म्मसस्थाएं, सहस्रो सभा समितियां तथा सुधार-मण्डल हैं, किन्तु इन बेचारे किसानो को उनसे क्या लाभ ? कांग्रेस अखिल भारत की जातीय और राष्ट्रीय सभा है, परन्तु पढ़े लिखे मनुष्योंके अतिरिक्त अब तक उसमे देशके दीनहीन मनुष्योंकी पहुँच नहीं थी, परन्तु हर्ष है कि अब उसमें उनका भी समावेश होने लगा है*। संभव है, बेचारोका भाग्य उदय हो जाय। यदि नहीं तो, जब तक किसानोंका भाग्योदय नहीं होता, उनके उद्धारका पूर्ण उपाय नहीं किया जाता, तब तक देश कदापि उन्नति नहीं कर सक्ता। देशको वास्तविक सुखी बनानेके लिये, प्रथम किसानोंको सुखी बनाना होगा। क्योकि उनकी उन्नति पर ही देशकी उन्नति है। वे हमारे अन्नदाता है; उनके फूलते फलते ही देश फूलने फलने लगेगा।

भगवान ! दुखके गहन सागरमे पड़े और अत्याचार और अन्यायो द्वारा पीड़ित इन कृषकोंके भीषण ह्रास और कष्टोको दूर करनेके भी कोई उपाय और युक्तियॉ किसी सच्चे देश भक्त

* सन् १९१८ में देहलीमें हुई कांग्रेससे किसान उसमें सम्मलित होंने लगे है।

मनुष्यरत्न के हृदयमे प्रेरित कीजिये जिससे वह प्राणपणसे इन दीनोकी रक्षाके लिये कटिवद्ध हो कर्त्तव्य मार्गका अवलम्बन करे।

देशबन्धुओ ! स्मरण रखिये-देशसेवा और सुधारके चाहे जितने राग अलापे जाँय, सभा समितियोंमे भाँति २ के प्रस्ताव पास किये जॉय, किन्तु जव तक इन करोड़ो कृषकोको सुधार-का उपाय न किया जायगा, तव तक सर्व व्यर्थ ही जायगा, इस प्रकार भारतका उत्थान कभी नहीं हो सक्ता।

यद्यपि अब कुछ मनुष्योके हृदयोमें उनके प्रति प्रेमका वीजारोपण होने लगा है, और मनुष्य किसानोके दुखोंको समझने लगे हैं, परन्तु इतने ही से कार्य्य नहीं चलेगा। अब देशवासियो को अपनी सहृदयता और सज्जनता निष्क्रय नहीं रखनी चाहिये। उन्हें अकर्मण्यता छोड़ कर असहाय और दीन हीन कृषकोकी समस्त अन्याय और अत्याचारोस रक्षा करनेके लिये तयार हो जाना चाहिये। यह नहीं है कि वे उन्नति कर नहीं सक्ते, किन्तु इसके प्रतिकूल मितव्ययता, संयम्, परिश्रम और धर्म्मप्रेम इत्यादि गुण उनमें ऐसे है कि यदि उनके हाथ पैर बंधे न हों; यदि उन्हें तनिक भी अवसर मिले तो वे सम्मानके साथ संसार के किसी भी कृषकसमुदायका सामना कर सक्ते है।

परन्तु अब यह दुरावस्था और अधिक दिनो तक नहीं रह सक्ती, अब उनका सुधार करना ही होगा। इन आपत्तियोसे छुटकारा पाने और कृषकोका उद्धार करनेका एक मात्र उपाय यह है कि देश वासियोंके हाथोमे अपना कार्य्य आप सम्भालने के अधिकार आ जायँ। किन्तु यह अधिकार उस समय तक नहीं होंगे, जब तक भारतवासी स्वराज्य प्राप्त नहीं करते और जव तक हम स्वराज्यका उपभोग नहीं करते किसानोकी दशा सुधारना कठिन ही नहीं, वरन असम्भव भी है।

अतएव प्यारे देश बन्धुओ ! यदि किसानोके साथ आपकी सच्ची सहानुभूति है; यदि आप चाहते है कि अन्य देशोके किसानों के समान आपके देशका कृषकसमुदाय भी उन्नतावस्था मैं होकर आनन्द प्राप्त करे और संसारके अन्य देशोंकी भाँति राष्ट्रके सच्चे सहायक होकर देशकी उन्नतिमें सम्मिलित हों तो इन सब बातोके एक मात्र उपाय अपने जन्मसत्व-'स्वराज्य' प्राप्त करनेका उद्योग दृढ़ संकल्प और दत्तचित्त होकर कीजिये। विजयश्री आपके हाथ होगी।

भारतीय-स्त्री-समाज

नर जातिकी जननी तथा शुभ शान्तिकी स्रतोस्वती।
हा देव ! नारी जातिकी कैसी यहाँ है दुर्गती ?
कर क्या नही सक्ती भला यदि शिक्षिता हो नारियाँ ?
रण, रंग, राज्य, सुधर्म्म-रक्षा कर चुकीं सुकुमारियाँ ॥

किसानोंके पश्चात् भारतके जिस अंगकी दुर्दशाकी ओर हमारा ध्यान जाता है, वह देशका स्त्री समाज है।

भारतीय समाजमे आजकल स्त्रियोके साथ जो अन्याय और अनाचार हो रहे हैं, इस समय स्त्री जाति की दशा जैसी पतित हो रही है, वह किसीसे छिपी नहीं है। जन्मसे लेकर मरणपर्य्यन्त उनके साथ नाना प्रकारके अत्याचार होते हैं। वे आजकल केवल बच्चे जनने, झाड़ू लगाने, चौका वर्तन करने चक्की चलाने आदिकी मशीन मात्र हो रही हैं* । घर, बाहर सब स्थानो पर उनका अपमान और निरादर किया जाता है, उन्हें कुदृष्टिसे देखा जाता हैं, और उनके हृदय, आकांक्षाओ और इच्छाओ को पददलित किया जा रहा है, मानो उनके हृदय तथा आत्मा है ही नहीं, उनका समाजसे कोई सम्बन्ध

---

* इससे हमारा यह तात्पर्य्य नहीं है कि स्त्रिया यह सब कर्म्म न करें; नही, अवश्य करें। यदि वेही न करेंगी तो यह काम कौन करेगा ? गृहस्थपालन, स्वास्थ्यरक्षा तथा अर्थशास्त्र सब दृष्टिसे यह कार्य्य स्त्रियोंको करनेके लिये आवश्यकीय और लाभदायक है। वरन पुरुषजाति आजकल केवल अपने बल पौरुष और उच्चताकी अभिमानी होकर उनसे ऐसा कराती है, जो अनुचित है; बस यही हमारा तात्पर्य्य है।

ही नहीं है और संसारमें वे केवल एक परतंत्र, तुच्छ और घृणित जीवन बितानेके लिये ही उत्पन्न हुई है।

जहाँ किसीके घरमे कन्या उपत्पन्न हुई कि समस्त घर वालो को गाज सी मार गई, सबके मुँह पर उदासी छा गई, चेहरे पर हवाइयां उड़ने लगीं, बड़ी आशाओं पर पानी फिर गया और 'पत्थर कहाँसे आ पड़ी ?" कह कर हृदयको दुखित किया जाता है। समय २ पर नाना प्रकारकी गालियों और व्यंगो की बौछार की जाती है· शिक्षाका द्वार उनके लिये बन्द ही सा है। परन्तु पुत्र होने पर बड़े २ आनन्द मनाये जाते हैं, उत्सव किये जाते है; दान दिये जाते हैं और सब प्रकार उनका आदर किया जाता है। भोजनमे पहिले पुत्रोंका अधिकार, वस्त्रादिकी व्यवस्था पहिले पुत्रोको, पुत्र पूर्ण स्नेहके पात्र और शिक्षाकी तो कहे ही क्या? एम-ए, बी-एकी डिगरियाँ, संस्कृतकी स्नातकी और प्रान्तिक भाषाओंका पठन पाठन मानो स्वयं ईश्वर-हीने उनके लिये स्वीकृत कर दिया है। परन्तु हमारा कहना है-यदि स्त्री जाति ही न होती तो पुरुष कहाँ से आ जाते? इससे यह नहीं कि केवल स्त्री जाति ही सन्तान उत्पन्न कर सक्ती है, वरन् यही कि वही उसके लिये क्षेत्र निश्चित की गई है। क्षेत्र नहीं तो बीजका क्या हो सक्ता है? इस लिये वह प्रधान मानी जाती है, फिर कन्या होने पर इतना दुख क्यो? उनकी इतनी अवहेलना और अनादर क्यो? क्या केवल इसी लिये कि वह घरको ख़ाली करने और पुत्र घरको भरनेके मूल हे? अर्थात् क्या दहेजकी कुप्रथा ही इसका कारण है? क्या लड़के वालोकी उच्चता और पुत्री वालोकी लघुताकी काल्पनिक धारणा ही इसका मूल है? यदि, तो, यह दोष है किसका? बेचारी कन्याओका अथवा समाज का जो स्वयं इन कुरीतियोको बना

कर उनके चक्रमें फंस गई और जिसे साक्षात् देवी और दुर्गा मानते थे अब उसी भगवती स्वरूपा, लक्ष्मी रूपिणी स्त्री जातिको अत्याचारोंके दलदलमें फांस कर उनका तिरस्कार करती है?

इसके पश्चात् जहाँ कन्या कुछ बड़ी हुई, उन्हें बचपनमें ही, यद्यपि वह दाम्पत्य सम्बन्धको जानती ही न हो-विवाहके कठोर बंधनमे फँसना होता है, परिणाम यह होता है कि उनकी शारीरिक, आत्मिक और मानसिक शक्तियाँ विहीन होकर वे निर्बल, निस्तेज और शक्तिहीन हो जाती है। प्रसवके समय उन्हें भांति २ से दारुण दुख सहने पड़ते है, यहाँ तक कि कभी २ तो भोली भाली दीन कन्याओंकी मृत्यु भी हो जाती हैं। इतना ही नहीं, किन्तु इस दशामे (बाल बधू रहते हुए) भी उन्हें जो अन्य अत्याचार, विपत्तियाँ और शारीरिक तथा मानसिक वेदनाएं सहनी होती है, उनके कहते हुए तो हृदय दुखता है, लेखिनी कम्पित होकर रुक जाना चाहती है।

देखा जाता है—जो कन्या जन्म पर्य्यन्तके लिये अपने आपको पति, जिसे उसके माता पिता एक बार सौंप देते हैं—के अर्पण कर देती है, जो उसके अतिरिक्त और किसीको इस संसारमे अपना आश्रयदाता नहीं समझती, उसीको अपना एक मात्र अवलम्ब और रक्षक मानती है, जिस प्रकार पति रखता है, उसी प्रकार रहती है, कभी सुख दुखका अनुभव तक नहीं करती—उसे प्रेम करना तो एक ओर, वरन् यह स्वार्थी, अधम, कामान्ध पुरुषजाति उलटे उसके हृदयके भावोंको कुचलकर अपनी इन्द्रिय-तृष्णाके निवारणार्थ चार २ पांच २ विवाह तक करने में संकोच नहीं करती और समाज तक उनका अनुमोदन करता है। स्त्री-वियोग होने पर सामान्य शिष्टाचार की अवहेलना करके यदि हो सका तो शीघ्र ही दूसरा विवाह

कर लिया जाता है और समाज भी उसका पोषक होता है। स्त्रियोके साथ प्रेम करना तो एक ओर, उनके सामने प्रेमका नाम तक लेना यह पुरुष जाति नहीं जानती।

जिस दशामें अपनेको क्लेश होता है, दूसरा भी क्लेश पा सक्ता है-इस बातका अनुभवपुरुषोंको विल्कुल नहीं होता। उनके लिये स्त्रियोका वियोग विशेष दुखकी बात नहीं। वह तो उनकी पाशविक-वृत्ति तृप्त करने और नववधू पाकर अपनी घृणित मनोवृत्तियो और इन्द्रिय-तृष्णाको पूर्ण करनेके लिये उनके सामने सुखकी घटना उपस्थित कर देती है। धिक्कार है ऐसी जाति को, धिक्कार है उस देशको जिसमें वह जाति रहती हो, जो केवल इन्द्रिय तृप्तिके हेतु अपनी प्राणप्रिय भार्य्याको नाना प्रकारके कष्ट देने से नहीं चूकती। दो २ चार २ विवाह कर उसके हृदय पर आघात पहुंचानेसे नहीं मानती और स्त्री-जातिको केवल विषय वासनाकी सामिग्री और इंद्रियतृप्तिकी कल माने हुए हैं, उसे केवल अपनी पाशविक कांम वृत्ति निवारणार्थ मान रखा है और उसके लिये उसे कष्ट देनेसे नहीं चूकती। क्या इसीमे हिन्दू धर्म्मकी सार्थकता समझती जाती है?

अपने लिये भाँति २ की सुविधाएँ बना रखी हैं, परन्तु उनकी सुविधा असुविधाका विचार तक मन में नहीं उठता। आप बीसों प्रकारसे मनोरंजन कर लेते हैं, किन्तु उनके मनोरंजनका द्वार सदैवके लिये बन्द है। उन्हें दासी की भांति उससे भी तुच्छतः रखने मे आनन्द जानते हैं। दासीके दासत्वका भी कभी अन्त होता है, उसे भी कभी पूर्ण स्वाधीनता मिल जाती है, परन्तु गृहलक्ष्मी किसी प्रकार स्वतंत्र नहीं; सोते, जागते, उठते, बैठते, चलते, फिरते, हर समय वे दासत्वकी जंजीर में बंधी हुई हैं। उनके दासत्वका मोचन नहीं,

उनकी सहनशीलताका मुल्य नहीं, उनके स्वार्थ त्यागकी प्रशंसा नहीं, उनके हृदय अपनी इच्छानुसार दग्ध किये जाते है सब प्रकार उनका तिरस्कार होता है, उनके द्वारा इंद्रिय वासनाको तृप्त करनेके लिये हर समय तयार रहते हैं और विलासताके हेतु अपने आत्म सुखको सम्पादन करनेके लिये उन कोमलांगी अवलाओंके प्रति निष्ठुर आचरण करनेसे नहीं चूकते अपने आधिपत्यका रोष प्रतिक्षण उन दीनाओं पर दिखलाया करते हैं और इसके परिवर्तन स्वरूप भी वे हमको प्रेमही करतीं हैं करती आई हैं और करती रहेंगी, यहाँ तक कि कभी २ पति वियोग में प्राणोंकी आहुति तक दे देती है धन्य रे निस्वार्थ हृदय और प्रेमपूर्ण आत्मत्याग! प्राचीन समय में पति वियोगको सहन न कर सुकुमारियाँ सती हो जातीथीं परन्तु कहिये तो—आजतक कितने पुरुष स्त्रियोंके साथ जल मरे हैं? जलना तो एक ओर, इसका विचार तक उनके हृदय में नहीं आता। एक तो वैसेही उन्हें दग्ध किया जाता है, दूसर पशुप्रकृति स्वामी देवीरूपिणी भार्य्याको छोड़ रात्रि २ भर वेश्याओंके यहाँ पड़े रहते है, तिस पर भी वे देवियाँ उनका स्वागत बड़े प्रेम और मानसे करती हैं। ठीक है—स्त्रीजाति में जितनी उदारता है, पुरुष चरित्रमें उतनी ही घृणा, इतना होतेहुये भी उन स्नेहपरायणी, उदारप्रकृति, शान्तिरूपिणी देवियोंको कष्ट दिया जाता है, उन पर त्योरी चढ़ाते देर नहीं लगती, लाठी, थप्पड़ और हाथ उठाने में लज्जा नहीं लगती, गालिया देते हुए नीचता पर विचार नहीं किया जाता। घरू मनुष्योंकी तो यह दशा है, उधर बाहिरी पुरुषोंकी कुदृष्टिसे बचानेके लिये उन्हें अन्तःपुरमें बन्द करते हैं; पुरुषोंके अपराधके लिये भी स्त्रियोंको ही दंड मिलता है, यह कहाँ का न्याय है? क्यों नहीं

उन नरपिशाचों की आंखें फोड़ी जाती, क्यों नहीं उन्हें बाड़े में बन्द रखा जाता, क्यों नहीं उन्हें जन्मपर्य्यन्त कारागारा में भेजा जाता और क्यों नहीं स्वयं उनका मुँह बन्द करवा (घूँघट सहित) निकलवाया जाता, जो स्त्रियोंपर दृष्टिपात करतेहैं? जिससे वे फिर ऐसा करने ही नहीं पावें, उन भद्र कुलीन देवियों पर कुचेष्टाकी दृष्टि डाल ही न सकें।

इधर कुछ मनुष्योंकी यह दशा है कि वे परनारियों को कुचेष्टाकी दृष्टिसे देखते हैं और अपनी पाशविक, मलीन और अपवित्र वृतियोंको उनपर प्रकट करते हैं, जिसका फल भी उन्हीं बेचारी अबलाओं को भोगना पड़ता है, उधर कुछ मनुष्योंका—जो अपनेको वेदपाठी और शुद्धाचारी होनेका दम भरते हैं, चाहे वे सब बनावटी हों, यह मत है कि स्त्रियोंका मुख पापका मूल है। धर्म्ममे रुचि रखने वालो, विषयवासना से मुक्त होने वालो और मोक्षके अभिलाषियोको उनका वदन दर्शन नही करना चाहिये।" परन्तु ऐसा कहना क्या और उलटा भारी पाप करना नहीं है? स्वर्गका अनुभव वेही कर सक्ते हैं, जो स्वर्णमयी, पवित्र देवियोका मुख-दर्शन करते हैं, स्वर्गगमन तभी हो सक्ता है, जब कि स्वर्गकी कुमारी यह स्त्री जाति अपनी दैवी-शक्ति से उसका भान करायेगी। स्त्रियोंके पवित्र मुखको देखे बिना अपवित्रता दूर नही हो सक्ती। भक्ति, प्रेम, निःस्वार्थसेवा, सहनशीलता, आत्मविसर्जन, इन्द्रियदमन, संयम, दया सहृदयता और ध्यान आदि रमणी सत्संगसे ही प्राप्त होते हैं। उन्हींके पवित्र दर्शनसे स्वर्गीयनाद, काव्य चित्रक, सृष्टि-सौन्दर्य्य, आध्यात्म, उच्चता, महत्ता और पवित्र-भावोका संचार होता है। फिर योही सही; यदि उनके देखने मात्र से कामोद्दीपन होता हैं, तो अपराध किसका? क्या काम

उन्हींके दूर रहने से जीता जा सकता है ? तो क्यों लुकछिप कर स्त्री के न होने पर वेश्याओंसे कामनाको और भी उत्तेजित किया जाता है ? अपने आपको धोखा मत दो, अपनी भीतरी दशा देखो, क्यो वृथा ही पवित्रताकी खान, संयमकी प्रतिमा नारी-जातिको कलंकित कर पापके गढ़ेमे डूबते हो? स्वयं अपने मनको संयम कर अन्तःकरणके भावोको उच्चकरो, उन देवियों का आदर करना सीखो और उन्हे वास्तविक सती, गौरी बननेका अवसर दो।

यह तो हुई पुरुषोंके अत्याचारकी बात। अब स्वयं स्त्रियो के पारस्परिक व्यवहारकी दशा वर्णन करते हुए चित्तको क्षोभ होता है। जहाँ किसी घरमें चार स्त्रियां क्यो दो ही हुई कि उस घरमे सदैव लड़ाई रहती है। वह गृह सदैव कुरुक्षेत्र ही बना रहता है। परस्पर एक दूसरी की बात सहन नहीं कर सक्तीं। यह सब उनके अन्धकारमे पड़े रहने औरअज्ञानमे जकड़े रहनेका फल है। मूर्खताके कारण उन्हे किसी बातका बोध तो होता ही नहीं है, बस परस्पर झगड़ा करना, पुरुषोमे द्वेष करादेना और अन्तको भाईको भाईसे किसी न किसी प्रकार अलग करा देनेमे ही उनकी तृप्ति होती है; इसका मुख्य कारण क्या है ? अशिक्षा। स्त्री धर्म्म और गृहस्थ धर्म्मकी शिक्षा दिये विना ही उन्हें गृहकार्य्य करनेके लिये बाध्य किया जाता है, अर्थात् बाल्यकालमें उनका विवाह कर दिया जाता है। पति पत्नी-सम्बन्ध क्या है; घरका प्रबन्ध कैसे होता है, बाल बच्चोंके पालनके क्या उपाय हैं, उनकी रक्षाके किया नियम हैं। इत्यादि विषयोका ज्ञान हुए बिना ही वे विवाह बंधनमें बांध दी जाती हैं। लड़कोंकी शिक्षामे सहस्रो रुपये व्यय होते है, परन्तु पुत्रियोंकी शिक्षामे जिनके ऊपरही गृहस्थका पूरा २ भार

होता हैं, कुछ भी व्यय करना नहीं चाहते। क्यो ? क्या उनमें शिक्षा प्राप्त करनेकी शक्ति नहीं है ? क्या शिक्षासे उनमें कोई न्यूनता आ जाती है ? अथवा क्या वे तीव्र बुद्धि, सदाचार और सौन्दर्य्य की अधिष्ठात्री नहीं बन सक्तीं ? क्या हमारे यहाँ सीता, सावित्री, गार्गी आदि शिक्षित रमणियाँ नहीं हुई हैं ? स्मरण रहे यदि हमारी स्त्रियाँ उन्नति नहीं करेंगी तो हम अपनी जातीय-उन्नतिमें कभी कृतकार्य्य नहीं हो सक्ते*

यहाँ पर इस विषयमे महात्मा गांधीके कुछ विचार जो उन्होने हाल ही मे प्रकाशित किये है दे देना हम उत्तम समझते हैं। वे कहते हैं—

"स्त्रियोकी उन्नतिका प्रयन्त स्त्रियोंको स्वयं करना चाहिये। दूसरोंके तपस्या करने पर जिस प्रकार हमे मोक्ष नहीं मिल सक्ती, उस प्रकार पुरुषोके आन्दोलनसे स्त्रियोंकी सच्ची और स्थायी उन्नति नहीं होगी। स्त्रियोंको अपनी संस्थाएं चलाने के लिये, अपने आन्दोलन करनेके लिये पुरुषोंकी सहायता तो लेनी चाहिये, परन्तु आत्मोन्नतिके लिये उनको सर्वथैव पुरुषों के प्रयत्नों पर अवलम्बित नहीं रहना चाहिये। इससे हमारा यह तात्पर्य्य भी नहीं है कि पुरुष स्त्रियोंकी उन्नति कर नहीं सक्ते अथवा पुरुषोंके प्रयत्नोंसे स्त्रियोंकी उन्नति बिल्कुल होगी ही नही, किन्तु यह कि प्रत्येक व्यक्ति वा समाजकी सच्ची और स्थायी उन्नतावस्था उस व्यक्ति और उसके सदस्योंके स्वावलम्बन युक्त और स्वसामर्थ्यसे होने वाले प्रयत्नोसे ही प्राप्त हो सक्ती है, यह सिद्धान्त कभी दृष्टिकी ओट नहीं होना चा-

---

* यहाँ पर गृहस्थ विषयक दृष्टिसे हम स्त्रियोंका वर्णन नहीं कर रहे है। केवल राष्ट्रीय दृष्टिसे उनके विषयमें कुछ लिखना हमारा उद्देश है, परन्तु जो कुछ यहाँ गृहस्थ विषयक लाना पडा, वह प्रसग वश ही ऐसा करना पडा है।

७

हिये। स्त्रियोकी उन्नतिके लिए इस समय पुरुषोंकी सहायतासे और उन्हींके निरीक्षणमें जो संस्थाएं चल रहीं हैं अथवा जो आन्दोलन हो रहे हैं उनकी कार्य्य-पद्धतिकी नीति ही यही होनी चाहिये कि अन्तमें उन संस्थाओ और आन्दोलनोका कार्य्य सर्वथैव स्त्रियोके ही हाथमें आ जावे। स्त्रियोकी कार्य्य-क्षमता बढ़नी चाहिये। अपनी आवश्यकताएं जितनी अच्छे प्रकार स्वयं स्त्रियोको ज्ञात हो सक्ती है उतनी भली भाँति पुरुषोको नहीं। स्त्री समाजमे स्वयं स्त्रियाँ ही जितना उत्तमता पूर्वक कार्य्य कर सक्ती हैं, पुरुष नहीं कर सकते।"

उनका कहना है—

'मैं स्त्री और पुरुष दोनों ही वर्गसे हिल मिल कर रहता हूं और अब तक मेरा ऐसा अनुभव है कि स्त्री समुदायकी उन्नति करनेके विषयमे स्त्रियोकी सहायताके विना कोई कार्य्य नहीं चल सक्ता।

मेरा मत है जब तक भारतवर्षमें स्त्रियो पर रत्ती भर भी अन्याय बना रहेगा, अथवा उनको उनके योग्य अधिकार पूर्णतः उपभोग करनेको नहीं मिलेंगे, तब तक भारतका सच्चा उद्धार नहीं हो सक्ता हमारा कर्त्तव्य हो कि हम स्त्रियोको वह अवसर दें कि वे फिर अपनेमे पहिलेकी भांति सीता, सावित्री, और दमयन्ती जैसी सती देवियोको उत्पन्न कर सकें। परन्तु यह बात अवश्य है कि अभी उनके समान बहुत थोड़ी और कभी २ स्त्रियां उत्पन्न होंगी। इस लिये हमे यह देखना चाहिये कि सर्व साधारण स्त्रियां क्या करें? जितनी स्त्रियोको उनकी वर्तमान स्थितिका ज्ञान कराया जासके, उतनी स्त्रियोंको वह कराते रहना चाहिये, यह पहिला काम है। यह कार्य्य लिखने पढ़नेकी शिक्षा द्वाराही कराया जा सक्ता है-यह भ्रम है। इस

प्रकार तो न ज्ञात कार्य्य सिद्धिमे कितना समय लगेगा? उतना समय लगानेकी कोई आवश्यकता नहीं है—यह मुझे अनुभव द्वारा पूर्ण विश्वासके साथ ज्ञात होने लगा है। लिखने पढ़ने की शिक्षा चाहे (प्रथम) न हो, तो भी इस शिक्षाका स्त्रियोंमे बड़े परिणाम पर प्रचार करनेकी मार्ग-प्रतीक्षा किये बिना ही स्त्रियोको बहुत शीघ्र अभी २ उनकी अवनतिका ज्ञान कराया जा सक्ता है।

एक बार जब मैं बिहार प्रान्तमे था–मैं वहाँ बहुत सी कुलीन स्त्रियोंसे मिला; वे सब पर्दा करने वाली थीं। परन्तु जैसे बहिन भाइयामे पर्दा नहीं होता, वैसे ही वे मुझसे भी पर्दा न करती थी फिर भी उनसे मिलनेके लिये मुझे एक कोठरीमे जाना पड़ा था। वहां उनसे मैंने विनोद पूर्वक कहा– 'चलो बाहर चले, जहाँ सब पुरुष है, हम भी वहीं बैठें।" इस पर उन देवियोंने उत्तर दिया—

"हम लोग प्रसन्नता पूर्वक वहां चलनेके लिये तयार है, परन्तु हमारे चाल व्यवहारके अनुसार हमे वैसा करनेकी आज्ञा मिलना चाहिये। हमको यह पर्दा बिल्कुल पसन्द नही है, आप इस असुविधाको दूर करें।"

इन शब्दोंमे जितनी हृदय-द्रावकता है, उतनाही उनमे मेरे उपर्युक्त कथनका समर्थन भी। इन स्त्रियोंको पढ़ना लिखना नहीं आता था, तो भी अपनी दशाका बोध उनको हो चुका था उन्होंने मेरी सहायता मांगी सो ठीक ही था, परन्तु मेरी इच्छा यह है कि वे स्वयं ही अपनी परवशताका निकारण करें और "उनमे वह शक्ति विद्यमान है"–यह भी उन्होंने स्वीकार किया! मुझे आशा हो रही है इन स्त्रियोंका पर्दा शीघ्र ही दूर होगा, और उन्हें स्वाधीनता पूर्वक संचार करनेको मिलेगा।

साधारणतः अशिक्षित समझी जाने वाली नारियां वहां उत्कृष्ट रीतिसे समाज सेवाका कार्य्य कर रही हैं। उन्हें स्वयं जो अधिकार उपभोग करने को मिलते हैं, उनका प्रेम वे अपनी अज्ञ बहिनोंमे उत्पन्न कर रही हैं।

स्त्री, पुरुष की सहचरिणी* है, पुरुषके समान उसके भी मन है, पुरुषोंके सब व्यवहारोंका सूक्ष्मता पूर्वक ज्ञान कर लेने का पूर्ण अधिकार उसे है। जितनी स्वाधीनता पुरुषोको है, उतनी ही स्वाधीनताके उपभोग करनेका उसे अधिकार है। पुरुष जैसे अपने कार्य्यक्षेत्रमें बड़ा है, वैसे ही स्त्री भी अपने कार्य्यक्षेत्रमे बड़ी है। ऐसी स्थिति स्वभाविक ही होनी चाहिये।

* 'स्त्री, पुरुषकी अर्द्धांगिनी है'—यह शास्त्रो, बडे २ नीतिज्ञो और महान पुरुषोका मत है। यदि आप भी ऐसा ही समझते है, तो कन्याओंकी शिक्षा में उपेक्षा क्यो करते है और उसके लिये व्यय करनेमें क्यो सकोंच करते है ? उत्तरमें आप कहेंगे—'कन्या पराये घरकी सम्पत्ति है, हम क्यों उसकी शिक्षामें व्यय करें ? ठीक है, परन्तु क्या हम आप सबका यह धर्म्म नहीं है कि पराई वस्तु को भी सम्भालकर रखें और समय पर उसे पूर्ण योग्यता, सुन्दरता और मनोरमताके साथ उसके अधिकारी को सौंप दें ? इतने पर भी यदि आपका वही मत रहे, तो अतिरिक्त इसके कि 'शोक है आपकी इस कुबुद्धि, तुच्छता, स्वार्थ परता और कृतघ्नता पर''—और क्या कहा जा सक्ता हैं। कन्याओंके ऊपर थैलियॉ बांधनेके लिये तो आप तयार रहें, पशुओंकी भॉति उनका व्यवसाय करनेके लिये तो आप सदैव प्रस्तुत रहें, परन्तु उनकी शिक्षामें इतनी उपेक्षा करें, उन्हें आनन्द पूर्वक रखने और उनके वास्तविक अधिकार उन्हें उपभोग करने देनेमें आप तनिक भी विचार न करें, उन्हें कष्ट देनेमें आप बिल्कुल सकोच न करें—इससे अधिक पाशविकता और क्या हो सक्ती है ? क्या ऐसी मदान्ध, स्वार्थपूर्ण अधम जाति भी कभी उन्नत जातियोमें कही जा सक्ती है ? ऐसी निकृष्ट जातिका भी क्या कभी भाग्योदय हो सक्ता है ?

स्त्रियों और पुरुषों की योग्यतामे जो अन्तर दिखलाई देता है, वह कुछ पढ़ने लिखनेके ज्ञानके कारणही नहीं हुआ है। बिल्कुल जड़ मूढ़ पुरुष भी विषम रूढ़िकी प्रबलताके कारण ऐसे अधिकार स्त्रियों पर चलाते है, जो उन्हें बिल्कुल शोभा नहीं देते, और न उनकी योग्यता ही वैसी है। स्त्रियो की ऐसी दशा हो रही है और इसी कारण हमारे प्रयत्न सफल नहीं होते हैं।

जिन स्त्रियोको अपनी अवनतिका ज्ञान होकर उन्नतिके मार्ग ज्ञात हो चुके हैं, उनसे मेरी यह प्रार्थना है कि यह ज्ञान वे अपनी उन बहिनोमे उत्पन्न करें, जिनमे वह अभी नहीं हुआ है। जो कुछ अवकाशका समय उन्हे मिले, उसका उपभोग करके अपनी पिछली बहिनोमे जाजा कर उन्हें वे ज्ञान प्रदान करें, जिन्हे वे स्वयं जानती है। जो स्त्रियाँ पुरुषोंके धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक आन्दोलनोमे सम्मलित होती हैं उनका वृत्तान्त उन्हें बतावे। जिनको बाल संगोपनके विषयमें अच्छी जानकारी है, वे उसका प्रचार अज्ञान स्त्रियोंके समाजमें करे। स्वच्छ हवा, स्वच्छ जल, साधारण और स्वच्छ भोजन और व्यायाम आदिके लाभ जिनको ज्ञात हो, वे अपनी अज्ञ बहिनों को समझावें। इस प्रकार कार्य्य करनेसे स्वयं उनकी उन्नति होगी और उनके द्वारा दूसरों की भी उन्नति हो सकेगी।

निस्सन्देह ऐसे कार्य्य बिना पढ़े लिखे हो सकेंगे तो, परन्तु अक्षर ज्ञान विना भी कार्य्य नही चलेगा; यह मेरा दृढ़ विश्वास है। अक्षर ज्ञानसे बुद्धिका सन्स्कार होता है, उसकी तीव्रता बढ़ती है और पारमार्थिक सामर्थ्य भी खूब बढ़ती है। लिखने पढ़नेकी शिक्षाको सर्वोच्च स्थान मैंने कभी नहीं दिया, तो भी उसके महत्व समझानेके लिये मैं प्रयत्न करता रहा हूं। समाजके व्यक्तिगत कारणसे जो अधिकार स्त्रियोको प्राप्त हैं;

उन्हें छीन लेनेके लिये व उन्हें न देनेके लिये, यह कारण उपस्थित नहीं करना चाहिये कि उनमें शिक्षाका अभाव है। यह बात अवश्य है कि उन अधिकारोंको उचित रीतिसे बजा लानेके लिये, उनका मार्ग प्रसस्त करनेके लिये और उनका प्रचार करने के लिये शिक्षाकी आवश्यकता है। विद्याके विना मनुष्यों को आत्मज्ञान भी न मिल सकेगा। सद्ग्रन्थोंके पढ़नेसे निर्दोष आनन्द प्राप्त होता है और साहित्यमे ऐसे आनन्दका विस्तृत भण्डार भरा पड़ा है। उसे लूटनेके लिये शिक्षाकी आवश्यकता है। यह कहना कि 'विद्या विहीन मनुष्य पशु समान है' अतिशयोक्ति नहीं है, वरन् वास्तविक दशाका यह यथोचित चित्रही है। अवश्य ही जैसे पुरुषों को, वैसे ही स्त्रियोंको भी शिक्षा मिलनां चाहिये।

परन्तु यह नहीं कि जो शिक्षा पुरुषों को दी जाती है, वही उन्हें भी दी जावे। मैं समझता हूं, इस समय देशमें सर्कार द्वारा लोगोको जो शिक्षा दी जाती है; वह अधिककांशमें अन्य मार्गीय और हानिकारक है: अवश्य ही यह शिक्षा इस देशके स्त्री पुरुष दोनोंके लिये त्याज्य है। चाहे इसके दोष दूर भी कर दिये जाँय, तो भी यह शिक्षा स्त्रियोंके लिये योग्य नहीं है। स्त्रियों और पुरुषोंका अधिकार एक है, परन्तु वे दोनो समान नहीं हैं। उनके कार्य्य एक दूसरेके पूरक है, वे परस्पर आधारभूत है, और इतने परस्परावलम्बी हैं कि एकके अभावमें दूसरे का अस्तित्व ही उत्पन्न नहीं हो सक्ता। स्त्री और पुरुष दोनोंमें से किसीके भी स्थानभृष्ट हो जाने से दोनोका ही नाश हो जाता है। ऊपर जिस वास्तविक दशाका उल्लेख किया है—यह सिद्धान्त उसीसे निकलता है। अतः स्त्री शिक्षाका क्रम निश्चित करते हुए उक्त बात सदा अवश्य ध्यानमें रखना चाहिये।

यह विचार शिक्षाके विषयमें हुआ, परन्तु इतने ही से यह न समझ लेना चाहिये कि छोटी २ बालिकाओंका विवाह होना बन्द हो जायगा, अथवा स्त्रियोंको उनके स्वाभाविक और योग्य अधिकार प्राप्त हो जायंगे। लड़कीका जहाँ विवाह हुआ कि फिर उसे पाठशालाका दर्शन नहीं होता। अच्छा एकवार लड़कीका विवाह बालपनमें कर देनेका पातक उसके मां बापने किया, परन्तु फिर भी वे अपनी लडकी को अथवा उसके मन को अन्य किसी प्रकारसे सुसंस्कृत करनेमे बिल्कुल असमर्थ रहते हैं। जो पुरुष बालिकासे विवाह करता है, वह परोपकार भाव से वैसा नहीं करता, किन्तु प्रायः विषयासक्ति ही के कारण वैसा करता है। इन बालिकाओंका बचाने वाला कौन है? इस प्रश्नका उत्तर अधिकांशमें समाविष्ट है और वह यही है कि— "इनको बचानेवाला संसारमे पुरुषके अतिरिक्त और कोई नहीं है। बालिकासे जिसने विवाह किया है, उस पुरुषको उसकी स्त्री समझा सकेगी, यह लगभग असम्भव ही है। अवश्य इस विकट सुधारका कार्य्य समझदार पुरुषो को ही करना चाहिये। मुझसे हो सकेगा तो मैं विवाहित-बालिकाओ की गणनाका पत्रक तयार करूँगा; उन बालिकाओंके शुभचिन्तको को ढूंढ़ निकालूँगा और मित्रोंके द्वारा अथवा धार्मिक वा अन्य जो उपाय मुझे दिखाई देंगे, उनका उपभोग करके उन बालिकाओं के पतियोंसे कहूंगा-"तुमने अज्ञानसे बाल-विवाहका पाप किया है, तथापि अब भी जब तक तुम्हारी पत्नी प्रोढ़ावस्था को प्राप्त न हो जाय और जब तक उसे शिक्षा प्राप्त न हो जाय, तबतक तुम शुद्ध ब्रह्मचर्य्यका पालन करके स्वयं अथवा दूसरेके द्वारा उसे सुशिक्षता करो और मातृ-पदवी तथा बालसंगोपन करने की योग्यता उसको प्राप्त कराओ। यह काम जब तक तुम

नहीं करोगे, तब तक बाल विवाहके पातकसे तुम कदापि मुक्त नहीं हो सकोगे।"

स्त्रियोंके विषयमें भारत सपूत; आत्म विजयी; सत्याग्रही महात्मागांधीका मत प्रत्येक भारत वासी को ध्येय है। महात्मा जीने विवाहके पश्चात् प्रोढ़ा अवस्थाको प्राप्त होने तक स्त्रीकी शिक्षाका भार उसके पति पर बतलाया है। ठीक है। जब माता पिता मोहान्ध होकर अपनी कन्याओंकी शिक्षामें उपेक्षा करते हैं, तब पतियो को अपनी २ पत्नियोंकी शिक्षाका भार अवश्य स्वयं लेना चाहिये। ऐसी दशामें उनका कर्त्तव्य है कि वे उनमें अर्थात् अपनी भार्य्याओंमें विद्याका व्यवसन उत्पन्न करके शिक्षाकी ओर उनकी अभिरुचि करें। जब वे कुछ २ पढ़ने लिखने लगें तो उन्हें स्त्री-उपयोगी उत्तम २ ग्रन्थोंका पठन पाठन कराना आरम्भ करे और इस प्रकार धीरे २ उन्हे पूर्ण शिक्षिता बनालें।

यह बात सदैव दृष्टिगत रखनेकी है कि अकेला पुरुष जातीय-जीवनमें कुछ नहीं कर सक्ता। राष्ट्रकी उन्नति अधिकतर स्त्रियों ही के हाथमे है। यदि वे चाहे तो राष्ट्रको उन्नत अथवा अवनत कैसा ही बना सक्ती हैं। अतएव जो लोग भारतका कल्याण चाहते हैं, उन्हें चाहिये कि वे स्त्री शिक्षाका प्रसार करें, और उन्हें पूर्ण शिक्षिता बनाकर उनमे वे भाव उत्पन्न करें जिस से वे बन्द घरोंमें केवल चूल्हा फूकने, बर्तन माँजने, और बच्चे जननेकी केवल कलही नहीं बनी रहें, वरन् गृहस्थ धर्म्मका पामन करती हुई, घरके अन्य कार्य्यों के साथ साथ २ वे सच्ची सती, आदर्श माताएं, और बीर-पत्नी भबनें, इसके लिये अन्य उन्नत देश भारतके लिये आदर्श स्वरूप हो सक्ते हैं, वहाँ की स्त्रियो की उन्नततावस्थासे इस विषयमें बहुत कुछ शिक्षा गृहणकी जा सक्ती है, जहाँ उनके उपयोगी शिक्षा पूर्ण रूपसे दी जाती है।

अपने प्राचीन वैभव, गौरव और आदर्श को सामने रखकर उसके अनुसार कार्य्य करनेसे भी देशका बहुत भला हो सक्ता है। परन्तु उसका वृथा अभिमान करनेसे ही अब कार्य्य न चलेगा। यह समय युगान्तरका है: अब नेत्रों को खोलकर वर्त्तमानकालकी गम्भीर गति और समयकी घातोंका सूक्ष्म निरीक्षण करनेकी आवश्यकता है, और तभी कार्य्य सम्भल सकेगा, क्योंकि उसीके द्वारा हम जान सक्ते हैं कि स्त्रियोकी वर्त्तमान दशा सुधारनेके लिये उनके प्रति हमारा क्या कर्त्तव्य है और उन्हे किस प्रकारकी शिक्षाके ढांचेमे ढालनेकी आवश्यकता है। स्त्रियां पुरुषोके केवल भौतिक शरीरमात्रकी जननी ही नहीं है–उनके मन, वचन कर्म, ज्ञान, बुद्धि और चित्तवृत्तियों को विमल सुसंस्कृत करने और उनके उत्साह, इच्छा शक्ति तथा आकांक्षाओ को जागृत करनेका उत्तरदायित्व माताओं ही पर है। माताओं द्वारा सदुपदेश, उत्तम ज्ञान और बढ़ावा दिये विना उनकी सन्तान देश, जाति और राष्ट्रकी भलाई करनेमें कभी आरूढ़ और समर्थ नही हो सक्ती। परन्तु इस लिये कि वे स्तनपानके समयसे ही बालकोमें इन गुणो और भावोका समावेश करें, उन्हें स्वयं ज्ञानवान और सुशिक्षता और ज्ञानवती होनेकी इसके लिये यह नितान्त आवश्यकीय है कि उन्हें आरंभ से ही देशकी परिस्थिति और उसकी आवश्यकताओसे विज्ञ किया जावे, उन्हे भूत व वर्त्तमानका ज्ञान करा देने, देशके प्राचीन व वर्त्तमान कालीन वीर देशभक्तो, लोकमान्यो और कर्त्तव्य परायण स्त्री पुरुषोंके जीवन वृत्तान्त सुनाने, उनमें सदिच्छाएं उच्च आकांक्षाएं आत्मत्याग, निःस्वार्थभाव और पवित्र तथा विमल चित्त वृत्तियोंके साथ २ देशकी वर्त्तमान आवश्यकताओंका ज्ञान उत्पन्न करा देने और उन्हें सुधार व उन्नतिके यथोचित मार्गका

दिग्दर्शन करा देनेकी आवश्यकता है। उन्हें बतला देना चाहिये, 'वे कौन हैं, संसारमे उनका जन्म क्यों हुआ है, यहाँ उन्हें क्या २ कार्य्य करने हैं और उनका कर्मक्षेत्र क्या और कैसा है? साथ ही यह भी कि 'उनके अधिकार, कर्त्तव्य कर्म और उत्तरदायित्व क्या है? उन्हें अपने परिवार, पड़ोसियो, जाति, समाज, देश और राष्ट्रके पतन उसके पुनरुत्थानके कारण और परिणामोंका अध्ययन और उपयोगिताका पाठ पढ़ा देना केवल आवश्यकीय ही नहीं, वरन् बहुत हितकर और अति लाभदायक होगा। अतिरिक्ततः उन्हें यह भी समझा देना चाहिये कि वे आदर्श रमणियो, सती लक्ष्मियों और वीर माताओंकी सन्तान हैं, उन्हें आत्माभिमान रखना चाहिये; देश और साम्राज्यकी भलाई उन्हींके हाथमे है, विना उनकी सहायता और आत्म-त्यागके राष्ट्रकी उन्नति और उसका उदय होना कठिन ही नहीं, असम्भव है। जहाँ देशकी स्त्रियोंने यह समझा, उन्हें उनकी स्थिति, उनके स्थान और कर्त्तव्यपरायणताका ज्ञान हुआ, समझ लीजिये देशकी भलाई और उसके अभ्युदयमें फिर देर नहीं है।

परन्तु भारतीय रमणियोंको इन गुणोंसे विभूषिता करने और उनमें जागृति उत्पन्न करनेके लिये राष्ट्रीय—शिक्षाकी बडी भारी आवश्यकता है। विना उत्तम शिक्षा दिये उनमे इन भावों का उदय होना कठिन ही है। परन्तु देखनेमे प्रत्यक्ष आ रहा है कि एक तो भारतमें स्त्रियोंकी शिक्षाके लिये वैसे ही स्कूल बहुत कम है तिस पर आदर्श और राष्ट्रीय विद्यालयोका तो नाम मात्र भी नहीं है। जब अभी तक पुरुषोकी शिक्षाका ही कोई उचित प्रबन्ध नहीं है, तब वेचारी स्त्रियोंके स्कूलोंका पूछना ही क्या है?

परन्तु यह दुर्व्यवस्था अब अधिक दिनो तक नहीं रह

सक्ती, अब भारतीय-स्त्री-समाज और अधिक दुखके गढ़े और अविद्याके तममें पड़ा नहीं रह सक्ता, अब उसे किसी न किसी प्रकार वहाँसे निकाल कर ज्ञानवान बनाना और उसके दुःखो को दूर करना ही होगा। उन्हें इस प्रकारका बनाना और देश व साम्राज्यकी भलाई करनेका एक मात्र उपाय है कि भारत-वासियोंके हाथोंमे अपनी शिक्षाका प्रबन्ध करनेके अधिकार आ जाँय। किन्तु यह अधिकार उस समय तक नहीं होगे जब तक भारतवासी अपने स्वत्व प्राप्त नही करते, अर्थात् ब्रिटिश साम्राज्यके अन्तर्गत रहते हुए स्वराज्याधिकारी नहीं होते, क्योंकि जबतक हम लोगोंको स्वराज्य प्राप्त नहीं होगा, हमारी स्त्रियोंकी शिक्षाका उपयुक्त प्रबन्ध होकर उन्हें ज्ञानवती नहीं बनाया जा सकता, और जब तक वे ज्ञानवती होकर अपने पैरों पर आप खड़ा होना नहीं सीखतीं, उनके दुख कदापि दूर नहीं हो सक्ते और वे राष्ट्र, समाज, जाति और साम्राज्यका कुछ भी हित नहीं कर सकेंगी।

अतएव प्यारे देशबन्धुओ! यदि आपको अपनी स्त्रियोसे कुछ भी प्रेम है, यदि आपको भारतकी रमणियोंकी अधोगित पर कुछ भी सहानुभूति होती है, यदि आपकी "स्त्री शिक्षा–स्त्री शिक्षा" की ध्वनि केवलमात्र ही नहीं, वरन् सच्ची और हृदय व अन्तःकरणके प्राकृतिक श्रोतसे निकली हुई है और आप वास्तवमे भारतीय स्त्री समुदायको सुशिक्षिता, ज्ञानवती, और चतुरा बनाकर उनके दुख दूर करनेके साथ २ अपने गृह, समाज, जाति और राष्ट्रके उत्थानके अभिलाषी हैं और अपने अर्द्धांग स्त्री समाज को जो इस समय अविद्या—रजनीमे बड़ी विपत्ति भोग रहा है, देश और साम्राज्यका भला किया चाहते है और भारतमे वही प्राचीन आनन्द तरङ्गोंको कलरव करते देखने

के अभिलाषी हैं, तो उठिये और सबके मूलमन्त्र 'स्वराज्य' प्राप्त करनेका उद्योग दृढ़ता और धैर्य्यके साथ कीजिये। स्वराज्य प्राप्त होनेपर स्त्री सुधार दूर नहीं रहेगा। उस समय आप एक दो नहीं, सैंकड़ों राष्ट्रीय विद्यालय खोलकर अपने देश की देवियोंको यथार्थ देवी और आदर्श स्त्री रत्न बना सक्ते हैं।

भारतीय-विद्यार्थी और शिक्षा ।

है व्यर्थ वह शिक्षा कि जिससे देशकी उन्नति न हो ।
हो प्राप्त पशुताको सभी मनुष्यत्वको खोकर रहो ॥

स्त्रियोंके पश्चात् विद्यार्थी और उनकी वर्त्तमान शिक्षा-प्रणाली है, जो अपनी ओर हमारा ध्यान आकर्षित करती है, क्योंकि इस समय भारतीय विद्यार्थियोंकी जैसी शोचनीय और कष्टप्रद अवस्था हो रही है और उनकी शिक्षाका जैसा कुप्रबन्ध है, उसको देखते हुए यह आवश्यकीय है कि उसका थोड़ासा विवेचन और आलोचना इस लेखमालामे की जाय ।

शिक्षाके प्रचारसे देशको जो लाभ हो सक्ता है-उसे सब ही जानते हैं । भारतवर्षमें शिक्षाके सूर्य्यके उदय होनेसे अविद्या रजनीका अवसान होता हुआ देखकर किस अभागे भारतवासीका हृदय कमल न खिल उठेगा, अपने देशबन्धुओं को अविद्या अन्धकारसे निकालकर ज्ञानवान बनाना भला किसे अच्छा न लगेगा ? यह किसकी इच्छा न होगी कि हम भारत-वासी भी शिक्षित होकर उतना ही सम्मान प्राप्त करें, जितना कि संसारके अन्य स्वतंत्र राष्ट्रोंके निवासी पा रहे है ? यद्यपि उसकी प्राप्तिके एक मात्र साधन 'शिक्षा प्रचार' के लिये प्राण-पणसे उद्योग हो रहा है; भारत सरकार और देशवासी सभी उसमे योग देकर उसका विकाश करना चाह रहे हैं, परन्तु शिक्षित-समाजकी दशाको देखकर शोकसे कहना पड़ता है कि हम भारतवासी शिक्षित होते हुए भी अभी अशिक्षित ही बने हुए हैं ।

शिक्षाका उद्देश केवल यही नहीं है कि उससे किसी मनुष्य को कुछ पढ़ना लिखना आजाय, वरन् स्थूल दृष्टिसे देखने पर भी कहना पड़ता है कि शिक्षाका उद्देश अंधेरेमें पड़े हुए मनुष्य

के पास प्रकाश पहुंचाना और उसे एक ज्योतिर्मय जगतमें लाकर खड़ा कर देना हैं। शिक्षाका उद्देश ज्ञान-प्रकाश पुंगके ऊपर चढ़े हुए अवरागको दूर कर उसकी मनोरम, स्वच्छ और शीतल ज्योतिसे सर्व साधारणका हित करना है। शिक्षाका उद्देश हृदयसरोवरस्थ ज्ञान सरोजकी कलीका विकसित कर उसकी सुवाससे संसारको विमुग्ध कर देना है। शिक्षाका उद्देश मानवजीवनके अन्यतम् लक्ष्य 'मोक्ष' को प्राप्त करनेके लिये सुमार्गका सुझाना और जीवन संग्राममे विजय दिलाने वाले सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्रोसे सुसज्जित कर देना है, साथ ही अपना अस्तित्व रखनेके लिये स्वावलम्बी और सामर्थ्यवान बनकर स्वभाषाके महत्व को समझाना तथा अनन्य भावसे इनके लिये अपना सर्वस्व अर्पण कर देना है। यदि शिक्षासे यह उद्देश सिद्ध नहीं होते, यदि उसके द्वारा हमारा अज्ञान दूर होकर ज्ञान नहीं बढ़ता, हम कुपथ और सुपथको नहीं पहिचान सक्ते, जीवन संग्रामके प्रहारोसे अपने शरीर और आत्माकी रक्षा नहीं कर सक्ते, सब प्रकार अकर्मण्य और परमुखापेक्षी हो दासानुदास बने रहनेमे ही मोक्ष समझे बैठे है, अपनी भाषा, जाति, धर्म्म तथा देशके सम्पूर्ण गौरव और हितको तिलांजलि देकर अपने को अधम बनाये रखनेमे ही अपना गौरव समझते है, तो हम कह सक्ते है कि शिक्षित होते हुए भी अभी हम सब शिक्षित नही हैं–अर्थात् अशिक्षित ही बने हुए है।

आज कल भारतीय—विद्यार्थियोंकी जो दुर्दशा है, वह किसीसे छिपी नही है। यद्यपि भारतवर्षमें विद्यार्थियोंकी शिक्षा के लिये इस समय स्कूलों और कालिजोंकी कमी नहीं है, परन्तु उनमें जिस उपेक्षाकी दृष्टिसे विद्यार्थियोको शिक्षा दी जा रही है, उसके स्मरण मात्रसे उसके प्रति अश्रद्धा उत्पन्न होने

लगती है। इस बातको सब जाने हुए हैं कि वर्त्तमान समय में भारतीय स्कूल और कालिजोंमें शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी भाषा है। क्या हमारे भारतीय-विद्यार्थी विना इगलिश पढ़े विद्या और ज्ञानका मार्ग प्राप्त नहीं कर सकते ? हम दृढ़ता पूर्वक कह सकते हैं कि अंग्रेजीको हमारी शिक्षाका माध्यम बनानेसे विद्यार्थियों की बड़ी दुर्दशा हो रही है, साथही लाभके अपेक्षा हानि अधिक होती दिखलाई देती है; इस दुर्दशा और हानिके और भी बहुतसे कारण हो सकते हैं; परन्तु प्रधान कारण यही है कि अंग्रेजीके समान कठिन और दुरूह विदेशी भाषाके पढ़ने में विद्यार्थियोंका प्रायः समस्त जीवन व्यतीत हो जाता है। उसका पढ़ना तो हमारे विद्यार्थी आठ नौ वर्ष की अवस्थासे आरम्भ कर देते है और यदि उनके माता पिता शुल्क आदि व्यय करने की शक्ति रखते भी हों; तो भी वे उसे आजन्म पूर्ण नही कर-पाते। कई वर्ष शब्दोंके ठीक २ उच्चारण, हिज्जे (Spelling) अर्थ आदिके रटनेमें बीत जाते हैं; बहुतसा समय व्याकरणके नियम आदि कंठ करनेमें नष्ट हो जाता है, फिर भी बेचारे विद्यार्थी कोरे ठनठनपालमदनगोपाल, ही रह जाते हैं। हाँ बबुआपनकी गंध उनमें अवश्य प्रवेश कर जाती है।

प्रश्नहो सकता है—'अंग्रेजी पढ़नेसे विद्यार्थियोंकी ऐसी दुर्दशा होने पर भी वे उसके पीछे क्यों पड़े हुए है?" उत्तर स्पष्ट है "विवशता और अभाग्य ही उन्हे ऐसा करनेके लिये बाध्य करते हैं।" आजकल भारतीय विद्यालयोंमे अंग्रेजी भाषा की पढ़ाई की आवश्यकतासे अधिक महत्व दिया जा रहा है। यदि कोई विद्यार्थी किसी विषय जैसे कृषि, डाक्टरी, व्यापार आदि की शिक्षा प्राप्त करना चाहे तो पहले अंग्रेजी भाषा में पूर्ण योग्यता कर लेना पड़ेगा, और जब उसकी प्रवेशिका में

उत्तीर्ण हो जावेंगे, तबही उपर्युक्तमें से किसी में सम्मलित हो सकेगा।

इधर भारतीय विश्वविद्यालयों की यह दशा है कि प्रति वर्ष परीक्षाओ मे अधिकाधिक कड़ाई की जा रही है। यद्यपि विद्यार्थी अपने अध्यापकों द्वारा अंग्रेज़ी मे कहे हुए व्याख्यानों (Lectures) को कुछ भी नहीं समझ सकते, फिर भी उन्हें छोड़ नहीं सकते। तब वे कुछ न कुछ बहाना कर कक्षाओ से बाहर जा घूमते फिरते हैं। इसका कारण खोजनेसे यही जान पड़ता है जि हमारी शिक्षा का माध्यम एक ऐसी भाषा है जो हमारे स्वभाव और प्रकृति से सर्वथैव विभिन्न है। वर्त्तमान शिक्षा प्रणाली विद्यार्थियोंको इस बातके लिये बाध्य करती है, कि ज्ञान उपार्जन करने के लिये वे उसी विदेशी भाषामे विशेष निपुणता प्राप्त करें। इस क्रित्रम और बलात्कार आदेश का पालन बेचारे विद्यार्थी नहीं कर सकते और फल यह होता है कि फेल होने वाले विद्यार्थियों की संख्या दिन पर दिन बढ़ती ही जाती है।

यह सर्व मान्य है—कि विद्यार्थी का सुख केवल विद्योपार्जन करने में है। धर्म, वैभव, ऐश्वरी आदि जो कुछ हैं विद्यार्थीके लिये जब तक वह विद्या प्राप्त करनेमे लगा हुआ है, सब निरर्थक है। चाहे वह फटे वस्त्र पहन कर जीवन निर्वाह करलेता हो, उसके पास धन न हो और वह अत्यन्त दरिद्र हो, परन्तु वह इनके लिये उस समय तक कुछ चिन्ता नहीं करता जबतक वह विद्यार्थी अवस्था मे है। उसका स्वार्थ एक मात्र विद्या प्रप्ति मे है, और वह अपने इस ध्येयकी पूर्ति करने की चेष्टा मे ऐसा लवलीन रहता है कि इन बातो की ओर उसका ध्यान तक नहीं जाता। और यदि जाता भी हो तो वह उनके लिये कुछ

दुख नहीं मानता । जबतक वह विद्या प्राप्त करने में लगा हुआ है, वह अपने को सर्व सुखी समझता है । उसे कोई शारीरिक व्याधि नही सताती और न अपनी आत्माही को किसी प्रकार दुखी और मलीन करना सच्चा विद्यार्थी जानता है । वह छोटी छोटी वातो पर अपने हृदय को चलायमान नहीं होने देता । उसके पास शयनके लिये चारपाई विछौना आदि न होने पर भारत माता की स्वर्णमयी भूमिकी स्नेह युक्त गोद ही उसके लिये कोमल शय्याका कार्य्य देती है, उसी पर शयन करनेमें वह अपना अहोभाग्य समझता है । सुस्वादु रसयुक्त भोजन होने न होने की उसके लिये कोई चिन्ता नहीं, उदर पोषण के लिये रूखा सूखा भोजन और ठंडा स्वच्छ जलही उसके लिये पर्य्याप्त हैं, वह उन्हींके पानसे तुष्ट हो ईश्वरको धन्यवाद देता है । कहने का तात्पर्य्य यह कि एक सच्चा भारतीय विद्यार्थी इन बातों के होने न होने की कभी चिन्ता नहीं करता और न उसमें किसी प्रकार का दुख ही मानता है । वह अपने हृदय को दृढ़ बनाये रखता है और अपनी कर्त्तव्य परायणतासे कभी विमुख नहीं होता । अपना ज्ञान, ध्यान और सर्वस्व वह सब कुछ विद्या-प्राप्ति ही समझता है, और उसके द्वारा मिलनेवाले आगामी सुखका स्वप्न देखा करता है । उसी आगामी-सुख-स्वप्न की आशासे वह किसी प्रकारके संकटों और कठिनाइयोंसे न घबरा कर दृढ़ता पूर्वक उनको सहन करनेके लिये प्रस्तुत रहता है । उसका विश्वस है कि यह सब उसके भविष्य-जीवन को उच्चतम सुखी बनानेकी प्रथम श्रेणियां हैं ।

फिर प्रश्न हो सकता है जब विद्यार्थियोंको इनमें से किसी वस्तुके होने न होने का दुख अनुभव नहीं होता, तो क्या कारण है कि फिर भी बहुत से विद्यार्थी रोते और अपने भाग्य

पर झींकते दिखाई देते हैं और आज चारों ओर उनका आर्त्तनाद सुनाई पड़ता है ?" उत्तर प्रत्यक्ष है—"इनका अनुभव न होने पर भी विद्यार्थी को सबसे बड़ी जो चिन्ता है और जिनके कारण उनका आर्त्तनाद सुनाई देता है, वह है वार्षिक परीक्षामें उत्तीर्ण न होने का अनुपात ?" जो विद्यार्थी सालभर तक कठिन परिश्रम करके परीक्षा-फल की आशा किया करते है और उसमें उत्तीर्ण होने का काल्पनिक सुखस्वप्न देखते रहते है, शोक कि उपर्युक्त कथनानुसार वर्त्तमान विश्वविद्यालयों की दिन पर दिन की कड़ाई उनकी उस आशालतापर पानी फेर कर उनके भावी सुख-स्वप्न को सदैव के लिये एक दम नष्ट कर देती है। विश्वविद्यालयों की परीक्षाओं मे पास होने वालों की संख्या देखी जाय तो कभी १२, कभी १५ और कभी १६ प्रतिशत् होती है, यदि वहुत बढ़ गई तो २५ होगई अन्यथा उतनेही में इतिश्री है। विद्यार्थियों के लिये दुखी, निराश और उत्साह हीन होने का कारण क्या इससे बढ़कर और कोई हो सकता है? जब सहस्रों भारतीय-नवयुवको के हृदयो में इस प्रकार निराशाकी भयानक चोट प्रतिवर्ष पहुंचाई जाती है, तब कैसे आशा की जा सकती है कि यह लोग अपने भविष्य-जीवन मे अध्ययन के प्रेमी बनेंगे ? यहीं तक हो, सो नहीं,—बेचारे फेल होने वाले लड़के स्कूलो से निकाले जाते हैं और सहस्र प्रयत्न करने पर भी उन्हे कहीं ठिकाना नहीं मिलता, झुण्ड के झुण्ड इधर उधर मारे २ फिरते हैं। जहाँ जाते हैं, वहीं से No vacancy (स्थान नहीं है) की तीव्र ध्वनि अथवा शस्त्र कहिये उनके कलेजे मे वज्राघात करते हैं। उधर उत्तीर्ण हुए विद्यार्थियों की यह दशा है कि स्कूल परिवर्तन करने पर उन्हे भी बड़ी २ कठिनाइयो और दुर्दशाओं का सामना करना पड़ता है। किसी देशका दुर्भाग्य इससे बढ़कर

और क्या हो सकता है कि उसके सहस्रों नवयुवक अपनी सामार्थ्य के बाहर धन और शक्ति व्यय करने और हृदय मे विद्याका प्रेम रखते हुए भी ढूढ़ने पर सरस्वती का मन्दिर न पावे और यदि पावें भी तो द्वार ही से धक्के देकर हटा दिये जॉय ?

परीक्षाओं का ऐसा निराशाजनक फल देखकर, विद्यार्थियों की ऐसी दुर्दशा हो जाने पर भी परीक्षकगण प्रतिवर्ष ऊपरसे यह तुर्रा लगाया करते हैं कि परीक्षार्थियों की अंग्रेज़ी-भाषा की योग्यता शोचनीय है, उसमे उन्हें आरम्भ से ही अधिक परिश्रम करना चाहिये, अथवा यों कहिये कि उन्हें एक विशेष समय में केवल अंग्रेज़ी-भाषा ही की शिक्षा का अध्ययन करना चाहिये। शोक है इस समझ पर जो विद्यार्थियों की कठिनाइयाँ घटानेके स्थान मे और बढ़ा दे, फिर भी इतना कहे बिना हम नहीं रह सकते कि ईश्वर की दया से भारतीय विद्यार्थियों की प्रवीणता इतनी कठिनाइयो के होते हुए भी देखकर दंग रह जाना पड़ता है। यद्यपि उन्हें समता के अधिकार प्राप्त नहीं हैं और उनकी शिक्षा-पद्धति मे भी अनेको दोष हैं, तथापि उन्होंने जिस योग्यता और सम्मान के साथ अन्य भाषाओं की परिक्षाएं पास की हैं, उसकी सराहना इंगलैंड तक के बड़े राजनीतिज्ञों ने की है। परन्तु इस सराहना से यह तात्पर्य्य नहीं है कि इससे हमारे विद्यार्थी फूल उठें वा इसमें उनकी कठिनाइयाँ कुछ कम हो गईं, परन्तु यह कि इनसे दुराग्रही अंधों के नेत्र खुल जाँय। इन प्रशंसाओं से हमारे विद्यार्थियो की दुर्दशा कोई घट थोड़े ही गई अथवा शिक्षा—प्रणाली की नीति—रीति में कोई परिवर्तन थोड़ेही हो गया। वे आज भी शिक्षा की उसी चक्की मे पीसे जाते हैं जिसमें पहिले पीसें जाते थे। उस अस्वाभाविक शिक्षा-पद्धति का एक परिणाम जो हुआ है वह यह है

कि विद्यार्थियों की उत्तरोत्तर शारीरिक हानि हो रही है; आँखो की ज्योति नष्ट होती जाती है, और युवावस्था में ही बुढ़ापे के चिन्ह दृष्टि गोचर होने लगते हैं। अपच, मन्दाग्नि, धातु-क्षीणता, उदरशूल, सिरदर्द, चक्कर, कटिशूल और मस्तिष्क शून्यता, यह फल तो सहज ही मिलते हैं। इसका एक मात्र कारण विदेशी भाषाकी पढ़ाईमें स्वभावके विरुद्ध आवश्यकता से अधिक परिश्रम करना है।

संसार में ऐसा अभागा देश कदाचित ही कोई होगा, जहाँ की शिक्षा-प्रणाली ऐसी अस्वाभाविक, कर्कश और देश कालके विरुद्धहो जैसी भारतवर्षकी है। भारत जैसे दरिद्र और पराश्रित देशमें स्वंतत्र और उन्नत-देशों की शिक्षा प्रणाली का अनुकरण करना कहाँ तक लाभदायक होसक्ता है? यह स्वंय अनुमान किया जासक्ता है। हाँ एक बात इससे अवश्य हुई है और वह यह कि इस विदेशीय-अनुकरणसे शिक्षा ऐसी मंहगी हो गई है कि सर्वसाधारण तो क्या मध्यमश्रेणीके मनुष्य भी उससे लाभ नहीं उठा सक्ते। हमारी सर्कार जिसके हाथ में हमारी शिक्षा की बागडोर है, हमारी आवश्यकता ओंको लक्ष्य में रखकर शिक्षा नहीं देती, किन्तु वह अपनी आवश्यकताओंके लिये जो अति परिमित और बहुत छोटीहैं, शिक्षा देती है; जहाँ वे पूर्णहुई कि सैकड़ों विद्यार्थी इधर उधर मारे २ फिरते हैं और उनको कहीं आश्रय नही मिलता। एक शिल्पकार परिश्रम करके दिन भरमें दो, ढाई रुपया कमा सक्ता है, परन्तु एन्ट्रेन्स पास विद्यार्थीको मासमें दस रुपये भी नहीं मिलते, वे यातो कचहरी में आठ रुपयेके एपरेन्टस अथवा किसी साहबके वहाँ दस रुपयके क्लार्कही हो सक्ते हैं। इससे अधिक उन्हें इस शिक्षासे कुछ लाभ नहीं। इसका एक

मात्र कारण वही विदेशी भाषामें शिक्षा देना है, जिससे हमारे विद्यार्थियोंके ज्ञानका पूर्ण विकाश नहीं होसक्ता। प्रकृतिका नियम भी यही है कि किसी विदेशी भाषा द्वारा शिक्षा पाकर कोई मनुष्य ज्ञान प्राप्त नहीं करसक्ता। बाबू मैथिलीशरण गुप्त अपनी पुस्तक भारत-भारती में लिखते हैं—

'हा आज शिक्षा-मार्ग भी संकीर्ण होकर क्लिष्ट है,
कुलपति सहित उन गुरुकुलाको ध्यान ही अवशिष्ट है।
बिकने लगी विद्या यहाँ यदि शक्ति हो तो क्रय करो,
यदि शुल्क आदि न दे सको तो मूर्ख रहकर ही मरो।
ऐसी असुविधामे कहो हा! दीन कैसे पढ़ सके?
इस ओर वे लाखो अकिंचन किस तरहसे बढ सके?
अधपेट रहकर काटते है मासके दिन तीस वे,
पावे कहाँसे पुस्तके लावे कहाँसे फीस वे?
यह आधुनिक शिक्षा किसी विधि प्राप्त भी कुछ कर सको,
तो लाभ क्या? बस क्लार्क बनकर पेट अपना भर सको।
लिखते रहो जो सिर झुका सुनि अफसरो की गालियाँ,
ते दे सकेगी रातको दो रोटियाँ घर वालियाँ॥
दासत्वके परिणामवाली आज है शिक्षा यहाँ,
है मुख्य दो ही जीविकाएं भृत्यता, भिक्षा यहाँ।
या तो कही बनकर मुहर्रर पेटका पालन करो,
या मिल सके तो भीख मांगो अन्यथा भूखो मरो।
यह साम्प्रतिक शिक्षा हमारे सर्वथा प्रतिकूल है,

हममे हमारे देशके प्रति द्वेष-मतिकी मूल है
हममे विदेशी भाव भरकर वह भुलाती है हमे,
सब स्वास्थ्यका संहार कर के वह रुलाती है हमे ॥
होती नही उससे हमें निज धर्ममे अनुरक्ति है,
होने न देती पूर्वजों पर वह हमारी भक्ति है ।
उसमें विदेशी-भावका ही मोह पूर्ण महत्व है,
फल अन्तमे उसका वही दासत्व है दासत्व है ॥
हा स्वेद बनकर व्यर्थ ही बहता हमारा रक्त है !
हिज्जे तथा उच्चारणोमे नष्ट होता वक्त है ।
फिर शीघ्र ही चश्मा हमारे चक्षु चाहे क्यो नही ?
हम रुग्ण होकर आमरण दुखसे कराहे क्यो नही ?
करके सुशिक्षाकी उपेक्षा पतित हम यो हो रहे,
हो प्राप्त पशुता को स्वयं मनुजत्व अपना खो रहे ।
अहार निद्रा आदिमे नर और पशु क्या सम नही ?
है ज्ञानका वस भेद सो भूले उसे क्या हम नही ?"

वर्त्तमान प्रणालीमें शिक्षा प्रचारसे जो उन्नति है सो तो हुई ही है, परन्तु इससे देशको एक लाभ (लाभ ही कहें और क्या ?) अवश्य हुआ है, और वह यह कि विदेशी वस्तुओं और फैशनका भारतीयोंके हृदयोंमें कोई भूतसा सवार हो गया है । आज योरुपके बाज़ारो की थैलियाँ रुपयेसे भरी हुई हैं, यह भारतमें अंग्रेज़ी शिक्षाके प्रचारका ही फल है । अंग्रेज़ी पढ़ने वाले विद्यार्थियोंकी आवश्यकताएं उनके माता पिताकी आयसे

अधिक बढ़ गई है। चाहे वे छोटे कक्षाओंमें पढ़ते हो अथवा एम-ए, बी-ए के ग्रेज्युएट हो, बिना बिलायती कोट, पेएट, टाई, कालर और हेट बूटके उनका काम ही नहीं चल सक्ता। इस रहन सहनका भारतीय विद्यार्थियोंमे वह प्रचार हुआ है कि यहाँ के स्कूल और कालिजों को विलायतका एक छोटासा नमूना कहें तो अपयुक्त न होगा। एक समय था जब विद्यार्थियोकी बातमे मधुरता टपकती थी, परन्तु आज जो विद्यार्थी कोट पेएट पहन कर कोरे साहब बहादुर हो रहे हैं, अपने अन्य भाइयोसे 'डेम सूअर' कहनेमेही विद्यार्थीपन समझते हैं, ऐसे विद्यार्थी "विद्यार्थी, न होकर अंग्रेज़ी भाषाके स्ट्यूडेएड (Student) हैं। बाजार से चार पैसेकी वस्तु और घरके व्यवहारका कोई पदार्थ लाना सभ्यताके बाहर समझते है । माता, पिता और गुरुका अभिवन्दन उनके लिये कोई वस्तु ही नही। यदि कभी कोई पुराने स्वभावके पिता साधारण मिर्जई व फतुही पहन कर बड़े होस्टलमे रहने वाले किसी फैशनेबिल अपने पुत्र के पास पहुंच जाते हैं, तो उन्हें देखने मात्रसे बाबू साहब क्रोध के कारण लाल हो जाते हैं और किसी मित्रके पूछने पर कि "यह कौन हैं" ? उत्तरमे कहेंगे—"यह मेरा नौकर था"।

अब समयकी बात लीजिये। आजकल विद्यार्थी समय का जैसा उपयोग करते हैं, वह सब ही जानते हैं। विशेष क्या? उनका समय या तो बाल सम्भालनेमे अथवा संध्याके समय मित्रोंके साथ चौककी सैर करनेमे जाता है। होस्टलमे बैठे हुए गपशप उड़ाना औ इधर उधर की व्यर्थ बाते करना तो एक साधारणसा नियम है। खान-पान और आचार विचारमें भी वे लोग योरुप वालोसे कुछ नहीं हैं।

अभी कुछ दिवस हुए में एक ऐसे कालिजके जो भारतवर्षमें आदर्श

भारतीय विद्यार्थी राष्ट्रीयतासे सर्वथैव अनविज्ञ रहते हैं। वे प्रत्येक बातमें केवल चिलायत वालोंका अनुकरण करना मात्र जानते हैं। परन्तु यदि आप विलायतमें जाकर देखें तो वहाँके समस्त नर नारी अपने देशके रीति और ढङ्गके अनुसार ही कपड़े पहने मिलेंगे, धोती प्रसाद वहाँ कोई नहीं मिलेगा। इसका कारण यह है कि उन्हें अपनी पोशाकका अभिमान है, वे समझते हैं कि उनकी पोशाक सबसे बढ़िया है। अब थोड़ा भारतीय विद्यार्थियोंको देखिये, उनमे भारतीयताका कितना भाव है? कोट, पेएट और हेट डाटकर जैण्टिलमैंन Gentleman (सभ्य नहीं) बनने ही में वे अपने को धन्य मानते और उनके समाजमे आदर पानेका निरर्थक उद्योग करते हैं, जिनका वे अनुकरण करते हैं। परन्तु क्या उनके समाजमे उन्हें कोई स्थान मिलता है? नही, किन्तु उलटे घृणा और तिरस्कारकी दृष्टिसे देखे जाते हैं।

जहाँ प्राचीन समयमे विद्यार्थियोंका मस्तिष्क ब्रह्मचर्य्यके तेजसे दमकता था और उनके शरीर, भुजाएं और वक्षःस्थल सुदृढ़, विशाल और हृष्ट पुष्ट होते थे, वहाँ अर्वाचीन विद्यार्थियोंके चेहरों पर वेस्लीन और पाउडर दृष्टिगोचर होता है और आखें निस्तेज, भुजाए शिथिल और वक्षःस्थल तथा शरीर पतले दुबले और निर्बल देख पड़ते है। सच्छीलता, चारित्र्य, आत्म-विश्वास, आत्म-बलि, दृढ़ इच्छा-शक्ति, इन्द्रिय-संयम, स्वदेशानुराग, जातीयता, स्वावलम्बन और निःस्वार्थता तथा

कालिज समझा जाता है एक बोडिंगमें कुछ दिनोंके लिये ठहरा हुआ था। वहाँके छात्रोंको समयका जैसा व्यवहार और सदुपयोग करते देखा, उससे मुझे दग रह जाना पडा। उनका समय भी अधिकता ऐसे ही व्यतीत होता था जैसा ऊपरके— कुछ अशमे लिखा है अर्थात सब बातें आदि करते थे।

आत्मत्यागका इनमें लेशमात्र भी नहीं है। विदेशी फैशन और विदेशी भाव, आचार-विचार और विदेशी सम्भाषणके ऐसे दास (गुलाम) हो रहे हैं कि साधारण बातोमे भी यह अपना वह भाव दर्शाए बिना नहीं रह सक्ते, छोटी २ बातोमें अंग्रेज़ी शब्द मिलाकर भाषाको खिचड़ी बनाकर बोले बिना वे अपने बड़प्पनके बाहर समझते है ! इनके कमरोमे या तो वेश्याओं, विलायती रमणियोके अथवा नग्न स्त्री पुरुषोके फोटो तथा अन्य कुत्सित और गन्दी तसवीरे लगी मिलेंगी। रामचन्द्र, कृष्ण, अर्जुन, भीष्म, प्रताप, शिवाजी, सरोजनी, गायत्री, मालवीय, तिलक- गांधी तथा अन्य ऐसे ही उत्तम २ चित्रोंका उनके यहाँ दर्शन तक न होगा।

उनमे कोई जातीय-भाव भी पाया जाता है अथवा नहीं और वे अपने कर्त्तव्यका कितना पालन करते है, उसके करनेमे उन्हें कहाँतक स्वतन्त्रता प्राप्त है”–यह आगे चलकर लिखेगे, यहाँ पर हम विद्यार्थियो और अध्यापकोके पारस्परिक व्यवहार, वर्त्ताव और आधुनिक सम्बन्धका थोड़ासा वर्णन कर देना अच्छा समझते है।

एक ओर विद्यार्थियों कि यह दुर्दशा हो रही है, दूसरी ओर बहुतसे भारतवासियोंका यह हाल है कि उनकी शिक्षाके कार्य्यको वे इतना सरल समझे हुए है कि कोई मनुष्य जिसन थोड़ासा भी पढ़ लिखलिया है, उस कार्य्यको चलानेयोग्य समझ कर मास्टर बन अथवा बना दिया जाता है। जिस मनुष्यको कहीं कोई जीविका न मिले, वह बड़ी सरलता पूर्वक आकर मास्टर हो सक्ता है, अथवा स्वयं लड़के बटोरकर पढ़ाने लगता है। परन्तु इनमेंसे कितने ऐसे निकलेंगे जो अपने अध्यापकके अधिकार, कर्त्तव्य और उत्तरदायित्वको समझते होंगे ?

शिक्षा प्रचारका संचालन करने में अच्छे २ और योग्य, विद्वान अध्यायकाके स्थान में उन मनुष्योंको नियत किया जाता है, जो छोटे २ वेतन लेकर काम करने पर तयार हो जाते हैं, चाहे वे अपने कर्त्तव्य का पालन करही न पाते हों। इसका फल जो होता है वह प्रत्यक्षही है—ऐसी दशामें डूब जानेकी अपेक्षा बचे रहनेकी बहुत कम सम्भावना है। क्योंकि वे लोग विद्यार्थी-जविनके यथार्थ उद्देश और उनके भविष्यत् कार्य्यों पर, जा उन्हें विद्यार्थी जीवनके पश्चात करने हैं, तो ध्यान देतेही नहीं, विद्यार्थियोंको केवल यंत्र व मशीन बनाकर काम लेनां आरम्भ कर देते हैं। उनकी इच्छा रहती है कि विद्यार्थियोंको तोतेकी भाँति रटाकर उनसे परिक्षा पास करा लियाकरें। बहुत हुआ तो कुंजियों और बाजारू नोटोंकी जो भी ऐसे ही लोगोंके बनाए होते हैं, सहायता ले लेते हैं, जिन्हें रटकर विद्यार्थियोंके मस्तिष्क बिगड़ कर बुद्धि निस्तेजहो जाती है। ऐसी अवस्था में विद्यार्थी-जीवनके उद्देशोंके सफल होने की आशा कहाँ तक है-पाठक स्वयं समझले।

मनुष्यका बनना बिगड़ना उसकी शिक्षा पर निर्भर है। बाल्यकाल ऐसा समय है, जब वह विद्यार्थी जीवनमें रहकर अपने गुरुसे शिक्षा प्राप्त करता है। अध्यापक चाहे तो उसे सम्भाल सक्ता है, और उसका बिगड़ना भी उसीके हाथ में है। वर्त्तमान-कालीन अध्यापक इस बातका ध्यान नहीं रखते। उन्हें विद्यार्थियोंकी शारीरिक मानसिक अध्यात्मिक और नैतिक उन्नतिका बिल्कुल विचार नहीं होता। शिक्षकोंको इस बातका बोधतक नहीं होता कि उनके सामने एक ऐसा बाल-समूह उपस्थित है जिनके शुद्ध हृदय पर संसारके कुत्सित विचारोंका प्रभाव अभी नहीं पड़ा है, जो किसी प्रकार छल

कपट करना अभी नहीं जानते जिनका हृदय सच्चे शुद्ध प्रेमका भण्डार है और पराएहितके लिये अपने जीवनका निछावर कर देनेके लिये सदा तयार रहता है जिनके मुखकी शोभा और पवित्रता और जिनके अपूर्व कान्ति और नेत्रोंकी निर्मल आभा बतलाती है कि वे ब्रह्मचर्य्य आदि गुणोंसे भूषित हैं। नवविकसित कमलकी भाँति जो आगे चलकर इस संसार—उद्यानमें कभी खिलेंगे।

विनाशकारी सान्सारिक-हवाने जिन्हें अभी स्पर्श तक नहीं किया है, दुष्ट, कठोर और दुराचारी मनुष्योंने जिन्हो का दर्शन भी नहीं किया है, जिनकी पवित्र मूर्ति को देखकर प्रत्येक मनुष्य मुदित हो उठेगा और उसके हृदय मे उनके प्रति आल्हाद और प्रेम का श्रोत बहने लगेगा, देश की आशा जिन पर पूर्णतः निर्भर है, और जो मातृभूमि की भविष्य आशालताके पुष्प और फल है—ऐसे शुद्ध, सरल, स्वदेश-सेवक और भावी बालकों का निःस्पर्श पुष्पकी नाई विकसित होकर खिल उठना उन्हीं के ऊपर निर्भर है।

शिक्षकों को वेतन मिलता है, इसके वदले मे ज्ञान का जो भण्डार वे अपने छात्रो में भरकर उनके जीवन को उच्च और महान बना सकते हैं, इसका वे कभी विचार भी नहीं करते। विद्यार्थी के लिये अध्यापक ईश्वर—स्वरूप और आदर्श है। उसके आचरण, रहन सहन, चाल, व्यवहार और रीति वर्तावको देखकर विद्यार्थी उसीके अनुसार बननेका प्रयत्न करते हैं, इसका भान तक उन्हे नहीं होता, वे इन बातो को नहीं समझते, तब भला अपने कर्त्तव्य पालन की उनसे क्या आशाकी जाय?

इन सब बातो को दृष्टिगत करके कहा जा सकता है कि साधारण अथवा उच्चसे उच्च पदवी प्राप्त मनुष्यो और अध्यापक

में कितना अन्तर है ? इस बात पर यदि ध्यान पूर्वक थोड़ा भी बिचार किया जाय तो पता लगेगा कि शिक्षक के लिये संसार में अपने कर्त्तव्य पालन करने का जैसा अच्छा साधन और अवसर है, वैसा किसी अन्य मनुष्य को नहीं है।

खेद है कि वर्त्तमान कालीन अध्यापक फिर भी अपने इस उत्तरदायित्वपूर्ण अवसर का किंचितमात्र भी उपयोग नहीं कर पाते और न अपने कर्त्तव्य का ही पालन करते है। परन्तु इसमे अकेले अध्यापक का ही दोष हो सो नहीं, विद्यार्थी भी अपने कर्त्तव्यपालन और कार्यक्रम में बड़ी त्रुटी और भूल करते हैं। अतः दोनोही इसके लिये दोषी हैं। न तो अध्यापक ही विद्यार्थियो को अपना पुत्र मानते है, और न विद्यार्थी ही अपने अध्यापक को अपना गुरू।

आजकल 'अध्यापक होना', अपनी दुर्गति आप कराना है, परन्तु इसमें अधिकांश दोष अध्यापको का ही है। अध्यापक लोग अपने विद्यार्थियो के साथ जैसा करना चाहिये, वैसा प्रेम नहीं करते। उनके साथ नादिरशाही करना और छोटी २ बातों पर उन्हें दंड देना वे अपना मुख्य कर्त्तव्य समझते हैं। यही नहीं, कतिपय शिक्षक ऐसे भी होते है, जो अकारणही अथवा किसी विशेष कारण वश अपने शिष्यो से शत्रुता का वर्त्ताव करने लगते है। इसके स्थानमे कि वे विद्यार्थियों के उन दोष और कारणो को अपनी योग्यता द्वारा दूरकर उन्हे सच्चा विद्यार्थी बनावें, उन्हें अपना शत्रु समझ कर उनके साथ अमानुषिक व्यवहार करने मे ही वे अपना गुरुत्व और अध्यापक पद की सार्थकता समझते है। वैसे तो सदैव ही विद्यार्थियों के साथ वे अनबन रखते है, किन्तु वार्षिक परीक्षाओं मे उसका बदला पूरा रूपसे चुका लेते हैं, अर्थात् बेचारे विद्यार्थियो को परीक्षा

में फेलकर उनके काम का उन्हें उचित पुरस्कार प्रदान करते हैं। इतना ही नहीं, जब अध्यापको और शिक्षकों में परस्पर बिगाड़ और मन मोटाव हो जाता है, तो..."एक करे अपराध कोउ, कोउपाव फल भोग" के अनुसार उस विभिन्नता का फल भी बेचारे विद्यार्थियों को ही भुगतना पड़ता है, अर्थात् "अच्छा परीक्षा पर देखा जायगा, देखेंगे कैसे अपने लड़को को पास करवाते हो" कहकर अध्यापक तो छोड़ दिया जाता है और अवसर पर दीन हीन विद्यार्थियो को फेलकर उनकी दुर्गति बीच में की जाती है।

जब अध्यापकों की यह दशा है, तब भला क्या आशा की जाय कि उनके पढ़ाए बालक आत्मगौरव के लिये मिट जाने वाले, ऊँचे आदर्शों की ओर दौड़ने वाले और देश-प्रेम में रंग जाने वाले होंगे? जिन बालको मे बड़प्पन की आभा जान पड़ती है, जिनसे यह विश्वास किया जाता है कि आगे चल कर अपने कुल, अपनी जाति और अपने समाज और देश के मुख को उज्वल करने वाले और उसके गौरव को बनाए रखने वाले रत्न निकलेंगे, आजकल की स्कूली पढ़ाई और ऐसे दुर्मत मास्टरों के उगले हुए विषको पीकर उनका तेज बुझ जाता है, और हमारी समस्त आशालता पर पाला पड़ जाता है। अध्यापकों में से अधिकांश ऐसे पाये जाते हैं, जो विद्यार्थियों के सामने अश्लील और अभाषणीय बातो के कहने में तनिक भी संकोच नहीं करते, और उनका वर्ताव बालकों के साथ में ऐसा होता है कि जिसके लिखने में लज्जा भी लज्जित और संकुचित होती है। जो बच्चे स्वभावतः सीधे, सरल, सुशील और सच्चरित्र होते हैं, हम दृढ़तापूर्वक कह सकते हैं, कि स्कूल और होस्टल मे अर्वाचीन मास्टरों के साथ रहकर वे निर्लज्ज, झूठे, कपटी, दुश्चरित्र

निर्दयी, कुमार्गी, धृष्ट, चोर और दुराचारी बन जाते हैं। कारण स्पष्ट है—'अध्यापकों का बर्त्ताव ही उनके साथ ऐसा होता है जो बालकों में इन दुर्गणों को भर देता है। अध्यापक नहीं चाहते कि बच्चे सच बोले और सदाचारी बनें। यदि कोई बालक नैतिकबल में कुछ गिर जाता है, तो पुचकार कर उठाने की अपेक्षा दंडरूप यमराज के द्वारा वे उन्हे और भी गिरा देते हैं। उनका विश्वास है कि दंड देकर बालको के दोष छुड़ाए जा सकते हैं और शारीरिक कष्टो से उनके मानसिक अवगुण दूर किये जा सकते हैं। यही तो भारी भूल है। लड़के दंड के स्थान मे प्रेम और सहानुभूति द्वारा सहज ही सुधारे जा सकते हैं। जो मास्टर लड़को को दंड देते हैं, वे उन्हें सुधारते नहीं, उलटा बिगाड़ते हैं।

रही शिक्षा, वह भी दंड द्वारा भले प्रकार नहीं दी जा सकती। जबतक शारीरिक दंड देना बन्द नहीं किया जायगा, तब तक उत्तम और आदर्श शिक्षा देने मे सफलता कदापि प्राप्त नहीं होगी। जो शिक्षक केवल अपनी शक्ति और अधिकार की ही चिन्ता मे डूबे रहते हैं, वे इस बातका अनुभव नहीं करते। वे विद्यार्थियो को पीटने ही मे अपनी सर्थकता समझते हैं। फल यह होता है कि विद्यार्थी भी ऐसे शिक्षकों से स्वतंत्रता पूर्वक बातें नहीं करते, उनके प्रति मनमे घृणा, द्वेष और विद्रोह के भाव रखने लगते हैं और समय पाने पर उसका बदला लेने में भी नहीं चूकते।

प्रत्युत इसके, जबतक विद्यार्थियों को यह अवसर नहीं दिया जायगा कि वे अपने शिक्षकके पास स्वतंत्रता और स्वाभाविकताके साथ सम्भाषण और व्यवहार कर सकें, तब तक शिक्षाका मुख्य उद्देश सफल नहीं हो सक्ता। यदि कोई विद्यार्थी

त्रुटि करे, तो अध्यापकको यह उचित नहीं है कि अपने असभ्य वर्त्ताव और बल प्रयोगसे वह उसके इस स्वभावको दृढ़तर बना दे, वरन् उसे प्रेमपूर्वक दूर करके उसमें जो ईश्वर-प्रदत्त स्वाभाविक बुद्धि और विचार-शक्ति छिपी है, उसको विकसित करने और ज्ञानका मार्ग दिखलानेका ही उसे निरन्तर उद्योग करते रहना चाहिये।

यदि शिक्षक दण्डके स्थानमें विद्यार्थियोंके प्रति प्रेम, सम्मान और विश्वाससे कार्य्य लें और उनके दोषपूर्ण कार्य्यों को दूर करनेके निमित्त उन्हें अपने सदाचरणमय उदाहरण और आदर्श दिखलाया करें, तो सम्भव नहीं कि विद्यार्थियोंमें कोई दुर्गुण और अयोग्यता रह जाय। विद्यार्थियोंके मनमे इस बातका पूर्ण विश्वास जम जाना चाहिये कि शिक्षिक उनके लिये यथाशक्ति सब कुछ कर रहे हैं, उनके शब्द और आदेशों को मानते रहनेमे कोई हानि न होगी, और स्वाभिमान और आत्म-सम्मानकी रक्षा और वृद्धि करनेके लिये शिक्षकोंके प्रति अन्तरङ्ग पूज्यभाव रखना परमावश्यक है। यह सम्बन्ध तभी स्थिर रह सकेगा, जब शिक्षक यह जाननेका प्रयत्न करें कि विद्यार्थीमें किन विषयों पर स्वभाविक प्रेम हैं। कुछ कालमें दोनोंके पारस्परिक प्रेम, विश्वास और सहानुभूति बढ़नेसे दण्डकी आवश्यकता झूठी ज्ञात होने लगेगी।

बच्चे जन्मसे ही कुछ शक्तियाँ, योग्यताएं और स्वाभाविक गुण लेकर उत्पन्न होते हैं, इन्हींकी प्राकृतिक वृद्धि कर देना शिक्षकोका काम है। शिक्षकोंको यह जानना चाहिये कि अज्ञान का होना एक बात हैं और जान बूझकर धूर्त्तता करना दूसरी बात। इच्छा रखकर धूर्त्तता करने वाले विद्यार्थी बहुत कम, और स्वाभाविक अज्ञानी ही अधिक हुआ करते हैं। परन्तु यदि

उचित रीतिसे सम्बन्ध आरम्भ किया जाय, तो बड़े हठी और धृष्ट लड़के भी शिक्षक पर सच्चा प्रेम करने लगते हैं। प्रत्युत भूठ बोलना, कटुवाक्य कहना और धृष्ट तथा दुराचारी हो जाना—यह तो विद्यार्थियोंकी आधुनिक शिक्षाके साधारण और प्रत्यक्ष फल हैं।

उदाहरणार्थ हमारी प्राचीन पाठशालाओंको लीजिये, और देखिये उनका क्या क्रम, नियम था? आज भी प्राचीन ढंगकी पाठशालाओंमें विद्यार्थी और अध्यापकोंमें वह प्रेमपूर्ण वर्त्ताव होता है जिसे देखकर चकित हो जाना पड़ता है। विद्यार्थी आते और जाते समय अपने गुरुके चरणोंमे भक्ति पूर्वक मस्तिष्क नवाते और उनका अभिवन्दन करते हैं। उन्हें ईश्वरवत् मान कर सदैव प्रेमपूर्वक उनकी पूजा करते हैं। तिद्यार्थियोंका साधारण वेष और छल कपट रहित प्रेमपूर्ण पारस्परिक व्यवहार देखते ही बनता है। वे अत्यन्त सीधे और सरल होते है, न तो वे छल करना ही जानते हैं, और न उन्होंने भूठ बोलना ओर धोखा देना ही सीखा है। वेष उनका इतना सरल और साधारण होता है जो देखते बनता है। उनका आपसका वर्त्ताव सराहनीय और अनुकरणीय है। वे अपने गुरु पर विश्वास, श्रद्धा, भक्ति और प्रेम रखते हैं। गुरु भी उनके साथ पुत्रवत् व्यवहार करते हैं। वे विद्यार्थियोंके सच्चे माता पिता और हितचिन्तक हैं। अपने किसी शिष्यका कष्ट नही देख सक्ते। यदि किसी छात्रको कोई दुख होता है, तो उनका हृदय द्रवीभूत हो जाता है।

साधारणतः जिन आदर्शों और जिस पद्धति पर ऐसी पाठशालाओंमें शिक्षादी जाती है, वह अंग्रेज़ी स्कूलोंमें देखनेमें नहीं आती। नीति-शिक्षाके विषयमें स्कूलोंमें जिस उदासीनता

से कार्य्य किया जाता है, उसे देखकर बड़ा खेद होता है। बालकोंके कोमल हृदयों पर जो संस्कार आरम्भसे डाल दिये जाते हैं, वे उनपर अपना पूर्ण प्रभाव जमा लेते हैं, परन्तु छोटे बच्चोंमें वह शक्ति और बुद्धि अभी कहाँ कि वे गूढ़ नीतिको समझ सकें? उधर अध्यापकोंकी यह दशा है कि केवल पुस्तकों के रटवा देनेमें ही अपने कर्त्तव्य की इति श्री समझे हुए हैं। फल यह होता है कि बेचारे बालक नैतिक-तत्वको नहीं समझ पाते, अतः उसमें कोरे रह जाते हैं। परन्तु इसमें अध्यापकोंका उतना दोष नहीं है। वर्त्तमान शिक्षा-प्रणाली ही ऐसी बिगड़ी हुई है कि विद्यार्थियों को उससे कोई लाभ नहीं होता। अन्य विषय ही पढ़नेके लिये इतने पड़े हैं कि उन्हें उन्हींसे अवकाश नहीं। एक विषय भी पूर्णतः समाप्त वहीं होने पाता कि टन टन घण्टा बजा, और विद्यार्थियोंको वह विषय वहीं छोड़ कर दूसरे विषयको उठाना पड़ता है। ऐसी दशामें भला नीति-शिक्षाके लिये फिर कहाँसे समय आवे?

संसारमें इतने प्रलोभन विद्यमान हैं, जो विद्यार्थी अथवा किसीको भी अच्छे मार्गसे हटाकर बुरेकी ओर घसीट ले जा सकते हैं। साथ ही ऐसी शक्तियों की भी कमी नहीं है जो उसे उस ओर न ढकेल देवे। अतः इसमें बड़ी सावधानी रखने की आवश्यकता है। स्कूलमें विद्यार्थी केवल कुछ घण्टोंके लिये ही जाता है, शेष समयमें वह घर पर ही रहता है; जो बातें वह स्कूलमें सीखता है, "माता, पिता, भाई बहिन तथा अन्य स्वजनोंके साथ प्रतिक्षणके व्यवहार और वर्त्तावमें वह उनका प्रयोग कहाँतक करता है" इस बात पर दृष्टि रखे बिना सफलता प्राप्त होना कठिन ही है। "विद्यार्थी नम्रता से बोलना सीखें, माता, पिता, गुरु तथा अन्य पूज्यजनोंकी आज्ञा पालन

करना और उनका सम्मान करना वह अपना धर्म्म समझें, सत्य-भाषण का अभ्यास करें; दुर्गुणोंसे बचें; परस्पर प्रेम एवं सहानुभूतिका व्यवहार करें, उनके हृदयमें समाजसेवाका भाव उदय और देश-प्रेमकी जागृति उत्पन्न हो, और अपने किसी भी दुखित भ्राताको देखकर सदैव उसकी सेवाके लिये तयार रहें" इत्यादि २ अनेक गुण है, जिनका अभ्यास विद्यार्थियों को यथोचित रीतिसे कराना चाहिये। अच्छा तो यह हो कि इन्हे उनकी शिक्षा प्रणालीका एक अङ्ग बनाकर पाठ्यक्रम द्वारा इनकी शिक्षा उन्हे दी जाया करे। परन्तु अंग्रेज़ी स्कूलोसे ऐसी आशा करना दुराशामात्र और काल्पनिक है, साथही 'मनमोदक नहिं भूख बुझाही' वाली कहावतको चरित्तार्थ करना है। क्या कभी ऐसा भी समय आवेगा, जब हम अपने बालकोको इन गुणोसे विभूषित देखेंगे? देखे कौन विद्यालय है जो भारतीयोंकी इस अभिलाषाको परिपूर्ण कर अपने जातीय-प्रेमका परिचय देते हैं?

अब राष्ट्रीयताको लीजिये—

इसके विषय मे हमे यही कहना है और जो प्रत्यक्ष है कि जब देशके स्कूल और कालिजोंमे नीति-शिक्षाका ही कोई प्रबन्ध नहीं है, तब भारत जैसे देशमें जो नितान्त परतंत्र और पराश्रित है, विद्यार्थियोमे राष्ट्रीयताका प्रचार कहाँतक किया जा सक्ता हैं अथवा यों कह लीजिये कि वे कहाँ तक देशहितैषी हो सक्ते हैं? और जिसे आप स्वयं समझ सक्ते है।

भारतीय विद्यार्थियो की दशा शोचनीय है। एक तो उनकी शिक्षा विदेशियोंके हाथमे है, दूसरे जिस प्रकारसे शिक्षा दी जानी चाहिये उसका भाव ही विपरीति है—यह बात हम बतला ही चुके हैं। इसके अतिरिक्त अन्य देशोंमे विद्यार्थियोंको शिक्षा

देनेकी जो रीति काममे लाई जाती है, उनमेसे बहुतोंका भारतीय विद्यार्थियोंके लिये अभाव है। अन्य सब देशोमे नागरिक बनानेकी शिक्षा देना एक अन्शमें स्कूल तथा कालेजका मुख्य उद्देश समझा जाता है। परन्तु भारतमे क्या? कौन नहीं जानता कि राष्ट्रीय सेवाके ऊँचे कक्षा भारतीय विद्यार्थियोंके लिये बन्द हैं? शारीरिक उन्नति-सम्बन्धी शिक्षा भी सन्देह भरी दृष्टिसे देखी जाती है। क्या भारतीय स्कूल और कालिजोंमे बालचर (Boy Scouting) आदि की शिक्षा और सिखलाये जानेकी आवश्यकता नही है? यदि, तो वह कहॉ है? काउन्सिलमे स्वीकृत हो जाने पर भी इस सम्बन्धमे अधिकारियोंकी एक विशेष प्रकारकी उदासीनता दृष्टिगोचर होती है, जिससे उन जातीय संस्थाओमे भी जिनमे सर्कारी एक पैसा भी व्यय नहीं होता, इस प्रकार की उपयोगी शिक्षा नहीं दी जाने देती। तात्पर्य्य यह कि भारतमे 'देश-प्रेम' शब्द ही शासकों की दृष्टि में कुछ दूसरा है, और देखनेमे आता है यहॉ पर ऐसे विद्यार्थियोके जीवन और कार्य्यो पर जो अपने देश और नेताओंके प्रति भक्ति प्रकट करते हे, भविष्यमे देखभाल रखी जाती है। ऐसी दशामे जब इतनी कठिनाइयॉ और बाधाएँ चारो ओरसे उन्हे घेरे हुए है, विद्यार्थी क्या देश हितैषी हो सक्ते? प्रथम तो उनके हृदयमे "राष्ट्रीयता" का भाव उत्पन्न ही नही होता और यदि कभी किसी विद्यार्थीके हृदयमे दूसरेके सुननेसे देश प्रेम की लहर लहराने भी लगी, तो उसके मार्गमे बाधाएँ उपस्थित हो जानी है। हम चाहते हैं कि हमारे विद्यार्थी देश-भक्ति रूपी अमृतजलसे अवगाहन करके भारतमाताका माथा ऊँचा करें, अपने भावोको विकसित करे, उनका सदुपयोग करें और अपनी हीनता प्रकट न होने दे, साराश हमारे भावी नागरिक अपनी

पाठशाला रूपी छोटी सी सृष्टिमें ही देशभक्ति रूपी पौधेकी जड़ जमावें और समय आने पर कर्त्तव्यक्षेत्रमें प्रति गमन करें। परन्तु क्या हमारी यह चिरवांच्छित अभिलाषा पूर्ण होती है? 'नहीं' के अतिरिक्त इसका और क्या उत्तर हो सक्ता है?

प्रंसिपिल, प्रोफेसर, इन्सपेक्टर और डाइरेक्टर आफ पबलिक इन्सट्रक्शन (Director of public Instruction) का कहना है "कि विद्यार्थी का काम केवल पढ़ना है, उसे राष्ट्रीयता से कोई सम्बन्ध नहीं।" जब कहीं नगर की किसी सभा में किसी महान पुरुषका व्याख्यान होता है तो हेडमास्टर साहब बड़े गौरवान्वित होकर आज्ञा प्रकाशित करते हैं कि 'आजके व्याख्यानमें कोई न जाय, यदि कोई लड़का गया तो उस पर फाइन (जुर्माना) किया जायगा अथवा उसे स्कूलसे निकाल दिया जायगा।" हा, जहाँ विद्यालयोंमें ऐसे २ आर्डर प्रकट किये जाते हैं, वहाँ क्या आशाकी जाय कि राष्ट्रीयता जागृत करनेका भी कभी कोई साधन होगा? इससे विद्यार्थी दासानुदास बने रहनेके अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सक्ते।

यहाँ पर हमें भारतमाताके सच्चे सपूत रवीन्द्र बाबू के उस शान्तिनिकेतन का स्मरण हो आता है, जहाँके अध्यापकों और विद्यार्थियोंमें स्वातंत्र्य प्रेमका पूर्ण आदर है। यदि वहाँ यह भाव न हों तो शान्ति निकेतन 'शान्ति निकेतन' न रहे, क्योंकि स्वतंत्रता ही शान्तिका सबसे बड़ा साधन है। वहाँ पर विद्यार्थियोंको इसबातकी स्वतंत्रता है कि अपने कामोंको वे आप सुलझा लें, देशकी समस्याओं पर अध्यापकोंके साथ मिल कर पूर्ण वार्त्तालाप करें और अपनी सम्मतियोंको बिना किसी भयके प्रकट करें। शिक्षकों और विद्यार्थियोंमे वहाँ मित्र-वत् सम्बन्ध है। न तो शिक्षक ही अपने शिष्योंको लोहे व

काठके टुकड़े समझते, हैं, जिन्हें ठोक पीट कर ठीक किया जाय और न विद्यार्थी ही उन्हें हौआ मानते है। शान्ति निकेतनका वायुमण्डल स्वातंत्र्य, राष्ट्रीयता, और स्वदेश-प्रेमसे परिपूर्ण है। साधारणतः स्कूलोमे चाहे वे सरकारी हो अथवा एडेड (Aided) यदि कोई विद्यार्थी 'स्वराज्य' अथवा 'बन्देमातरम्' शब्दका भी उच्चारण करे तो उसका यथायोग्य दण्ड रूप पूरा पुरस्कार भी पावेगा, और वहाँ पर यथाशक्ति स्वतंत्र विचारोंके दवानेकी भरपूर चेष्टा करके, उन्हे पूरा कारागार बनाया जाता है। परन्तु शान्तिनिकेतन मे यह कुछ नहीं है, वहाँ विद्यार्थियोके हृदयोंमें स्वतंत्रता, राष्ट्रीयता और जन्मभूमिके प्रति सच्ची भक्ति तथा स्वदेश प्रेमका महत्व कूट २ कर भरा जाता है। सत्याग्रह आश्रम तथा हमारे अन्य राष्ट्रीय विद्यालयों मे भी यही बात है। वहाँका जलवायु भी स्वतंत्रता से पूर्ण है। और विद्यार्थी स्वच्छन्दता पूर्वक देशकी समस्याओंको हल कर सक्ते हैं।

इससे स्पष्ट है कि हमारे शासकोंकी दृष्टिमे यह विश्वास जम गया है कि स्वराज्य व देश भक्ति एकप्रकारकी अराजकता है और इसी विचारसे विद्यार्थियोको राष्ट्रीयतासे रोकनेमें वे अपवी शक्तियोंका पूर्ण प्रयोग करते हैं। विपरीत इसके अन्य देशोंके नवयुवक विद्यार्थियोंकी राष्ट्रीयता अवस्था कैसी है उसका भी थोड़ा सा दिग्दर्शन कराना हम उचित समझते हैं,

उदाहरण के लिये अमेरिका को ही ले लीजिये। भारतवर्ष के समान वहाँ के विद्यार्थी अधिकारियों द्वारा स्वराज्य की हवा से बचाये नहीं जाते, क्योंकि उनका विश्वास है कि यदि बच्चों को स्वदेश प्रेम और स्वराज्य की शिक्षा न दी जायगी, तो संसार में वे कुछ कर नहीं सकेंगे। अमेरिकन विद्यार्थियों को स्वराज्य

की शिक्षा देने के लिये एक स्वाधीन संस्था बनाई गई है, जो न्यूयार्क नगर से एक मील दूर फ्रीवील नामक गाँव में है। इसमें चौदह से अठारह वर्ष तक की अवस्था के लड़के लड़कियाँ सम्मलित की जाती हैं, और उन्हें पूर्ण रूप से स्वराज्य की शिक्षा कार्य्यों द्वारा (Practical) दी जाती है। उनके कार्यों में उन्हें सम्मति देने के लिये राज्य की ओर से कई अफसर नौकर रख दिये गए हैं, जिनसे विना किसी निर्भीकता के बच्चे अपनी कठिनाई को सरल करा सकते हैं। उन्होंने उन्हें केवल किताबें पढ़ानी ही पर्य्याप्त नहीं समझा, वरन् जिस प्रकार पानी में पैर देने से ही तैरना आएगा, उसी प्रकार उन्हें स्वतंत्र स्वराज्य देकर उसमे योग्य बनाया जाता है*।

प्रत्युत इसके यहाँ पर विद्यार्थियोंको देशके नेताओंके दर्शन तकसे इस कारण रोका जाता है कि कहीं वे स्वराज्य-प्रेमी न बन जाँय। विद्यार्थी कांग्रेस और होमरूलके सभासद नहीं बन सक्ते; बनना तो एक ओर, देखने तक नहीं जा सक्ते। स्वराज्य प्रचार करने वाली सभाओं पर चोरों और डाकुओं जैसी कड़ी दृष्टि केवल इस लिये रखी जाती है कि वहाँ कोई विद्यार्थी तो नहीं जाता। इससे अधिक खेदजनक और दुख-दायी बात किसी देशके लिये और क्या हो सक्ती है कि वहाँके विद्यार्थियों को इस प्रकार देश सेवा करनेसे बलात्कार रोका जाय?

---

* देहलीसे निकलने वाले हिन्दी समाचार पत्रके २४ सितम्बर १९१८ के अकमें "स्वराज्यकी शिक्षा" शीर्षकसे यह लेख निकला था, उसीका सार भाग यहाँ लिखा गया है, जो पाठक उसे पूर्णत. देखना चाहे, तो उस अकको कार्य्यालयसे मँगाकर पढे। हाँ लेख बडा मार्मिक भावपूर्ण और पढने योग्य है, हमारा मत है कि प्रत्येक देश सेवी मनुष्यको वह लेख पढना चाहिये।

तीसवीं जून और एक जुलाई सन् १६१७ को वम्बई शिक्षा परिषद् की हुई सभा (meeting) मे सर नारायण गणेश चन्द्रवरकर महोदयने सभापतिके पद पर आरूढ़ होकर इस विषय पर जो कुछ कहा था उसका सारांश पाठकोकी जानकारीके हेतु हम यहाँ पर उद्धृत करते है। इस अधिवेशनमें "ब्राह्मणविद्यार्थी सहायक मण्डल, अंजमने इस्माइल, दक्षिण-शिक्षा-परिषद् (Daccan Education Society), शिक्षा विचार मण्डल, इतिहास संशोधक मण्डल, अन्त्यज सुधारिनी सभा (Depressed class mission) स्त्री विश्वविद्यालय (Women's university), हिन्दू विधवा आश्रम (Hindu Widows' House), मराठा एक्येच्छु सभा, गुजरात सभा, और गुजरात शिक्षा परिपद (Education League) इत्यादि कितनी संस्थाओके कोई दोसौ प्रतिनिधि उपस्थित थे और कोई दस वारह देशी रजवाडोंके प्रतिनिधि भी इसमें सम्मिलित होने आये हुए थे। उन सवके सन्मुख सभापति महाशयने कहा-

"हमारे अधिकारी वर्ग चाहते है कि विद्यर्थी समुदाय वर्त्तमान राजनैतिक आन्दोलनसे सदा दूर रहे। उनकी इच्छा यहाँतक जान पड़ती है कि यदि विद्यार्थीगण अच्छे २ वक्ताओं के व्याख्यान (Speeches) भी न सुने तो अत्युत्तम हो। परन्तु अन्य अर्थात् योरुप आदि देशोंमे यह वात नहीं है। वहाँ पर तो राजनैतिकत व्याख्यान सुनना विद्यार्थियोके लिये शिक्षा का एक अङ्ग माना जाता है। योरुपके शिक्षक स्वयं वड़ी २ राजनैतिक सभाओमे जाया करते हैं और अपने विद्यार्थियो को भी वहाँ ले जाते हैं। योरुपका कोई विद्यार्थी ऐसा नहीं, जो अपने देशकी राजनैतिक परिस्थितिका थोड़ा वहुत ज्ञान न रखता हो। वहाँके विद्यार्थी राजनैतिक समाचार पत्र पढ़ने से रोके

नहीं जाते। परन्तु यहाँ उसके स्थानमें यह आज्ञादी हुई है कि हमारा (भारतीय) विद्यार्थी समुदाय राजनैतिक पत्र पढ़नेसे सर्वदा वंचित रहे। यदि यहाँके विद्यार्थी कोई समाचार पत्र पढ़ना भी चाहें, तो एङ्गलो इंडियन पत्रों (Anglo Indian papers) से ही उन्हें मनः सन्तुष्टि करनी पड़ती है। ऐसे पत्रों में भारतीयोंको गाली गलौजकी विशेष बातें पढ़ते २ विद्यार्थी लोग इन पत्रोंसे अपना मन खींच लेते हैं, और उनके पाठसे विद्यार्थियोंके मनोंमें विपरीति भावोंका उदय होता है। विलायतमें शिक्षा ही उन्नतिकी जड़ समझती जाती है। वहाँके विद्यार्थियों को सब प्रकार की शिक्षा दी जाती है। केवल पुस्तक रटाकर शिक्षा देना इङ्गलैण्ड (England) नहीं जानता-यह रीति केवल भारत ही मे देखी जाती है। इङ्गलैण्ड की शिक्षासे उस देशकी रक्षा हुई है, क्योंकि यदि वहाँ केवल पुस्तकें रटाकर शिक्षा देनेकी चाल होती, तो आज इङ्गलैण्ड गत् महासमरमें कभी इतने दिनों नहीं लड़ सक्ता था। इसमें कोई सन्देह नहीं कि वहाँ के नवयुवक यदि अपनी सामाजिक और राजनैतिक अवस्था का पहले से ज्ञान न रखते, यदि उन्हें स्वदेश प्रेमका पवित्र पाठ न पढ़ाया गया होता तो न जाने आज उसकी क्या अवस्था होती? अतः इस विषय पर सुधार करना भारतीय सरकारका भी कर्त्तव्य है।

उन्होंने यह भी कहा कि—"भारत की शिक्षा-शैली के सम्बन्ध में अंग्रेज़ों और भारतीय पण्डितों के बीच विचारों में बहुत कुछ विभिन्नता है। भारतीयों की सम्मति है कि शिक्षा इस शैली से दी जाय जिसमें वह व्ययसाध्य न होकर सस्ती और बहुव्यापिनी हो; साथ ही इस बात का भी स्मरण रखना चाहिये कि सस्ती शिक्षा से यह अभिप्राय नहीं है कि सरकार केवल

कालिजों की उपाधियाँ (Degrees) दिलाकर विद्यार्थियों को अयोग्य रक्खे। सस्ती और योग्य शिक्षा देना ही भारतियों की एक मात्र इच्छा है। अतः अँगरेजों का यह कहना कभी उचित नहीं कि शिक्षा सम्बन्धी योग्यता कम होते हुए भी अधिकता से कालेजों की उपाधियां दिलाना भारतीयों का अभीष्ट है। अच्छी शिक्षाका यह अर्थ कभी नहीं कि विद्यार्थियों पर पाठ्य विषयों का विशेष रूपसे वाहुल्य कर दिया जाय। कड़ी परीक्षा लेना भी योग्यता का एक प्रकारसे विशेष परिचायक नहीं। अंग्रेज चाहते है कि थोड़ेही मनुष्यों को उच्च शिक्षा दी जाये, परन्तु इस समय (१९१७ में) इंगलैण्डमें शिक्षा सुधार का जो प्रस्ताव हो रहा हैं, उससे अंग्रेजोंकी उक्त इच्छा का एक बार ही खण्डन हो जाता है। अतः विलायती शिक्षा पद्धतिके अनुसार अंग्रेज लोग इस बातके लिये वाध्य हैं, कि भारतमें सस्ती पर अच्छी और उच्च शिक्षा देने का वे विशेष प्रबंध करें, और इस विषयमें हम लोगों को ही कुल भार अपने हाथ में लेना चाहिये*। ऊँची शिक्षा देनेके लिये हमे अच्छे२ आध्यापकों की आवश्यकता होगी, क्योंकि जब तक योग्य और उदार मना अध्यापक नहीं होंगे, तब तक विद्यार्थी भी आदर्श चरित्र न होंगे। सन् १८८१ के पीछे से ऐसे उत्कृष्ट प्रोफेसर (Prof) भारतमें नहीं देखे जाते जैसे १८८१ के पूर्व देखे जाते थे। हमारे कालेजके उदारमना एक अंग्रेज प्रिन्सापिल (Principal) ने सर रामकृष्ण भण्डाकार और मुझसे कहा था, कि 'सिविल सर्विस (Civil Service) विभाग में अधिक वेतन होनेके कारण योग्य विद्वान विशेषतः उसी विभागमें चले जाते हैं और मध्यम श्रेणीके विद्वान ही शिक्षा विभागमें नियुक्त किये जाते

---

* इसके विषय में हमने आगे चलकर लिखा है।

ह। साथही इस विभाग में दो एक और भी बे सिर पैर की हो जाया करती हैं, जिससे शिक्षा विभाग में योग्य ध्यापकों की कमी हो जाती है। देखा गया है—कम योग्यता होने पर भी योरुपियन, योग्यातियोग्य भारतीय अध्यापकों से उच्चपद पर नियुक्त होते और अधिक वेतन पाते हैं। योरुपियन अध्यापक इम्पीरियल सर्विस (Imperial Service) में रखे जाते हैं, और भारतीय अध्यापक प्राविन्शल (Provincial) मे। इस भेद भावके कारण भी भारतीय-शिक्षाविभाग में योग्य अध्यापकों की कमी होती जा रही है। और जिससे विश्व विद्यालयों की शिक्षा भी उचित रीतिसे नहीं होती। इसका प्रभाव विद्यार्थियों पर जो पड़ता है, वह यही है, कि योग्य भारतीय अध्यापक को किसी कम योग्य वाले योरुपियन अध्यापकसे कम वैतेनिक और न्यूनपदस्थ देख कर भी उनके मनमें भेदभाव की उत्पत्ति होती है। अतः राजनैतिक सभाओं और राजनैतिक समाचार पत्रोंके पठन पाठनसे विद्यार्थियों को रोक रखना क्या कभी लाभदायक हो सक्ता है? फलतः स्कूल और कालेजोंसे इस प्रकार की भेदभरी नियुक्ति को दूर रखनां और विद्यार्थियों को राजनैतिक आन्दोलनो में सम्मलित होने देना ही लाभ दायक होगा"।

सर चन्दावरकर महोदय की इस वक्तृता और हमारे उक्त कथनसे जो तात्पर्य्य निकलता है, उसका सारांश यही है कि अन्य देशोंके सुशासक अपने देश वासियों को पूर्णतः सुशिक्षित बनानेके लिये कोई बात उठा नही रखते। उनकी शारीरिक, मानसिक, अध्यात्मिक और नैतिक सबही प्रकारकी शक्तियोंके विकाश की पूर्ण चेष्टा की जाती है, साथही उनकी स्वतंत्रा और स्वाधीनता का भी पूरा २ ध्यान रखा जाता है।

प्रतिभाशाली व्यक्तियो को अपनी उन्नतिके लिये पूर्ण अवसर दिये जाते है। समाज, जाति तथा राष्ट्र का भविष्य प्रायः उन्हीं पर निर्भर है, जो इस समय बालक रूपमें शिक्षा पा रहे हैं। यही कारण है कि अन्य देशोंके अधिकारी वहाँके बालक बालिकाओं की शिक्षाके लिये जितना व्यय करते हैं, उतना व्यय और विभाग में नहीं करते। परन्तु दुख है कि भारत म शिक्षाके लिये उसका शतांश भी व्यय नहीं किया जाता। संसार के प्रायः प्रत्येक देशमें यह नियम है, कि उस देशके निवासियों का नियत अवस्थाके बालकों को कुछ नियत वर्षोंके लिये पढ़ना अनिवार्य्य होता है, और उन्हें प्रारम्भिक शिक्षा निःशुल्क दी जाती है। परन्तु भारतमे निः शुल्क और अनिवार्य्य शिक्षाके नामसे अधिकारी तो एक ओर स्वय देशवासी ही बुरी भाँति घवड़ाते है। यहाँ दीन देशवासियों से शुल्क तो पूरा २ लिया जाता है, परन्तु उनकी शिक्षा की ओर जितना ध्यान देना चाहिये—नहीं दिया जाता। एक बार स्वर्गीय महात्मा गोखले ने वायसराय की सभा (कौन्सिल) में अनिवार्य्य और निःशुल्क प्रारम्भिक शिक्षाके लिये एक प्रस्ताव उपस्थित किया था, परन्तु देशके दुर्भाग्यवश वह लोगोंके प्रतिरोधके कारण स्वीकृत न हो सका। निःशुल्क और अनिवार्य्य शिक्षाके लिये कहा जाता है कि रुपये की बड़ी भारी आवश्कता है, इतना रुपया सरकारके कोषमें नहीं है। यदि थोड़ी देरके लिये ऐसा मान भी लें कि सरकारके पास धन नहीं है, तो क्या उसका प्रबंध भी नहीं किया जा सक्ता? पुलिस, सेना आदि विभागों में जितना धन व्यय किया जा रहा है, क्या वह नही घटाया जा सक्ता? भारत जैसे शान्ति-प्रिय और सम्राज्य-भक्त देशके लिये सेनाक इतने प्रबंध की आवश्यकताही क्या है, सो अभी तक समझमें नहीं

आया ? एक बात और भी है, यदि सरकार इसमेंसे धन घटाना न चाहे तो भारतवर्ष में बाहरसे आने वाले माल पर कर लगाया जा सक्ता है। उस उपायके प्रचारसे भारत जैसे देशमें जहां प्रायः प्रत्येक वस्तु विदेशसे आती है, पर्य्याप्त धन प्राप्त हो सक्ता है।

जो किसान भूखे रहकर और एक लंगोटी लगाकर समस्त दिवस अपना रक्त पसीना एक किया करते हैं, अपने बालकों के लिये शुल्क कहाँ से लावें ? सच तो यह है-उनके पास पुस्तकों तक के लिये दाम नहीं। भला जिन कृषकों को ३६५ दिन में एक दिन भी भर पेट भोजन नहीं मिलता और कभी २ तो सप्ताहों भूखे रहकर ही कड़ाके के शीत, तड़ाके की गर्म्मी और मूसलाधार पानी बरसते समय कार्य्य करना पड़ता है, वह भला अपनी सन्तान को वर्त्तमान व्ययशाली शिक्षालयों में कैसे शिक्षा दिला सक्ते हैं ? फिर क्या यह ८५ प्रति शत् भारतके लाल यौंही अशिक्षित और मूर्ख बने रहेंगे ? क्या उनके दुखों का अन्त न होगा ? क्या भारत सरकार उनकी शिक्षाके लिये कुछ भी प्रबन्ध नहीं कर सक्ती ? सरकार सब कुछ करने योग्य है। यदि वह चाहे तो देश भरमें अनवार्य्य निःशुल्क शिक्षाका प्रचार कर भारत का बड़ा उपकार कर सक्ती है।

भारतमें शिक्षा प्रचारके लिये सर्कार अन्य देशोंकी अपेक्षा कितना धन व्यय करती है, वह इन अंकोंके देखनेसे भलीभांति ज्ञात हो सक्ता है—

देश			धन परिमाण
संयुक्त राज्य अमेरिका	...	...	१५)
स्वीट्ज़र लैण्ड ...	...	...	१०)
अस्ट्रेलिया ...	...	...	८।≡)
इंगलैण्ड और वेल्स	...	...	७॥)
कैनेडा ...	...	...	७।-)
स्कोट लैण्ड ...	...	...	७≡)॥
जर्मनी ...	...	...	५≡)
आयरलैण्ड ...	...	...	४॥-)
हौलेण्ड ...	...	...	४॥)॥
स्वीडन ..	...	...	४≡)
वेल्जियम ..	...	...	४)
नारवे ...	...	...	३॥-)
फ्रान्स ...	...	...	३॥≡)
आस्ट्रया ...	...	...	२॥।-)॥।
स्पेन ...	...	...	१।≡)
इटाली ...	...	...	१≡)॥
सार्विया ...	...	..	॥≡)
जापान ...	.	...	॥≡)
रूस ...	...	..	।≡)॥
ब्रिटिश भारत ..	...	...	८)
भारत के देशी राज्य			
कोचीन ...	...	..	।≡)
बड़ौदा ...	...	...	।≡)॥
ट्रावन्कोर ..	...	...	।≡)॥।
माइसूर (मैसूर) ..	...	...	॥।)

इससे स्पष्ट है कि जिस देशकी सर्कार वहाँके प्रत्येक मनुष्य की शिक्षाके लिये केवल एक आना व्यय करे, वहाँके निवासी कितने शिक्षित और चतुर हो सक्ते हैं ? इसकी अपेक्षा तो भारतके देशी राज्य ही अपने बालकोंकी शिक्षाके लिये अधिक व्यय करते हैं। माइसूरमे हालमें शिक्षाके लिये कई लाख रुपये की स्वीकृति हुई थी। बड़ौदा दिन प्रति उन्नति करता चला जा रहा है; वह कौन सा समय होगा, जब भारत सर्कार भी हमारी शिक्षाके लिये पर्य्याप्ति धन व्यय कर अपनी उदारताकी परिचय देगी ?

यद्यपि शिक्षाके माध्यमके विषयमें बहुत कुछ कहा जाचुका है, फिर भी इस क्रमके साथ २ यहाँ पर उसके विषयमें थोड़ा कुछ और कहना चाहते हैं। आप चाहें जिस देशको लेलीजिये, वहाँकी शिक्षाका माध्यम वहीं की भाषा होगी। समस्त राष्ट्रपति अपने देश वासियोंको उनकी मातृभाषामें शिक्षा देते हैं, परन्तु अन्य बातोंकी भाँति भारतवर्षकी चाल इसमें भी निराली है। यहाँकी उच्च शिक्षाका माध्यम अंग्रेजी है, इसका जो प्रभाव हमारे नवयुवकों की राष्ट्रीय, धार्मिक, नैतिक और आर्थिक स्थित पर पड़ता है, वह लिखा जा चुका है। इस शिक्षाके प्रचारसे देशमें नास्तिकता की लहर वह चली है। हमारे नव-युवक अपने पैतृकधर्म्म और प्राचीन सभ्यताको उदासीनता की दृष्टिसे ही नहीं किन्तु घृणापूर्ण अवहेलनाकी दृष्टिसे भी देखने लगे हैं; इसका एक मात्र कारण हिन्दीमें अर्थात मातृभाषामें शिक्षाका न होना है। अंग्रेजीकी शिक्षा पाकर और नवीन सभ्यता पर मोहित होकर भारतीय नवयुवक, जिन पर देशकी आशा निर्भर है, अपने पूर्वजोंको मूर्ख और सभ्यता को धर्मका ढकोसला समझते हैं। संध्या, पूजन, हवन, यज्ञ

तीर्थ आदि समस्त . धार्मिक कृत्य उनकी दृष्टिमें पाखंड और पोप जाल है। अतएव जब तक हमारी शिक्षाका माध्यम हमारी मातृभाषा न बनाया जायगा तब तक हमारे नवयुवकोंका जीवन आचार विचार और चारित्र्य नहीं सुधर सक्ता। साथ ही इस से हमारे देशमें हिन्दीकी जो हीनदशा और हानि हो रही है, वह भी बिना इस उपाय के नहीं सुधर सक्ती। अपने देशके उच्च शिक्षा प्राप्त नवयुनकोंसे बातचीत कीजिये तो पता लगेगा कि उनमे हिन्दी जानने वालोंकी संख्या कितनी कम है। उनकी अलमारियाँ शेक्सपीयर और मिल्टन आदिके ड्रामे और उपन्याससे भरी होंगी; रामायण, महाभारत, भागवत, गीता ग्रन्थ आदि कदाचित ही किसी विरलेके पास निकलेंगे। फिर इससे हमारी आर्थिक हानि जो हुई है सो अलग। स्वास्थ्यके विनाश का तो कहना ही क्या है। यह सब बातें अब हमको पुनः उसी समय प्राप्त हो सकेंगी, जब हमारी शिक्षा मातृभाषामें होही दी जाया करे।

पाठ्य पुस्तकोंका वर्णन करते हुए सबको छोड़ हम केवल इतिहासको ही उठाते हैं। वर्त्तमान शिक्षा विभागमें नियत इतिहास ग्रन्थोंमें हमारे भारतवर्षके सच्चे इतिहास, आदर्श और गौरवकी जो दुर्दशाकी गई है, उन्हे पढ़नेसे कोई विरला ही भारतपुत्र होगा, जिसका जीवन भर आवे। भारतवर्षके आदर्श महात्माओं और देश-सेवियोंके पवित्र चरित्र जिस प्रकार और जिस भाषामें हमें पढ़ाये जाते हैं, उससे हृदयमें एक प्रकारकी ठेससी लगती है। स्थान २ पर आवश्यकीय और सत्य घटनाएं बिल्कुल उड़ा दी गई हैं और असत्य तथा अप्रमाणिक घटनाएं बड़े गर्वके साथ विस्तार पूर्वक लिखी गई हैं। कलकत्ते की काली कोठरीका वृतान्त खूब गढ़ा गया है, परन्तु उसका

कदाचित ही कहीं भावपूर्ण भाषामें वर्णन हो कि हमारे देशी सिपाहियों ने चावलका माढ़ खाकर चावल अपने गोरे अफसरों को खिलाए। भरतीय नरराजाशिरोमणि छत्रपति शिवाजी महाराजको पर्वती चूहा बतलाया है और वीर शिरोमणि स्वदेश सेवी महाराणा प्रतापको विप्लवी वर्णन किया है। इसका प्रभाव हमारे विद्यार्थियों पर क्या पड़ता होगा इसके विचार मात्रसे हमारा सब गौरव चूर २ हो जाता है। ऐसे इतिहास की शिक्षासे उनके चित्तमें अपने आदर्श पूर्व पुरुषाओंके प्रति बुरे और घृणित भाव उत्पन्न होकर उनके आत्मगौरव, स्वाभिमान, जातीयता और स्वदेशानुरागका विनाश होता है। ऐसी दशामे हमे अपने सच्चे इतिहास अपनी भाषामे स्वयं तयार करके उन्हें अपने राष्ट्रीय विद्यालयोंकी पाठ्य पुस्तकोंमें रखकर उनके द्वारा अपने विद्यार्थियों को इतिहासकी शिक्षा देनेकी आवश्यकता है। दूसरे शब्दोंमें इसे यों कह लीजिये कि भारतमें बच्चों को जो शिक्षा (केवल इतिहास ही की नहीं) दी जा रही है, आद्योपान्त उसमें सुधारकी आवश्यकता है। यह शिक्षा ऐसी नहीं है जिससे कोई देश अपने पैरों पर आप खड़ा हो सके। भारतवासियों को भारतका सच्चा इतिहास नहीं पढ़ाया जाता, इतिहासके नामसे इतिहासका मुर्दा ही दिखाया जाता है। हमारे विद्यार्थी यदि उदाहरण देंगे, तो बाइबिल अथवा रोम और ग्रीसकी हिस्ट्री (History) से; उन्हें भारतीय इतिहास के सच्चे नायक चन्द्रगुप्त, अशोक विक्रम, राम, अर्जुन, भोज और पृथ्वीराज आदिका पता ही नहीं। इङ्गलैण्ड और स्काटलैण्डके मनुष्योंके उदाहरण दे सक्ते हैं, परन्तु प्रताप, शिवाजी, गोविन्दसिंह, हैदर, करण और वनराज आदि असंख्य वीर राजा, असंख्य देशोद्धारक और असंख्य देशके रक्तमें वीरताकी

जागृति उत्पन्न करने वाले भारतके लालो—सच्चे सपूतोका भारतीय विद्यार्थियो को नाम भी नही बताया जाता। परन्तु यदि नाम बताए भी जाँय तो उससे लाभ ही क्या; जिस ढङ्ग से वे बताये जाते हैं, उनसे उलटी भक्ति कम होती है। भारतके वीरोंके चरित्र संक्षेपमें रखे भी जो गये है, वे विदेशी इतिहास-कारोने इतने बिगाड़कर लिखे हैं, जिससे ज्ञात होता है कि संसारमे उनसे बुरा अन्य कोई मनुष्य था ही नही। कहाँ है हमारे बालको में नया उत्साह उत्पन्न करनेवाली सुरीली भाषा? भारतके बच्चो को नेलसन, थेकरके उपन्यास और शेक्सपीयर की कहियाँ (Tails) पढ़ानेसे क्या लाभ? जो बाते पूरणतः विदेशी भावो, परदेशीपनसे भरी पड़ी हैं उन्हें शिक्षा कौन कह सक्ता है? हमारे देशमे शिक्षा देनेके लिये और हमारे घरकी बाते सिखानेके लिये अन्य देशवासी (Foreigners) पुस्तकें लिखते हैं। क्या अपने देशोमे भी वे हमारी लिखी पुस्तकें पढ़ाना पसन्द करेंगे? भला एक देशवासी दूसरे देशवालोंके इतिहास, रहन सहन और हाव भाव, रीतिरस्म आदिसे क्या परिचित हो सक्ते है? परदेशी लेखकोंकी पुस्तकों से कभी हमारे बालको मे वीरता उत्पन्न हो नही सक्ती। आज हमारे विद्यार्थियो को छटी सातवीं कक्षा (Class) से इतिहासके नाम पर क्या पढ़ाया जाता है? दस पृष्ठोमें हिन्दुओका समय (वैदिककाल), हा! जिस देशके राजामहाराजाओ, वीर रत्नो, सतीरमणियों, आत्मत्यागी स्त्री पुरुषो, सदाचारी मनुष्यो, देशहितैषी, परोप-कार, आतिथ्य—सत्कार, और प्रजा—वत्सलता आदि आदर्श चरित्रोसे इतिहासके पृष्ठके पृष्ठ रंगे जा सके हैं, देवता तक जिनका गौरव गान करते थे, जिनके आदर्श—चरित्र रत्न—पट्टो पर स्वर्णाक्षरसे लिखे जाने योग्य हैं जिनके सुसमयमे स्व

प्रकारके आनन्दका स्वर्गीय गान होता था, उसी देशके वीर पुरुषों, हिन्दू राजा महाराजाओका इतिहास सो भी असत्य और भ्रमोत्पादक घटनाओसे भर कर केवल दस पृष्ठोंमें। फिर चलिये वाहर चौदह पृष्ठोमे मुगल—काल और केवल चालीस पृष्ठोंमे यवन—काल, चार छः पृष्ठोंमे मराठों, दस वारहमें राजपूतो और केवल दो एक पृष्ठोंमे पृथ्वीराज आदिका वृत्तान्त, तिस पर बीचर मे इनमे भी अधिकांश विदेशियोंका ही वृत्तान्त है। आगे सौ से भी अधिक पृष्ठोमे गवर्नर जनरलोंका वृत्तान्त। क्या कोई छाती पर हाथ रख कर कह सक्ता है कि यह भारत का इतिहास हो गया? इतिहासके आचार्य्य सच्चे इतिहासवेत्ता प्रोफेसर (Posr) यदुनाथ सरकार महोदयका कहना है कि झूठ, वनावटी और स्वदेश को गढ्ढेमें गिरानेवाली घटनाएँ हैं। शोक तो यह है कि हमारे अशोक, चन्द्रगुप्त, राजपूत आदिके राज्य वर्त्तमान अन्य राज्योसे वड़े ही थे, देश देशान्तरों में उनकी विजय—पताका फहराती थी, किन्तु हमारे बच्चों को आज उनका सच्चा और पूरा वृत्तान्त तो एक ओर कहने को कुछ भी नहीं पढ़ाया जाता। भारतके विस्तृत व्यापारका जो अपने समय मे संसारभरमे फैला हुआ था, कला कौशलका, जिसको सीखनेके लिये अन्य देशवासी आया करते थे, आज नाम भी भारतके विद्यार्थियों को नहीं वतलाया जाता। ये वातें नहीं वतलाई जातीं, इससे हमारे वालक देशको और भी कुछ नहीं समझते। स्वदेश-प्रेम, आत्म-त्याग, स्वाभिमान, जातीयता, आत्मगौरव और देश-सेवाकी गंध हमारे वालकों में आज नाम मात्रको भी नहीं है; अन्यदेशों को ही वे सब कुछ और संसार का भाग्य विधाता मानते है; यह सब वर्त्तमान भारतीय इतिहासकी शिक्षाकी ही वलिहारी है। परन्तु सच तो यह है-

"ऐसा करना हमे भुलावेमे डालकर हमारे जातीय-अभिमान और स्वदेश-प्रेमको नष्ट करना है।' जहाँ विदेशी लेखकों द्वारा लिखा हुआ भारतका इतिहास पढ़कर उनके बालकोका आत्मगौरव नष्ट कर उन्हें प्रतिभाविहीन बनाया जाता है, वहाँ अन्यदेशों (विशेषतः इङ्गलैण्ड) के विद्यार्थियों को—

'कर राज्य वीर ब्रिटानिया ! कर राज्य सागर वक्ष पर।

होगे अधीन नहीं किसीके वर ब्रिटेन विपक्ष हर'—

आदि जातीयगान कराके उनमे स्वदेशानुराग, मातृभूमि-प्रेम और जातीयताके भावोकी पूर्ण जागृतिकी जाती है। प्रत्युत इसके यदि भारतीय विद्यार्थी—

स्वर्गलाभके लिये आत्मबलि हम न करेंगे।

जिस स्वदेशमे जिये उसी पर सदा मरेंगे—

आदि साधारण कविताओ को भी कहीं गाते सुन लिये जॉय तो उनके लिये दण्डकी व्यवस्थाकी जाती है।

इन समस्त बातों पर विचार करनेसे ज्ञात होगा कि जब हमारे बालकोंकी शिक्षाकी यह दशा है, तब क्या आशा है कि वे अपने भविष्य-जीवनमें अपने देशके हितका कोई कार्य्य कर सकेगे? इस लिये इस असुविधा को दूर करनेके लिये यह आवश्यक है कि अपनी शिक्षाका प्रबन्ध अब स्वयं किया जाय। अपनी सन्तानका भविष्य उज्वल बनानेके लिये हमे उनके सामने उत्तम आदर्श रखनेकी आवश्यकता है। उन्हें सच्चा नागरिक तभी बनाया जा सक्ता है, जब उनकी शिक्षाका प्रबन्ध स्वयं करके प्रताप, शिवाजी, कृष्ण, राम, युधिष्ठर, गोखले ईश्वर चन्द्र तथा स्वामीराम आदि नर रत्नोंके उज्वल चरित्रका आदर्श उनके सामने रखा जाय। यदि हमे अपने देशको अवि-

द्यान्धकारसे निकालकर उसे उन्नति शिखर पर पहुंचाना अभीष्ट है तो उसके लिये हमे सच्चे और आत्म-त्यागी नागरिको को तयार करना पड़ेगा, जो समय पर किसी संकटसे विचलित न हो जाँय। ऐसे बालक तभी तयार हो सकेंगे, जब उन्हे देश, काल और उसकी आवश्यकताके अनुसार शिक्षा दी जाय। क्योंकि शिक्षा ही वह वस्तु है जिससे बालकोका चरित्र सुधार कर उनमे उत्तम गुणों, भावो और विचारोका समावेश किया जा सक्ता है। जब उनका चरित्र सङ्गठन होकर बालकोमे यह भाव उदय होने लगेगें, वे स्वयं ही अपने देशको जीवन प्रदान कर सकेंगे। यह बात स्मरण रखनेकी है कि किसी देशका जीवन उसके बालकोके जीवन पर निर्भर है, उन बालकोंका जीवन उनके चारित्र्य पर और बालकोंका चारित्र्य सङ्गठन और उनमे उत्तम भावोका विकाश होना उनकी शिक्षा पर, अवलम्बित है। बिना राष्ट्रीय शिक्षाके भारतवर्षके बालकोका जीवन सुधार कठिन ही नहीं, किन्तु सर्वथैव असम्भव है।

परन्तु यह दुर्व्यवस्था अब अधिक दिनों तक नहीं रह सक्ती, अब भारतीय विद्यार्थी और अधिक उस दुर्दशा और सङ्कटोमे नहीं पड़े रह सक्ते। अब उन्हे किसी न किसी प्रकार इस दुख से बचाना ही होगा और अपने अभीष्ट और आवश्यकताओके अनुसार उत्तम शिक्षा देकर उन्हें सुशील, ज्ञानवान धार्मिक, चारित्र्यपूर्ण, स्वदेशानुरागी, कर्त्तव्य-परायण और देश सेवी बनाना ही होगा। परन्तु उन्हें इस प्रकार तयार करने की शिक्षा उसी समय यथोचित रीतिसे दी जा सकेगी, जब उसका अधिकार पूर्णतः अपने ही हाथोंमे हो; बिना अपने हाथों मे अधिकार लिये अपनी इच्छानुसार शिक्षा देनेमे हम कभी कृतकार्य्य नहीं हो सक्ते। किन्तु यह अधिकार उस समय तक

प्राप्त न होंगे, जब तक भारत को स्वतन्त्रता नहीं मिल जाती और भारतवासी अपने उन स्वत्वोंका उपभोग नहीं करते जिन्हें वे जन्मके साथ लेकर उत्पन्न होते हैं। स्वराज्य हमारा जन्म-स्वत्व है, उसीके प्राप्त कर लेने पर हम अपनी शिक्षाोंका सुधार अपने अभीष्टके अनुसार कर सक्ते है।

अतएव प्रिय देश-बन्धुओ! यदि आपको अपने देशके विद्यार्थियोंका कुछ भी ध्यान है, यदि आप उनके साथ थोड़ी भी सहानुभूति रखते हैं, यदि आपको अपने देशसे प्रेम है, यदि आप वास्तवमें अन्यदेशोंके समान उसे उन्नतिके शिखर पर देखना चाहते हैं, तो आलस्य, निद्रा, भय और मोह को छोड़कर खड़े हो जाइये और समस्त उन्नतियोंके एक मात्र साधन 'स्वराज्य' प्राप्त करनेका उद्योग दृढ़ता पूर्वक कीजिये, तब देखिये आपसे उन्नति कितनी दूर रह जाती है। स्वतन्त्र होने पर एक नहीं सैकड़ों ही राष्ट्रीय विद्यालय खोलकर उनके द्वारा अपने विद्यार्थियो को उत्तमसे उत्तम जातीय शिक्षा देकर उनमें समस्त उत्तम गुणोंका समावेश कर उन्हें सच्चा राष्ट्र सेवी और नागरिक बना सक्ते हैं।

आधुनिक-साधू, सन्यासी, भिक्षुक और तीर्थ-पण्डे आदि

खाएँ पिएँ सब देशका पर कुछ न उसका हितकरे,
ऐसे अकर्त्ता साधुओंसे कौनसे कारज सरे ?
वे तीर्थ पण्डे है जिन्होने स्वर्गका ठेका लिया,
है निन्द्य कर्म्म न एक ऐसा जो न जा उनसे किया ॥

विद्यार्थियोंके पश्चात् भारतकी जिस दुर्गति पर हमारा ध्यान जाता है, वह देशमे साधू सन्यासियों और भिक्षकोका अधिक होना है। इस लेखमें हम इस विषय पर थोड़ा सा वर्णन कर तब और लिखेंगे।

भारतमे इस समय साधू, सन्तों, सन्यासियो, भिक्षकों, मठाधीश महन्तो और तीर्थ-पण्डोकी जो दशा है, उसे लगभग सभी जानते होगे। देशमें इस समय इनकी संख्या साठ लाख से भी अधिक हैं। जिस देशकी तैतीस करोड़ जन-संख्यामें इतने निठल्ले साधू और भिखमंगे हों, उस देशकी दुर्दशाका क्या ठिकाना हो सक्ता है ? प्राचीन समयके साधू सन्यासियों के सदृश यह लोग संयमी और देशके शुभचिन्तक होते तो संतोष भी हो सक्ता था। उनका सा एक गुण भी आज इन लोगोमें नहीं पाया जाता। धूर्त्तता, मक्कारी, बेईमानी, लूटखसोट, व्यभिचार, चोरी और दुराचार करना ही इन्होंने अपना कर्त्तव्य मान रखा है। प्राचीन समयके साधू लोग समाज, के सेवक, परोपकारी, सुचरित्र, देश हितचिन्तक और धर्म्म पर भक्ति और विश्वास रखने वाले और कर्त्तव्य-परायण होते थे। तपोवनो मे तपश्चर्य्या करते रहना और वनोके कंद मूल फलोंका अहार करने मे ही वे सन्तुष्ट रहते थे। मांगना और आज कलके भिक्षको की भांति द्वार २ फिरना वे अपने धर्म्मके

विरुद्ध समझते थे। परब्रह्ममे लीन रह कर आत्मसम्बन्धी जटिल समस्याओका हल करना, लोकहितचिन्तनकी बातें सोचना और परमार्थका विचार करना ही वे लोग अपना कर्त्तव्य और अपने जीवनका मुख्य लक्ष्य मानते थे। उनके हवन और यज्ञके धुएं और वेदध्वनिसे आकाश और देशकी समस्त दिशाएं गुंजरित होतीं थीं, साथही उनमे (तपोवनों) एक प्रकारका अपूर्व समारोह और आनन्द प्रतीत होता था। यदि कोई मनुष्य एक बार भी वहां पहुँच जाता था तो उसके हृदयकी समस्त सांसारिक वासनाएं दूर होकर उसमे सतोभावका उदय हो आता था। उन महात्माओके दर्शनकी गृहस्थी लोग प्रतीक्षा किया करते और उनकी चरणरज स्पर्श करना अपना परम सौभाग्य समझते थे। राजा महाराजाओंको उनमें पूर्ण भक्ति थी, उनके उपदेशामृत वचनोसे ही समस्त देशमें शान्ति और आनन्द निवास करते थे। उन महात्माओंने परमार्थ और ब्रह्मानन्दमें विचरण करते हुए भी जिन ग्रन्थोकी रचनाकी हैं, संसारमें उनके समान अन्य कहीं कोई ग्रन्थ तयार नहीं हुए। यह उन महात्माओ द्वारा रचे ग्रन्थोंका प्रसाद है कि जिसके सहारे आज हिन्दू जाति इतनी टक्करों और आक्रमणोंके होने पर भी अपने अस्तित्व और धर्मको लिये खड़ी हुई है।

इधर आधुनिक साधुसन्यासियोंकी यह दशा हैं कि जिसे देख कर यह प्रश्न आप ही मनमें उठने लगता है कि "क्या यह उन्हीं ऋषि मुनियोकी सन्ताने है जो तपोवनोमें निवास कर अपनी प्रतिभाके बलसे अपने देश, समाज और धर्म्मका इतना उपकार कर गये हैं" ? कहते हृदय दुखता है कि यह झूठे, चोर उठाईगीरे और कुकर्म्मी साधू जन्म लेकर व्यर्थ ही अपने देश, जाति और राष्ट्रको कलङ्कित कर रहे है। आज इन साठ लाख

निठल्ले साधुओंमे एक भी सच्चा सन्यासी नहीं दिखाई देता। यह केवल लंपट गंवार, मूर्ख, व्यभिचारी, पाखंडी और दुराचारी मनुष्योका समुदाय है। इनमे (१) परिश्रम न करने वाले हट्टे कट्टे नवयुवक (२) क्रोधमें आकर घरसे निकल भागने वाले मनुष्य (३) पुलिसके भय से केसरिया वस्त्र पहन लेने वाले चोर, व्यभिचारी, ठग अथवा डाकू (४) ज़िमीदारोंके अत्याचारोंसे पीड़ित हुए किसान (५) पाखण्डियोंके फन्दो में आ जाने वाले बालक (६) समाजसे पतित किये गये लोग (७) इसी वेषके बहाने दूसरोंकी बहू बेटियों पर कुदृष्टि डालने वाले बदमाश, बच्चोंको बहका कर लेजाने वाले उठाईगीरे, और (८) आठ २ दस २ रुपयेके लोभमे आकर देशका घात करने वाले भेदिया पुलिस (सी आई डी-C I D) के गुप्तचर आदि २ लोग सम्मलित हैं।

यह निरुद्यमी आलस्यमे पड़कर धन्धा, उद्योग और श्रम जीविका तो करते नहीं हैं, दूसरोंके ऊपर ही गुलछर्रे उड़ाते हुए देशमे नाना प्रकारके अत्याचार, पाप, व्यभिचार, दुराचार और कुकर्म्म आदि अन्य नीच कृत्य करते फिरते है, औरोका धनहरण करना दूसरोंकी स्त्रियोका सतीत्व बिगाड़ना, भङ्ग चर्समे धन फूकना, लड़को और बालको को भगा ले जाना तथा इसी प्रकार अन्य भांति २ की अय्यारियां, नीचताएं और धूर्त्तताएं करके लोगों को कष्ट पहुंचाना इनका नैमेत्तिक कर्म्म है। किसी मेले दशहरे अथवा पर्व आदिमे जाइये तो पता लगेगा कि यह कैसी २ धूर्त्तताएं करके यात्रियोको जालमे फंसाते हैं। स्वयं तो मौनीबाबा, ब्रह्मचारी, अथवा निराहारी और फलहारी सच्चे महात्मा बन कर ऐसे ध्यानावस्त हो बैठते हैं मानो आज ही अभी शरीर परब्रह्ममे मिल कर सुरपुरको पयान

कर जांयगे, और उनके पूर्ण शिक्षित चेले उनके महन्तका काम करते है। जहाँ कोई सरल स्वभाव मनुष्य अथवा भोली स्त्रियाँ उनके पास आये-उन्होने उनसे दोचार बातें करके उनका हृदयका हाल ले लिया और फिर अपना जाल विछाना आरम्भ किया।

और नगरमे गृहस्थ स्त्रियोंके साथ इनकी धूर्त्तताएं दूसरा ही रङ्ग लाती है। स्वयं तो यह घर गृहस्थी वाले होते ही नहीं और न यह उस ओर कुछ ध्यान ही देते है, सीधी-साधी भोली स्त्रियोको अपने जालमे फंसाना और उनसे अपनी काम वासनाओंको तृप्त करना इनका सधारण काम है। पढ़ने लिखनेमें इनकी यह दशा है कि उनके लिये 'काला अक्षर भैंस बराबर' है। फिर भी घरोमे स्त्रियोंके पास पहुंच कर 'ज्योतिषी, पण्डित, सामुद्रिकी (हाथ देखने वाले) और ग्रहवेत्ता होने का ढोङ्ग रचते और इसीं-प्रकारकी अन्य बहुत सी चालाकियाँ चल कर बेचारी स्त्रियोंको ठगने लगते हैं। अर्वाचीन स्त्रियां, जो एक तो वैसे ही सरल और सीधी और इन पाखंण्डों पर विश्वास करने वाली होती है, दूसरे हमारी कृपा ने उन्हें और मूर्खा बना रखा है—झट उनकी बातोंमें आ जाती है, और जो वे चाहते हैं, उन्हें प्रदान कर उनका मन तुष्ट करनेमे ही अपना भला समझती है। बाज़ार अथवा अन्य स्थानोमे सी-आई-डी के कुछ धूर्त्त साधुओंका पाखंड रूप धारण करके देशसेवी मनुष्योके पास जा नाना प्रकारके छल कपट द्वारा उनसे देश प्रेम की बातें करते हैं। जो लोग उनकी धूर्त्ततासे परिचित नही होते, उत्साहमे आ अण्डशण्ड बकने लगते है, इसका फल जो होता है, उसे भारतके लगभग सभी शिक्षित मनुष्य जानते होगे।

अतः प्यारे देशबन्धुओं आपसे प्रार्थना है कि इन बातों पर विचार कर अब समयकी गतिको पहिचान कर काम की-

जिये। किसीकी बातों पर यों ही विश्वासकर लेना अब उचित नहीं है। सब ओरसे सावधान रह कर अपने आपको उन धूर्त्तों की कार्य्यवाहियोंसे बचाये रखनेमें ही भलाई हैं। दोनों प्रकार से वे आपका अपकार ही करते हैं। एक ओर तो वे आपका धन व्यर्थकी बातोंमें स्वाहा करते हैं, आपकी रमणियोंका सतीत्व भङ्ग करते हैं, और अन्य कई प्रकारसे आपको दुख देते हैं, दूसरी ओर वे भेदिया पुलिसके चरोंके रूपमे व्यर्थ ही आपको सकण्टमें डालनेका प्रयत्न किया करते हैं। इस लिये इसीमें कल्याण हैं कि सबसे बचकर अपनी रक्षा सावधानता पूर्वक करें। यदि आपको देशसे प्रेम है और आप उसका कल्याण चाहते हैं, यदि आप भारतके पुनरुद्धारके इच्छुक हैं और अपनी, अपने कुटुम्बवालोंकी रक्षा किया चाहते हैं तो प्रण कीजिये कि भविष्यमे आप इन धूर्तों को कभी एक पैसा भी न देंगे। स्वयं ही नहीं, दूसरोंको भी सावधान कर दीजिये और गृहकी स्त्रियोको भी समझा दीजिये कि वे इन लोगों पर अब और अधिक विश्वास न करें। जो द्रव्य आप उन्हे देकर व्यर्थ ही नष्ट करते हैं, उसे देशभहितके अन्य कार्य्योंमे लगा कर उसका सद्व्यय कीजिये। और यदि आप उनकी सहायता ही किया चाहते हैं, तो उन्हें पैसा आदि कुछ न दीजिये, वरन् प्रत्येक गाँव और नगरमें एक २ साधुआश्रम और पाठशाला खोलकर उनकी शिक्षा और भोजनका प्रबन्ध कर दीजियें जहाँ रह कर अपना २ उदर पाकन करते हुए वे शिक्षा प्राप्त करते रहें, जिससे उनका जीवन सुधर कर उन्हें अपने कर्त्तव्य अकर्त्तव्यका ज्ञान हो। जव वे शिक्षा प्राप्त कर योग्य हो तव उनका यह काम होगा, कि वे अपने देश और राष्ट्रके कल्याण के लिये अपना जीवन समर्पण कर लोगोमे सद्ज्ञान उत्पन्न

कर उन्हें देशकी स्थितिका ज्ञान करावें और उन्हे राष्ट्र-सेवाके लिये उत्साहित ही नहीं किन्तु तयार करें। इस प्रकार कार्य्य करने से देशका बहुत कुछ भला और उपकार होगा।

अब साधु सन्यासियों और महन्त आदिसे भी हमारी यह प्रार्थना है कि बहुत हो गया, अब अपने यथार्थ रुप को पहिचाने और परमार्थ को स्वार्थ से आहुति न करे, और अपनेको पहिचान कर अपने कर्त्तव्य कर्ममें लगें जिससे उनका और देश दोनों का भला हो।

प्यारे साधु भाइयों! अपनी जननी जन्मभूमि का आर्त्त-नाद जो चारो ओर हो रहा है, क्या तुम्हारे कानो में नहीं पड़ता, क्या तुम्हें उसकी पतितावस्था का बिल्कुल बोध नहीं होता और क्या माताकी इस मलीना, और शोकातुर अवस्था और अधोगति पर तुम्हें तनिक भी दया नहीं आती? स्मरण रखो-ईश्वर तुम्हारे इन नीच और निम्नतम कार्य्यों से कभी प्रसन्न नहीं होता; तुम अपने समय और दूसरो के धनका दुरुपयोग करके अपने जीवन को जो व्यर्थ ही नष्ट कर रहे हो—यह पाप कर्म्म नहीं है, तुम्हें इसका फल भोगना पड़ेगा। प्रभु अन्तर्यामी और घटघट वासी हैं, वे तुम्हारे प्रतिक्षण के एक एक कार्य्य को देखते हैं। तुम्हारे इन कृत्यों के बदले में वे तुम्हें ऐसा कठोर दंड और उचित प्रतिफल देंगे, जिसका स्मरण तुम्हारी आत्मा को सदैव बना रहेगा प्रत्युत जब तक तुम सच्चे साधू और ईश्वर भक्त होकर देश का कुछ हितसा-धन नहीं करोगे, तुम्हारा कल्याण नहीं हो सक्ता, और लाख २ प्रयत्न करने पर अपने कर्त्तव्यकर्म के दंड से विमुक्त नहीं हो सक्ते। यदि तुम साठ लाख झूठे वेषधारी साधू सन्यासी और भिक्षुक उद्योग धन्धे करते हुए देश की उन्नति और राष्ट के

उत्थानके लिये कमर कस कर तयार हो जाओ, तो हमें पूर्ण विश्वास है, तुम उससे भी अधिक देशका हित कर सक्ते हो, जितना शेष बत्तीस करोड़ भारतवासी एक साथ अनवरत परिश्रमसे कर सकेंगे। जिस देशमें तुमने जन्म पाया है, जिस के अन्नजल से तुम्हारा यह शरीर पोषित और प्रतिपालित होता है, जिसकी रजकणमें खेलकर तुम इतने बड़े हुए हो और अन्तको जिसकी पवित्र गोदमें ही तुम्हारा शरीरान्त होगा, जिस की स्नेहमयी पीठ पर इस प्रकार स्वच्छन्द विहार करके तुम यह धूर्त्तताएं करते हो, जिसके संचित धनको फूक कर तुम भंग, गांजा और चरसमे दम लगाते हो, उसीके साथ कृतघ्नबनना क्या कम पाप है? इतना आनन्दोपभोग करते रहने परभी उसके प्रति क्या तुम्हारा कुछ कर्त्तव्य नहीं है? जननी जन्मभूमि जो इस समय ऐसी दुखितावस्थामें पड़ी हुई है, और सब प्रकारसे पराश्रित होकर परमुखापेक्षी होकर आर्त्तनाद कर रही है, क्या वह आर्त्तनाद तुम्हारे कानोंके पर्दे भी नहीं फाड़डालता? माताकी इस दुर्दशा; इस पददलिन और संकट पर तुम्हारा पाषाणहृदय क्या तनिक भी द्रवित नहीं होता? अब भी समय है, सावधान होजाओ और अपने जीवनको सम्भालने का उद्योग करो, अन्यथा विश्वास रखो, देशवासी अब तुम्हारे इस कपट, छल, माया अपहरण, और मिथ्या वेषको पहिचान गए हैं, वह तुमसे छुटकारा पानेका अब पूर्ण उद्योग कर रहे हैं, तुम्हारी धूर्त्तताओंने उनके हृदय पर से भ्रमका परदा उठा कर उनके नेत्र खोल दिये है, और तुम्हारे निरन्तर अत्याचारोंने उनकी मोहमाया, अन्धविश्वास और निष्कपट भक्तिको दूरकर उन्हें सचेत कर दिया है। वह समय शीघ्रही आने वाला है कि वे तुमसे सर्वथैव अपना हाथ

खींच लेगे, तुम्हें एक फूटी कौड़ीभी न देंगे और जहां जावोगे वहींसे दुतकार पाकर कोरे लौटोगे। जब ऐसा होगा तब बताओ तो तुम क्या करोगे, कहां जाओगे और कैसे अपना उदर पोषण करते हुए यह गुलछर्रे उड़ाओगे? इसीसे कहते हैं; अभी समय है, अबभी इन धूर्त्तताओंको छोड़ सावधान हो जाओ, शिक्षा ग्रहण कर अपने जीवनको उपयोगी और कर्त्तव्यमय बनाकर देशका हितसाधन करने, जननी जन्मभूमि की सेवा करने और दुखित भाताके नेत्रोंसे प्रवाहित अश्रुधारा पोछने मे अपनेको लगाकर अपने जीवन को सार्थक करो। तभी तुम्हारा कल्याण होगा।

* * * *

परन्तु इतना हम निःसंकोच हो अवश्य कहेंगे। कि इसमें अकेले इन साधुओंका ही अपराध नहीं है, एक मात्र अपराधी वे ही नहीं है। देशके अन्य मनुष्योंका भी इसमें थोड़ा बहुत दोष है। हमारे देशवासीभी साधुओं-सच्चे साधुओंके प्रति अपना वह कर्त्तव्यपालन जो उन्हें करना चाहिये, नहीं करते, इस बातको हम दृढ़ता पूर्वक कह सक्ते है कि बहुतसे साधुओ, भिक्षुको और सन्यासियोंको धूर्त्त और अकर्मण्य बना देनेका दोष तो हमारे उन बहुतसे भ्राताओके मत्थे है जो उनके मांगनेके समय उनकी सहायता कर उन्हें औरभी बढ़ावा देते है। किसी भिक्षुकके याचना करने पर यदि आप उसे न दें तो इसमे सन्देह नहीं कि साधुओ और भिक्षुको की संख्या देशमे बहुत कम हो जाय। ऐसा करने से दो लाभ होगे, एक तो यह कि भिक्षा न पाने पर वे लोग अपनेको उद्योग धन्धो और परिश्रम करनेमे लगायेंगे, जिससे देशकी शिल्पकारी कारीगरी और दस्तकारी में बहुत कुछ उन्नति होगी, दूसरे,

दृढ़ता पूर्वक कीजिये । और उसके प्राप्त होने पर फिर आप सैंकड़ों शिक्षालय और शिल्प-विद्यालय खोल कर उन्हें इच्छानुसार शिक्षित, उपयोगी और उद्योगी बना कर देशके और मातृभूमिके सच्चे सेवक और उपकारक बना सक्ते हैं।

ईसाई और भारत-धर्म्म ।

है आज लाखों देशवासी धर्म्म अपना खो रहे ।
होकर विधर्म्मी हाय ! अब क्रस्तान बहु जन हो रहे ॥

बहुधा लोगों की धारणा है कि यद्यपि अन्य कई प्रकार से इस समय हमारी अवनति हो रही है, परन्तु अपने धार्मिक कृत्य हम फिर भी स्वच्छन्दता, स्वतंत्रता और निर्भीकता पूर्वक कर सक्ते हैं, हमारे इस कार्य्य में किसी प्रकार का विघ्न अथवा हस्तक्षेप नहीं किया जाता। हम मानते हैं, यह बात किसी अंश में सत्य और ठीक है, और निस्संदेह हम अपने धर्म्म-कार्य्य केवल स्वतंत्रता पूर्वक कर सक्ते है, परन्तु यह कहने में हमें कोई भय अथवा संकोच नहीं होता कि छिपे २ फिर भी हमारे धर्म्म पर (धर्म्म कार्य्यों पर न सही तो क्या ?) आघात किये जाते हैं। सोचिये अधिकांश रूप में भारत-वासियों को ईसाई और विधर्म्मी बनाने में इस समय क्या २ प्रयत्न नहीं हो रहे हैं । लालच, लुभाव, प्रेम, कपटजाल अथवा भुलावे में डाल कर प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष किसी न किसी रूप से हमको ईसाई बनाने और हमारे धर्म्म को नष्ट करने की पूर्ण चेष्टाएं की जाती हैं ! अतः साधू सन्यासियों के पश्चात् लेख माला में जिस विषय के विवेचन करने की आवश्यकता जान पड़ती है वह यही है कि 'हमारे धर्म्मनाश की शंकाएं इस समय भी कुछ कम नहीं हैं, ईसाई मिशनों (Missionaries) की युक्तियों उनके उद्योग और प्रलोभन धर्म्म विनाश की पर्य्याप्त सामिग्री हैं। अतः हमें उनसे कहां तक सावधान रहने की आवश्यता है' ?

सन् १८७२ ई० में भारत में ईसाइयों की संख्या लगभग

[illegible] थी। सन् १९११ में वह बढ़कर अड़तीस लाख से [illegible] अर्थात् कोई तिगुण हो गई। इसे देखकर जाना जा सक्ता है कि ईसाइयों की संख्या दिन पर दिन बढ़ती ही चली जा रही है, और हिन्दवासियों (हिन्दू अथवा मुसलमान) की घटती। पूर्णरूप से नहीं कहा जा सका, कि इस बीच में कितने हिन्दू और कितने मुसलमान ईसाई हो गये। परन्तु सब का मुख्य कारण हमारा दुर्भाग्य, भारत पर विधाता का प्रकोप और भारतवासियों के कर्म्म हैं। देश में दरिद्रता का निरन्तर बास होने के कारण जहां बहुत से भारतवासियों को वर्ष में पूरे छः मास भी भोजन न मिलता हो, रोगों का जो देश मानो धाम ही बन रहा हो, फूट निरन्तर जहां अपना मुंह फैलाये बास करती हो, जहां पांच करोड़ से भी अधिक देशवासी, अन्त्यज कह कर दूर ही से दुतकार दिये जाते हों, जहां पन्द्रहवर्ष से कम वयस की कुल मिलाकर पांच लाख से ऊपर विधवाएं, हों, जहां भाई २ सदैव अभियोग संचालन आदि में अपना धन स्वाहा करने को सदा तयार बैठे हों, और जिस देश के निवासियों की शिक्षा और जीविका का कोई उचित प्रबन्ध न हो, वहां ईसामसीह के भक्त कैसे चुपचाप बैठे रह सकते हैं ?

समाज के ऐसे अत्याचार, अछूतता के अपमान, धर्म्म के ढोंग, पुरुषों के अत्याचार, आपस की फूट और पारस्परिक सहानुभूति शून्यता के कारण ईसाइयों की संख्या दिन प्रति दिन बढ़ती चली जा रही है। हमारी भारतमाता के—दुखित भारतमाता के होनहार पुत्र और पुत्रियां, जिन पर हमारी आशाएं निर्भर रहती हैं और जिन से भरोसा किया जाता है कि आगे चलकर कभी अस्पर्शीय पुष्प की भांति खिलकर

देश और जाति का कुछ भला करेंगे, अर्द्ध विकसित अवस्था में अधखिली कली की भांति बीच ही में तोड़ लिये जाते हैं अर्थात् जो दूसरों की गोद में जा बैठते है और हम देखते के देखते ही रह जाते हैं। हा शोक! हा दुर्भाग्य!

भारतवर्ष के प्रायः सब ही बड़े २ नगरों में ईसाई मिशनरियों के केन्द्र है और छोटे २ स्थानों में उनकी शाखाएं खुली हुई हैं। उन्हीं स्थानो से समय २ पर प्रचार के लिये पादरी और ईसाई स्त्रियां गांव और नगरों में भेजे जाते हैं। वे उक्त अवस्थाओं में से किसी में पड़कर छटपटाते मनुष्यों को जहां देखते हैं, तुरन्त उन्हें हृदय से लगाते और उनके भोजन, वस्त्रादि की सुव्यवस्था कर उन्हें सान्त्वना देते है। धीरे २ वही मनुष्य पेट की ज्वाला से व्याकुल होकर अपने प्रिय धर्म्म को त्याग ईसाई हो जाते और हमारे दग्ध हृदयों को और भी दग्ध किया करते हैं। इतना ही नहीं, जब देखा कि इस प्रकार मिशन के द्वारा प्रचार कम होता है, तो शिक्षा की शरण ली गई। स्थान २ पर स्कूल और शिक्षालय खोलकर शिक्षा के साथ २ हिन्दूबालकों को ईसाईत्व की शिक्षा दी जाने लगी। बेचारे बच्चों के हृदय कोमल, निर्दोष, अपरिपक्व और अपने धर्म्म की दीक्षा से रहित तो होते ही है कहां तक उनके ऊपर ईसाइयों के निरन्तर उद्योग की छाप न लगती—झट उनके जाल में आ जाते हैं और हमे छोड़ सदैव के लिये दूसरों के हो जाते है। हा शोक! छोटी अवस्था में ही हमारे उद्यान के नवकुसुमित पुष्प तोड़कर विधर्म्मी बना लिये जाते हैं।' और हमारा कुछ बश नहीं चलता।

ईसाई धर्म्म के अधिकाधिक प्रचार के लिये और भी उद्योग किये गये। १८५७ में 'क्रिश्चियन लिटरेचर सोसाइटी

(C. L. S.) की स्थापना की गई। वहां से छोटी २ सुन्दरी पुस्तकें प्रकाशित करके अल्पमूल्य में अथवा अमूल्य बांटी जाने लगीं। साथ ही बहुत से स्कूल, विद्यालय, अनाथालय, अस्पताल और दानगृह आदि स्थापित किये गये। सन्यासियों के वेष बनाये मुक्ति-सेना (SALVATION-ARMY) वाले स्त्रीपुरुष दोनो समाजों में अलग २ काम कर रहे हैं। आमेरिका और योरोपवाले इनकी सहायता के लिये प्रतिवर्ष करोड़ों रुपया उनके पास भेजते हैं। धर्म्म के प्रचार में सरकार की पूरी सहायता और सहानुभूति उनके साथ है *। प्रचार के लिये जहां उनके पादरी गली बाजारों में व्याख्यानो के लिये जाते हैं, पुलिस उनके साथ रहती है, जिससे हिन्दू धर्म्म के प्रेमी पक्षपाती उनके प्रचार में किसी प्रकार का विघ्न वाधा अथवा कठिनाई उपस्थित न करने लगें वा उनसे कोई झगड़ा न कर डालें +

---

* मैने स्वयं एक पादरी के मुंह से यह शब्द अपने नगर मेसुने थे कि सर्कार उसमें हम पूर्ण सहायता देती है और वहां हमसे प्रचार कर्ता है।

+ एक पादरी साहब रोज व्याख्यान देने आया करते थे जब वे व्याख्यान आरम्भ करते तभी मैं और मेरे दो एक मिलने वाले उनसे शास्त्रार्थ करने लगते, फल यह होता कि वह विन प्रचार करे ही भाग जाते। चार छ' दिन ऐसे हो गये तो उन्हें क्रोध आया, और एक दिन पुलिसको साथ ले कर आये। मैंने पुलिस के एक चपरासी से उसका कारण पूछा, तो उक्त बात ज्ञात हुई।

संसार में एक भी हिन्दू नही बचेगा और सृष्टि से हिन्दू जाति का नाम तक मिट जायगा।

देखा जाता है जब किसी का पुत्र मरता है, तो वे माता-पिता अपने उस सुत के लिये कितना विलाप करते हैं। तो जब एक पुत्र के ही वियोग से मनुष्य इतने विह्वल हो उठते हैं, तब कहिये आपकी प्यारी जन्मभूमि भारत माता को कितना कष्ट होता होगा, जिसके लाखों पुत्र पुत्रियाँ प्रतिवर्ष उसकी गोद से छीन कर दूसरों को दे दिये जाते हैं? परन्तु माता धैर्य्य-वान है, पुत्र कृतघ्न निकलें तो माता पिता उन्हें खा थोड़े हो जाते है, वह बराबर सहन करती रहती है और भीतर ही माता हृदय को दग्ध किया करती है। धिक्कार है हमको, कि हम माता के, जननी जन्मभूमि के ऐसे असह्य और हृदय विदारक दुखको देखते हुए भी मौनावलम्बी बने कानों में तेल डालकर सोते रहें और कभी करवट भी न बदलें

जब आर्य्यवंश के एक २ राम, कृष्ण, अर्जुन, युधिष्ठर, भीम, नानक, गोविन्द सिंह और शुक्राचार्य्य आदि ने संसार की काया पलट कर दी, तब ज्ञात नहीं हमारे हाथों से निकले हुए हमारे अनाथ बच्चे कब और कैसे जाति, धर्म्म, देश तथा राष्ट्र की सेवा करते? वैसे तो हम किसी भी हिन्दू का विधर्मी होना सहन नहीं कर सक्ते, परन्तु जाति और देश के आशावृक्ष बालक बलिकाओं को हाथो से खोकर सर्वदा के लिये अपने अस्तित्व से हाथ धो लेते हैं। कहने की आवश्यकता नही, ईसाई धर्म्म के प्रचार में दुष्काल और दुर्भिक्ष भी पूर्ण सहायक हैं। अकाल पड़ने पर भूख से पीड़ित होकर भारतमात्रा के भावी पुत्र और पुत्रियां, भाई और बहिन क्षुधा निवारणार्थ बाध्य होकर ईसाइयों की शरण

नियों में सर्वोपरि गिना जाता है, भरत जैसे भाई ने जहाँ राज्य को ठोकर मारदी, और करोड़ो के दान करनेवाले जिस जाति में अबतक विद्यमान है, वहाँ उस जाति के थोड़े से देश के आशास्तम्भ बालक न अपनाए जांय, कितनी दुखप्रद बात है ? मन्दिरों में चाहे करोड़ो व्यय हो जाय, जल्से उत्सवों में चाहे जितना जन स्वाहा हो जांय, ईसाइयों के संस्थाओं और स्कूलों तक मे चन्दा दे दिया जाय और अन्य कई प्रकार से धनका अपव्यय किया जाय, परन्तु अपनी गोद के लालों को धर्म्मच्युत और पतित होने से हम न बचा सकें। हा हंत !

इस समय विधवाओं को जो दश हो रही है, वह कही नही जाती। जहाँ देखिये वहीं ज़नाने मिशिन की औरतें हिन्दू घरों में चक्कर लगाया करती है, और विशेष कर विधवाओं की खोज में रहती है। जहां उन्होंने किसी विधवा को पाया कि अपना जाल बिछाना आरम्भ किया, और जहाँ हम उससे नेक भी अचेत हुए कि चल—वे उन देवियों को उड़ाले जाती है और फिर उन्हें धर्मच्युत करके हमारी छाती जलाया करती हैं। यदि हममें थोड़ा भी स्वाभिमान वा आत्मबल होता तो अबतक क्या उपाय न किये होते ? और नही तो लज्जाबश किसी नदी नाले में ही जा डूबते। आवश्यकता है कि आजकल हम विधवाओं को खाने पहिनने की पूर्ण सुविधा कर दे; साथ ही उन्हें इन ईसाई औरतों की दृष्टि और उनके संसर्ग से रक्षित रखे। उन मायावी औरतों को घर में न घुसने दें और उन्हें बाहर ही से दुतकार दें; इसी में हमारी भलाई और हमारे धर्म की रक्षा है।

इनके पश्चात् जिन पर इन ईसाइयों का मंत्र चलता है,

रहेंगे, इतने पर भी आप सावधान नहीं होंगे ?

* * * * *

पुरुषार्थी जनों के विश्रामार्थ विधाता ने रात्रि की रचना की है, जिस से मनुष्य विश्रामद्वारा शारीरिक और मानसिक परिश्रम के भार से हलका हो फिर से नवीन बल, स्मृति, और नूतनोत्साह से कर्म्मक्षेत्र में कर्तव्य परायण होकर अपनी हार्दिक कामनाओं को पाकर सन्तुष्ट होता है। यही बात किसी देश व जाति पर जो एक वार अति उन्नत रह चुकी हो और फिर पतन के गहरे गढ़े में गिर गई हो-घटाई जा सक्ती है। अर्थात् थोड़े समय के पतन से जिसे हम विश्राम वा निद्रा कह सक्ते है, वह जाति अथवा देश फिर नूतनोत्साह, बल, पौरुष और साहस लेकर कर्म्मक्षेत्र में उतरती और कर्तव्यद्वारा अपने प्राचीन गौरव और महिमा को प्राप्त करती है। परन्तु शोक है इस चिरकालीन निद्रावस्थित हिन्दूजाति पर जिसके सोने का कुछ ढंग ही निराला है।

प्रातःकाल होने पर पक्षी भी अपने घोंसलों से मधुर शब्द और मनोहर ध्वनि करते हुए उठ खड़े होते हैं, परन्तु हिन्दू-जाति दिन ढलने पर भी करवट नहीं बदलती। इसने निद्रावश अपना क्या नहीं खोया ? अपने पराए का ज्ञान, बल, उद्योग, धन, तेज, प्रताप, शौर्य्य और गौरव गरिमा आदि खोकर अब यह अपनी सन्तति से भी हाथ धो रही है। जाति अभिमानी इतने बेसुध हो गए हैं कि इसके सर्वस्व का सर्वथा नाश और अपहरण होता देखकर भी अभी सो ही रहे है। देखो तो सही, रहही क्या गया ? तुम्हारे लक्षणों से तो तुम बचते हो, पर अभी तुम्हारी नाड़ी धड़कती है, इसलिये तुम्हारी चिकित्सा की आवश्यकता है। यदि तुम बच गये तो, 'जान

बची जाखो पायें, फिर सभी मिल जायगा, अपनी गंवाई सभी सम्पत्ति, शक्ति, प्रताप, वैभव आदि प्राप्त कर लोगे, परन्तु जब तुम आपही न रहोगे, तब इस मृत जाति को कौन उठावेगा ? प्रेमाश्रु से मिल्हा कर उस पर अन्तिम प्रेम कौन करेगा ? तुम अपने प्रमाद का फल भोगते हुए निकृष्ट योनियों मे भटकते फिरोगे और यहां विधर्म्मी तुम्हारी जाति की हीन अवस्था का इतिहास लिखेंगे, कैसा भयानक दृश्य होगा ? स्मरण मात्र से हृदय कांप उठता है।

आर्य्यजाति ! तेरी पाठशाओं और महान पियालयों में कौन पढ़ेगा ? तेरे धर्म्म-मन्दिरों में मधुर ध्वनि कर वेद पाठ और यज्ञ, हवन, करने वाला कौन रहेगा, धर्म्म-श्रद्धालु हिन्दू जाति ! तेरे मृत पुरुषाओं का श्राद्ध कर उन्हें जलांजलि कौन देगा ? और तेरे पवित्र देवमन्दिरो में शंख-ध्वनि कौन करेगा ? जब कि तेरी सामाजिक पुष्पवाटिका से ऐसे सुगंधित पुष्प तोड़े जा रहे हैं। काशी के नीलकंठ, देहली के जानकीनाथ; बंगाल के कृष्णमोहन, गोपीनाथ, आनन्द चन्द्र, लालविहारी और कालीचरण आदि आनन्द-रत्न आर्य्य-माता, वैदिकधर्म्म की गोद सूनी कर गए है। कितनी हीं चन्द्रकला, तारा, चम्पा, सीता, सावित्री, दमयन्ती और मन्दालसा आदि तेरी प्राणप्रिय पुत्रियाँ अब तेरे नाम से घृणा करती है और विधर्मियों से सन्तान उत्पन्न कर तुझे चिढ़ाती हैं। हिन्दू-वाला रामावाई, उच्चकुलोत्पन्ना रमावाई जैसी कितनी ही आर्य्य-वालाएं ईसाइयों के फन्दे में चली गई। रमावाई ने हिन्दूस्त्रियों को ईसाई बनाने के लिये कितने ही यत्न किये हैं। और अब देश में प्लेग, अकाल आदि के कारण कितनी ही पार्वती, गार्गी द्रौपदी आदि आर्य्यकन्याएं अनाथ होकर स्वयं ईसाई

वे हमारे वह भाई हैं जिन्हें हम अछूत कहकर अलग किये हुए हैं। इन अन्त्यज्यों की संख्या इस समय सात करोड़ से भी अधिक है। जो जाति अपने इतने अधिक पुत्रों का दुरुपयोग कर रही हो, और जिस माता के इतने बहुसंख्य लाडिले सुत उसकी सेवा से वंचित हों, उस का क्या भला और अभ्युदय हो सक्ता है? भगवन्! उनको पुण्य फल दे, जिन पूर्वजों के धर्म्म कर्म के फल से हम अब तक बचे हुए हैं, नहीं तो कब के रसातल चले गये होते। इन अछूत भाइयों की इस समय जो दुर्दशा हो रही है, उसे सब जानते हैं। यहां पर प्रसंगवश हम इतना ही कहना चाहते हैं कि ईश्वर के पुत्र हमारे ही समान हाड, मांसाधारी, हाथ पैर वाले और शिखा सूत्रधारी उन भाइयों के स्पर्श से हम अतवित्र हो जाते हैं। परन्तु काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ इनसे अपवित्र नहीं होते, दूसरों की बहू बेटियों पर कुदृष्टिपात करने से हम अपवित्र नहीं होते, चोरी, व्यभिचार और जुआ आदि नीच कर्म्मों से हम में पवित्रता बनी रहती है, थोड़े से धन के लिये अदालतों में गंगाजली उठाने से हमारा धर्म्म नहीं जाता, धोखे और कपट से अपने दीन भाइयों की सम्पदा हरण करने से हम धर्म्मच्युत नहीं होते, कभी २ गुप्तरीति से घर की पतोहू आदि तक से व्यभिचार करने से भी हम धर्म्म से नहीं गिरते, शराब खानों में प्यालियाँ पीने, कवाब खाने और बेश्याओं के यहां जाने से भी हम धर्म्मावलम्बी बने रहते हैं, झूठ बोलना तो धर्म्म के दस लक्षणों में से एक है, दूसरों को कष्ट में पड़े हुए देखकर चुपचाप बैठे रहने से भी अपने धर्म्म का पालन होता है और स्टेशन के मांस भक्षी क्षुद्र ईसाइयों से हाथ से हाथ मिलाने से भी हमारा धर्म्म

नहीं घटता परन्तु हमारा वर्ष चला जाता है, जब कहीं हमारी भारतमाता की पवित्र कोख से ही जन्मे हुए हमारे किसी अछूत कहे जाने वाले भाई की परछाही तक हमारे ऊपर पड़ जाय। हा हन्त! हा अज्ञान!

यह हमारे भाई हमारे कुओं से जल नहीं भर सक्के, गांव के निकट रहने नही पाते, 'स्वाधीनता' पूर्वक कार्य्य नहीं कर सक्के. हमारी सहानुभूति के कभी दो शब्द नहीं सुनने पाते, किसी वस्तु के लेते समय उन्हें दूर जूतों से भी अलग खड़ा होना पड़ता है, परन्तु यदि कोई ईसाई कोई वस्तु लेने आता है, तो निःसंकोच, बिना रोक टोक के निर्भय होकर जूतों सहित ऊपर दूकान पर बढ़ चला जाता है, बाजार में चलते समय यदि किसी से भूल में भिट जांय तो वहीं सैकड़ों उलटी सीधी सुननी पड़ती है। परिणाम यह होता है कि वह हमारे इन अत्याचारों, अन्यायों और घृणासे पीड़ित होकर हमें छोड़ उन्हीं ईसाइयों की गोद में जा बैठते हैं, जिनका द्वार उनके स्वागत को सदैव के लिये खुला हुआ है और वे उन्हें प्रसन्नता पूर्वक अपनाते और यथाशक्ति उनका दुख दूर करने का प्रयत्न कर अपनी सहानुभूति से उन्हें अपना हितैषी बना लेते हैं।

प्रिय भ्राताओ! प्यारे देशबन्धुओ! अपनी जाति और धर्म्म को क्या इसी अवस्था में देखते रहोगे? आपको लज्जा नहीं आती कि आप के बालक-अनाथ बच्चे, हृदय के टुकड़े सदैव के लिये आपके अंक से निकल जांय, आपकी बहू बेटियां विधवा स्त्रियां सदैव के लिये ईसाइयों के हाथों में जा पड़े और आपके अछूत भाई आप से बिछुड़ कर विधर्म्मियों के शरण में जा बैठे। क्या आप अब भी सोते ही

लेते और अपने धर्म्म से हाथ धोकर सदैव के लिए अपने ऋषि धर्म्म और पूर्वजों के मुख पर कालिमा लगाते हैं। जैसे मध्य ग्रीष्म की प्रचंड लूह मिश्रित धूप में कोमल पुष्प और अधकली कलियां ही पहिले कुम्हलाती हैं, उसी प्रकार अकाल के समय क्षुधा से पीड़ित हो हमारे कोमल दुलारे बच्चे ही अधिक मरते हैं। जैसे कोमल गुलाब और चमेली की कलियां शीघ्रही मनुष्य का मन हरण कर लेती हैं, उसी प्रकार हमारी सुन्दर २ आर्य्य सन्तानों के भावी बच्चे जिनसे यह आशा की जाती है कि आगे चलकर वे कभी खिलेगें और अपनी प्रतिभा और शक्ति से देश की सेवा और राष्ट्रका उपकार करेंगे—सब से प्रथम ईसाइओं का चित्ताकर्षण करते हैं, और अर्द्ध विकिसितकली की भांति अपरिपक्व अवस्था में ही तोड़ लिये जाते हैं। जो जाति अपने अकाल पीड़ित क्षुधा ग्रसित कोमल बालकों को भोजन नहीं दे सक्ती, वह क्यों संसार में अपना अस्तित्व स्थिर किये हुए है? हमारे लाखों बच्चे इन अकालों से पीड़ित होकर ईसाई हो गये और हो जाते हैं, परन्तु हिन्दूजाति इस पर ध्यान तक नहीं देती। शोक है एसी जाति पर!! भगवन ! या तो इस जाति को बुद्धि दे उसके हृदय में प्रेम और सहानुभूति उत्पन्न कीजिये अथवा ऐसी जाति का जो अपने थोड़े से बालकों को भोजन की व्यवस्था भी न कर सके उचित दंड दे संसार से उसका अस्तित्व ही उठाइये।

जिन्हों ने पंच यज्ञ द्वारा नर नारायण, पशु और आत्मा का प्रत्येक- दिन सत्कार करने का नियम निकाला था, जहाँ दानी हरिश्चन्द्र ने पुत्रादि शरीर तक बेचकर बचन का पालन किया, शिबने अपना शरीर दे दिया, कर्णका नाम जहाँ दा-

-नियों में सर्वोपरि गिना जाता है, भरत जैसे भाई ने जहाँ राज्य को ठोकर मारदी, और करोड़ो के दान करनेवाले जिस जाति में अबतक विद्यमान है, वहाँ उस जाति के थोड़े से देश के आशास्तम्भ बालक न अपनाए जांय, कितनी दुखप्रद बात है ? मन्दिरों में चाहे करोड़ो व्यय हो जाय, जल्से उत्सवों में चाहे जितना जन स्वाहा हो जांय, ईसाइयों के संस्थाओं और स्कूलों तक मे चन्दा दे दिया जाय और अन्य कई प्रकार से धनका अपव्यय किया जाय, परन्तु अपनी गोद के लालों को धर्म्मच्युत और पतित होने से हम न बचा सकें। हा हंत !

इस समय विधवाओं को जो दश हो रही है, वह कही नही जाती। जहाँ देखिये वहीं ज़नाने मिशिन की औरतें हिन्दू घरों में चक्कर लगाया करती है, और विशेष कर विधवाओं की खोज में रहती हैं। जहां उन्होंने किसी विधवा को पाया कि अपना जाल बिछाना आरम्भ किया, और जहाँ हम उससे नेक भी अचेत हुए कि चल—वे उन देवियों को उड़ाले जाती है और फिर उन्हें धर्मच्युत करके हमारी छाती जलाया करती हैं। यदि हममे थोड़ा भी स्वाभिमान वा आत्मबल होता तो अबतक क्या उपाय न किये होते ? और नही तो लज्जावश किसी नदी नाले मे ही जा डूबते। आवश्यकता है कि आजकल हम विधवाओं को खाने पहिनने की पूर्ण सुविधा कर दे, साथ ही उन्हें इन ईसाई औरतों की दृष्टि और उनके संसर्ग से रक्षित रखे। उन मायावी औरतों को घर में न घुसने दें और उन्हें बाहर ही से दुतकार दें ; इसी में हमारी भलाई और हमारे धर्म की रक्षा है।

इनके पश्चात् जिन पर इन ईसाइयों का मंत्र चलता है,

रहेंगे, इतने पर भी आप सावधान नहीं होंगे ?

*　　*　　*　　*　　*

पुरुषार्थी जनों के विश्रामार्थ विधाता ने रात्रि की रचना की है, जिस से मनुष्य विश्रामद्वारा शारीरिक और मानसिक परिश्रम के भार से हलका हो फिर से नवीन वल, स्मृति, और नूतनोत्साह से कर्म्मक्षेत्र में कर्तव्य परायण होकर अपनी हार्दिक कामनाओं को पाकर सन्तुष्ट होता है। यही बात किसी देश व जाति पर जो एक वार अति उन्नत रह चुकी हो और फिर पतन के गहरे गढ़े में गिर गई हो-घटाई जा सक्ती है। अर्थात् थोड़े समय के पतन से जिसे हम विश्राम वा निद्रा कह सक्ते है, वह जाति अथवा देश फिर नूतनोत्साह, वल, पौरुष और साहस लेकर कर्म्मक्षेत्र मे उतरती और कर्तव्यद्वारा अपने प्राचीन गौरव और महिमा को प्राप्त करती है। परन्तु शोक है इस चिरकालीन निद्रावस्थित हिन्दूजाति पर जिसके सोने का कुछ ढंग ही निराला है।

प्रातःकाल होने पर पक्षी भी अपने घोंसलों से मधुर शब्द और मनोहर ध्वनि करते हुए उठ खड़े होते हैं, परन्तु हिन्दू-जाति दिन ढलने पर भी करवट नहीं बदलती। इसने निद्रावश अपना क्या नहीं खोया ? अपने पराए का ज्ञान, बल, उद्योग, धन, तेज, प्रताप, शौर्य्य और गौरव गरिमा आदि खोकर अब यह अपनी सन्तति से भी हाथ धो रही है। जाति अभिमानी इतने वेसुध हो गए हैं कि इसके सर्वस्व का सर्वथा नाश और अपहरण होता देखकर भी अभी सो ही रहे हैं। देखो तो सही, रहही क्या गया ? तुम्हारे लक्षणों से तो तुम बचते हो, पर अभी तुम्हारी नाड़ी धड़कती है, इसलिये तुम्हारी चिकित्सा की आवश्यकता है। यदि तुम बच गये तो, 'जान

बची जाखों पायें, फिर सभी मिल जायगा, अपनी गंवाई सभी सम्पत्ति, शक्ति, प्रताप, वैभव आदि प्राप्त कर लोगे, परन्तु जब तुम आपही न रहोगे, तब इस मृत जाति को कौन उठावेगा ? प्रेमाश्रु से मिल्हा कर उस पर अन्तिम प्रेम कौन करेगा ? तुम अपने प्रमाद का फल भोगते हुए निकृष्ट योनियों मे भटकते फिरोगे और यहां विधर्म्मी तुम्हारी जाति की हीन अवस्था का इतिहास लिखेंगे, कैसा भयानक दृश्य होगा ? स्मरण मात्र से हृदय कांप उठता है।

आर्य्यजाति ! तेरी पाठशाओं और महान पिद्यालयों में कौन पढ़ेगा ? तेरे धर्म्म-मन्दिरों में मधुर ध्वनि कर वेद पाठ और यज्ञ हवन, करने वाला कौन रहेगा, धर्म्म-श्रद्धालु हिन्दू जाति ! तेरे मृत पुरुषाओं का श्राद्ध कर उन्हें जलांजलि कौन देगा ? और तेरे पवित्र देवमन्दिरो में शंख-ध्वनि कौन करेगा? जब कि तेरी सामाजिक पुष्पबाटिका से ऐसे सुगंधित पुष्प तोड़े जा रहे हैं। काशी के नीलकंठ, देहली के जानकीनाथ; बंगाल के कृष्णमोहन, गोपीनाथ, आनन्द चन्द्र, लालविहारी और कालीचरण आदि आनन्द-रत्न आर्य्य-माता, वैदिकधर्म्म की गोदें सूनी कर गए है। कितनी हीं चन्द्रकला, तारा, चम्पा, सीता, सावित्री, दमयन्ती और मन्दालसा आदि तेरी प्राणप्रिय पुत्रियाँ अब तेरे नाम से घृणा करती है और विधर्मियों से सन्तान उत्पन्न कर तुझे चिढ़ाती हैं। हिन्दू-वाला रामावाई, उच्चकुलोत्पन्ना रमाबाई जैसी कितनी ही आर्य्य-वालाएं ईसाइयों के फन्दे में चली गईं। रमावाई ने हिन्दूस्त्रियों को ईसाई बनाने के लिये कितने ही यत्न किये हैं। और अब देश में प्लेग, अकाल आदि के कारण कितनी ही पार्वती, गार्गी द्रौपदी आदि आर्य्यकन्याएं अनाथ होकर स्वयं ईसाई

धन औरों को बनाने की पात्र होंगी। ईसाई धर्म्म का भाव आमेरिका की कुमारी कन्याओं को प्रेरित करता है, वे यहाँ आती हैं और हिन्दूघरों में ईसामसीह के गीत सुनाती हैं। स्कूल, कालिजों, अनाथालयों और औषधालयों आदि के द्वारा आमेरिका, योरुप के धनी मानी ईसाई भारत में अपना धर्म्म फैलाने के लिये लक्षहा रुपया मिशन को देते हैं। सन्यासियों की मुक्ति फौज अलग काम कर रही है। रामपरीक्षा, कृष्ण परीक्षा आदि लघुपुस्तकों द्वारा हिन्दुओं के पूर्व पुरुषाओं के विषय में मन गढ़न्ती बातें लिखते हैं। एक ओर इतनी तयारियाँ इतना धार्मिक प्रेम, और तटस्थ देश में आ सहनशीलता धारण कर पारस्परिक प्रेम और सहानुभूति है, इधर हिन्दू जाति की यह शोचनीय दशा कि इसके अनाथों और विधवाओं की रक्षा के शब्द तक को हिन्दू सामाचारपत्र में स्थान देने को संकीरणता करें। शोक ! आज धर्म्म में प्रेम नहीं, किन्तु बाह्याडाबर और मुख देखी पूज हो रही है। यदि ऐसा नहीं है तो क्या कारण है कि अनाथों और दुखियों की दशा पर तरस नहीं आता ? जब कि हिन्दू जाति की आंखों के तारे दूध पीते लाल अनाथ होकर राम, कृष्ण के नाम से विमुख हो 'ईसामसीह ! मेरे प्राण बचैया' जप रहे हों, और गोविन्द सिंह, शिवाजी तथा प्रताप के पवित्र नाम पर कलंक-कालिमा लगावें। ओ मदान्ध हिन्दू जाति ! हृदय के खंड अपने लालों की यह दशा देखकर तुझे भोजन कैसे पचता है ? तेरी निर्बलता देखकर हृदय कांप उठता है। हिन्दू जाति ! स्मरण रख, तुझे ऐसा समय फिर हाथ नहीं आयेगा; यदि तू अब भी न जागी तो 'पुनि पछताएकहा होइ जब चिड़ियाँ चुग गईं खेत" वाली कहावत सत्साह करने के हेतु सिर पकड़ कर

रोना होगा, परन्तु फल कुछ नही निकलेगा, आर्य्य जाति में कोई नाम लेवा व पानी देवा भी नही रहेगा।

परन्तु हमें शोक और आश्चर्य्य इस हिन्दू जाति पर है कि इसकी छाती कैसी है? कि इसके लाखों पुत्र पुत्रियाँ इसकी गोद से छिन जाकर दूसरों के पैरों पर जा गिरें और यह निरन्तर सहन करती रहे। अत्यन्त शोक है कि ऐसे दुख को देखते और सुनते हुए भी हम आंखें नहीं खोलते। जब आर्य्य वंश के मर्य्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र, कृष्ण, ईश्वरचन्द्र और दयानन्द जैसे महानुभावों ने जगत की कायापलट कर दी थी, तब ज्ञात नहीं हमारे हाथों से निकले यह अनाथ बच्चे किस समय, कैसे और किस रूपमें जाति और देशकी सेवा करते? परन्तु हर्ष है कि अब हिन्दू-जाति की तंद्रा टूटती जाती है, अब वह इसाइयों के कपटजाल को समझने लगी है; उसे अपने अनाथ बालकों, हिन्दू विधवाओं और अछूत भाइयों की दशा पर दया आने लगी है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि अब कुछ अनाथालय, विधवाआश्रम अछूतोद्धार समितियां और शिक्षालय आदि खोले जा रहे हैं। शुद्धि करना भी लोग अच्छा समझने लगे हैं, और अपने दीन दुखी और असमर्थ देशवासियों को शिक्षित बनाकर, भोजन देकर और प्रेमपूर्वक गले लगाकर उन्हें धर्म्मच्युत होने से बचाने के उद्योग किये जा रहे हैं। परन्तु यह चिरकाल से पददलिता, हिन्दू जाति, यह दारिद्रग्रसित स्वयं अशिक्षिता हिन्दू जाति कहां तक उसमें सफल हो सकती है? जहां एक ओर धर्म्म प्रचार के कार्य्यों में सरकारी सहायताएं मिलें और दूसरी स्वधर्म्म बचाने तक के लिये स्वयं भी भर पेट भोजन न मिलता हो, शरीर रक्षा और लज्जा निवारणार्थ वस्त्रों की व्यवस्था न

हो, वह जाति कहां तक ऐसे शक्तिशाली आघातों और आक्रमणों से रक्षाकर अपने भाइयों को विधर्म्मी होने से रोक सक्ती है? जब तक धन नही, जन नही, बल नही, शिक्षा नही और सहायता नही तब तक बस कार्य्य में सफलता प्राप्त करने में समर्थ होना कठिन ही असम्भव है। परन्तु जब अपने को अपने अधिकार प्राप्त हों, अपने स्वत्वों के उपभोग करने और उन्हें पूर्णरूप से कार्य्य लाने की स्वतंत्रता प्राप्त हो, तो यह सब कुछ मिलकर धर्म्म की रक्षा हो सक्ती है। यदि आप अपने स्वधर्म्म की रक्षा कर संसार मे हिन्दूजाति का अस्तित्व बनाए रखना चाहते हैं तो दृढ़तापूर्वक खड़े होकर अपने अधिकार प्राप्त करने का पूर्ण उद्योग कीजिये। बिना अपने अधिकार प्राप्त किये, अर्थात् बिना स्वराज्य-धिकारी हुए कुछ भी नहीं किया जा सक्ता। एक मात्र स्वराज्य ही वह औषधि है, जिसके द्वारा धन, जन और शिक्षा से परिपूर्ण हो अपने जाति और धर्म्म की रक्षा कर अपने अस्तित्व को बनाए रख सक्ते हैं।

प्रवासी भारतवासी और कुली प्रथा ।

बनकर शर्त्तबन्द जो करते देश जाति बदनाम,
बेच रहे हैं दस्य अर्थ वे मान, धर्म, धन, धाम,
काले कुलीदास कहलाये रही न लज्जा शेष,
फिर जागे नाहिं प्रवास में रहा क्या निःशेष ?

भारत की धर्म्मावस्था का वर्णन के पश्चात् जिस ओर हमारा ध्यान जाता है, वह कुली-प्रथा और प्रवासी भारतवासियों की दुर्दशा और कष्टदायक अवस्था है, अतः इस लेख में हम उसी का थोड़ा सा वर्णन करेंगे।

कुली-प्रथा के रूप में जो क्रूरता इस देशकी प्रतिष्ठा और कीर्ति को पैरों तले कुचल रही है, इससे सहस्रों भारतवासियों के ऊपर जो अमानुषिक अत्याचार होते हैं, वह कठोर से कठोर हृदय में भी करुणा लाये बिना नहीं रह सक्ते। इस चण्डिका की वेदी पर प्रतिवर्ष भारत के आठ सहस्र लाड़िले पुत्र पुत्रियां बलिदान होते चले आये हैं, अर्थात् कुली बनाकर उपनिवेशों को भेज दिये गये हैं, और फिर वहां जिस प्रकार उनपर अत्याचार किये गये हैं, जिस प्रकार भारतीय अबलाओं के सतीत्व पर कठोर कुठाराघात हुआ है, जिस कठोरता से असमर्थ रुग्ण प्राणियों यहां तक कि गर्भ से परिपीड़ित स्त्रियों पर नियम बद्ध कुली होने के कारण काम लेने में क्या व्यवहार किया जाता है, उसके स्मरण मात्र से कलेजा दहल उठता है*। ऋषि, मुनियों की सन्तान अपने

* अभी कुछ दिवस हुए समाचार पत्रों द्वारा ज्ञात हुआ था कि सम्भवत. भारत सरकार फिज़ी निवासी भारतीय शर्त-

भारतीय भाइयों और बहिनों को इस कुटिल जाल में फंसा देख कर, हमारे हृदय में स्वभावतः क्रोधानल धधक उठती है, उनकी दु ख गाथा सुनने से ही चित्त उमड़:आता है।

जिन लोगों का कहना है कि संसार से दासत्व प्रथा उठ गई, मनुष्य जाति स्वतंत्र हो गई, सबके साथ समानता का बर्ताव होने लगा है, निर्बल और सबल का प्रश्न तय हो गया, स्वार्थ और अन्याय का अन्त हो गया और मनुष्य के जन्म स्वत्व संसार में स्थिर हो गये, वे अब स्वयं देखे कि यह सब बातें कहां तक ठीक है।

योरुप को और विशेष कर इंगलैंड को इस बात का कि उन्हों ने संसार से दासत्व प्रथा उठा दी, बड़ा गर्व है यदि इस पर गहन दृष्टि से विचार किया जाय तो ज्ञात होगा कि गोरी सृष्टि के महात्माओं ने कहाँ तक सत्य वात को छिपा रखा है! जो लोग अपने को सभ्य कहने में फूले अंग नहीं समाते, सभ्यता की बड़ी २ डींगे हांका करते हैं, दूसरों को असभ्य और अशिक्षित वा जंगली कहने में जिनकी रसना बिल्कुल लज्जित नहीं होती, जो समझते हैं कि मानो उन्हीं के

बन्दों को, वहां की सरकार को उनके बदले एक निश्चित धन (Ransom) देकर छुटकारा दिलाया चाहती है। देखें यह समाचार कहां तक और कब ठीक निकलता है। दूसरी ओर पत्रों में यह भी देखने में आया कि दक्षिण अफ्रिका स्थित भारतवासियों पर फिर अत्याचार होने लगे हैं और उन्हों ने फिर महात्मा गांधी को स्मरण किया है। समझ में नही आता दोनों बातों में क्या रहस्य है।

सिर सभ्यता का ताज रख दिया गया है, और जो अपने को सभ्यता का माता पिता (जन्मदाता) बनने का दम भरते है, और जिन्हों ने न्याय और सभ्यता का एक प्रकार से ठेका ही ले लिया है, उन सभ्यता के विषय मे लम्बी चौड़ी हांकने वाले मसीह के शिष्यों से हमारा यह पूछना है कि उनके उपनिवेशों में हमारे भारतीय भ्राताओं, हमारी बहिनों और बालक-बालिकाओं के साथ जैसा वर्त्ताव होता है, क्या कभी उन्हों ने इसका विचार तक किया है !

वे, जो शर्त्तबन्दी की दासता में वहां भेजे जाते हैं, मुंह में जिह्वा होते हुए भी बोल नहीं सक्ते। उन पर अत्याचारों की भरमार भले ही हो पर उसका प्रत्युत्तर व विरोध वे नहीं कर सक्ते। वे योग्यता में पूर्ण और ज्ञान सम्पन्न हों, किन्तु प्रतिष्ठा के पात्र नहीं हो सक्ते। उनके हाथों में बल होते हुए भी वे टोंटे हैं, पैरों में उठने की शक्ति और साहस होते हुए भी अपंगु है। अपनी हानि होते हुए देखकर भी अन्धे हैं। दासत्व प्रथा में बंधे हुए प्रवासी-भारतीयों की उस दशा पर सभ्यता के सहरे को बांधे हुए वाले लोगों ने क्या कभी विचार किया है ? आज इंगलैण्ड का एक छोटा सा बच्चा स्वच्छन्दता पूर्वक समस्त संसार का चक्कर लगा सक्ता है; अमेरिका का कोई निवासी संसार भर के नगरों में निर्भय होकर आनन्द से घूम सक्ता है; जापान के बीर बांकुरे सृष्टि के प्रत्येक देश की गली २ छान सक्ते हैं, परन्तु इस रत्न गर्भा, वीर प्रसविनी भारतभूमि का कोई पुत्र बिना अपने स्वामी की आज्ञा के बाहर तक नहीं जा सक्ता। हा दासता ! हा परतंत्रता !!

हमारी निर्बलता और दासता का एक मात्र ज्वलंत उदाहरण यही है कि भारत में विदेशी आकर सुख चैन की बंशी

बजावें, और हम जो इसी देश के रहने वाले हैं, द्वार २ ठोकरें खाते फिरें, लोगों की घुड़कियां सहते फिरें, जिधर जांय उधर ही धक्के खायं, परन्तु मुंह से बोले तक नहीं। उपनिवेशों में कुली बनाकर भेजे जावे और मार खाते २ समस्त आयु व्यतीत हो जावें परन्तु आराम न पावे-विश्राम न ले सकें। हमपर ठोकरों की भरमार हो, चोर-डाकुओं से भी बुरी गति हो, हमारी बहिनों पर अमानुषिक अत्याचार हो, परन्तु हम रसना तक नहीं हिला सक्ते। यदि कुछ कहा भी, तो बस असभ्यता की सीमा ही तो उलंघन कर गये। यथार्थ बात तो यह है, भारत के पुत्र जब स्वयं अपनी जन्मभूमि, अपनी मातृभूमि और अपने देश में ही अपनी जननी की गोद में ही अपने स्तत्वों के अधिकारी नहीं है, तो घर से बाहर रहकर दूसरे देशों में उनकी क्या पूछ हो सक्ती है।

एक विद्वान का कथन है, जिन जातियों की आत्माओं में जातीयतका कुछभी अभिमान है, देशहितैषिता है, स्वाभिमान और देशका गौरव है, और अपनी प्रतिष्ठा का ध्यान है, उन पर प्रथम वो अत्याचार होते ही नहीं, और अभाग्यवश निर्बलता के कारण उनपर अत्याचार हो भी गया तो वे उस अत्याचारी को सच्चे देशप्रेम से भरे हुए उत्साह के साथ प्रतिफल देती है और उस उत्साह में उसके साथ संसार की समस्त शक्तियां हाथ बढ़ाती हैं। यदि उस अत्याचार को उसके देश और राष्ट्र या जाति ने चुपके से सहन भी कर लिया फिर क्या? बुरा हो गया, उसका जातीय अभिमान धूल में मिलकर नष्ट हो गया, और वह जाति और उसकी भावी सन्तति उस अत्याचारी के हाथ की कठ पुतली बन गई। भारतवर्ष की ठीक ऐसी ही दशा है। यदि किसी

मनुष्य के थोड़ा सा भी हृदय है और मनुष्य जाति से उसे कुछ भी प्रेम है, तो संसार में सब से अधिक कष्टदायक और विषादोत्पादक दृष्य उसके लिये वह होगा कि फ़िज़ी में वह भारतवासी-प्रवासियों की कुली लोगों को देखले ।

वे लोग तारकोल से पुतीहुई कोठरियों में रहतेहैं ,जो बहुव छोटी और फ़र्शरहित होती है । उसीमें सब कुटुम्बका प्रत्येक कार्य्य होताहै, साथही जानवर भी उसीमें बधे रहते हैं। प्रत्येक मनुष्य के चेहरे से नीचता, भृष्टना और बदमाशी टपकती है शरीर से दुर्गन्ध छूटती है । जहाँदखेको,वहीं अशुद्धता , मलीनता और नीचता कीं गध आती है । दुराचारिराशि पापमयी स्त्रियाँ पापकी पुरुषो पर ताने मारती हुई अथवा एक दूसरे से लड़ती हुई और क्रोध में आखे बनातीहुई दीख पड़ती है । वास्तव में वह दृष्य बड़ा करुणाजनक, घृणास्पद और असहनीय होता है ।

पूर्व उसके कि हम उपनिवेशों में भारतियों की दशा का और अधिक वर्णन करें; यह लिख देना चाहते है कि आर-काटी लोग किस प्रकार से भारतीयःस्त्री-पुरुषों को वहाँ का कर वहाँ भेजते हैं ?

सरहेनरी काटन महोदय का कहना है-

" बहुत से स्थानों मे अरकाटी लोग अपराध पूर्ण रीतितों प्रयोग में लाकर धोखा देकर और धमकी से इन अभागे मज़दूरों को कुली-डिपो में अथवा रेलवे-स्टेन पर ले जाते हैं । पूर्व इसके कि उनके मित्रों और सम्बन्धियों को इस बात की कुछ भी सूचवा मिले, वहाँ से वे फ़ुस्लाये जाकर दूसरे स्थानों

में भेज दिये जाते हैं *। फौजदारी की कचहरियों के पुराने विवरण ऐसे ही कितने अभियोगों से भरे पड़े हैं, जिनमें बेचारे मज़दूरों को धोका देकर युवा लड़के और विवाहित स्त्रियों को चुराकर दूसरे स्थानों में भेजा और रखा गया था, वहाँ अन्याय के साथ उन्हें बन्ह कर रखा था, धमकी दी गई थी और उनपर सरासर अत्याचार किये गये थे।

हमारे भाई और बहिनों को बहकाने के लिये अरकाटियों ने जो एक नवीन भूगोल बना रखा है और उनसे कहते हैं-

"चीनीटाड (ट्रिनीडाड़) में केवल चीनी छाननी पड़ती है, बारह आना प्रति दिन मिलते हैं, यह कलकत्ते के समीप है। फ़िज़ी में लोग गन्ने और कैले खाकर चैन की वंशी बजाते हैं; यह कुछ दूर नहीं है और साक्षात् स्वर्ग। श्रीराम (सुरीनाम) हिन्दुओं की तिथि स्थान है। गमैका कलकत्ते का मुहल्ला है, पुरुषों को बारहआन, और स्त्रियों को नौआने, प्रतिदिन दिये जाते है"।

यह सब बातें अरकाटियों की गड़ी हुई हैं। गाँव के वे पढ़े कनुष्य वह जो अपने गांवों और ज़िलों से कभी नहीं निकसते हैं इनमनोहर बातों को सुनकर बहक जावें तो अचम्भा ही क्या है? वे क्या आने की ट्रिनीटड, फ़िज़ी और जमैका आदि कहाँ है? अधिकतर अरकाटी ऐसे मनुष्यों को बहकाते हैं—

---

* इन बातों का वर्णन हम तो यहां संक्षेप में करेंगे, जो पाठक इस विषय में हरबात का ज्ञान करना चाहें, वे 'सरस्वती सदन' इन्दौर से ' एक भारतीय हृदय ' महाशय द्वारा लिखा हुआ 'प्रवासीभारतवासी' नामक ग्रन्थ मंगाकर पढ़ें। मू० ४) है।

अचम्भा ही क्या है? वे क्या जाने कि ट्रिनीडल, ज़िज़ी और जमैका आदि कहां हैं? अधिकतर अरकाटी ऐसे मनुष्यों को को बहकाते हैं— .

'ऐसी स्त्रियां जो अपने पति अथवा किसी अन्य सम्बंधी से झगड़ा होने के कारण घर से निकल भागती हैं। वह नवयुवक जो देश विदेश घूमने के लिये अपने घर से चले आये हों और ऐसे किसान जो जिमीन्दारों के अत्याचारों के कारण भाग जाते हैं'।

अरकाटी लोग इन्हें फुसला कर डिपो में भेज देते हैं, जहां से नाम ग्राम आदि बदल कर वे फ़िज़ी तथा अन्य स्थानों में भेज दिये जाते है। नामादि बदलने का प्रभाव यह होता है कि घरवालों को उसके कारण उनका कोई पता न लग सके।

पढ़े लिखे मनुष्यों को बहकाने को इनके ढंग और ही होते हैं। इसके स्थान में कि चीनी आदि छाननी पड़ती है, वे उनसे कहते है—"कलकत्ते के अमुक २ मुहल्लों में हमारे स्कूल हैं, वहां पढ़ाने के लिये हमको मास्टर चाहियें। वेतन १५०) और २००) तक दिया जाता है। स्त्रियों में ये उन्ही को बहकाते हैं जो अपने पति से लड़कर मां के यहां जा रही हों, जो यात्रा कर रही हो' अथवा जो अपने पति वा अन्य किसी सम्बन्धी के समीप जा रही हों। उनसे वे यह कह कर कि 'हम उन्हें (तुम्हारे सम्बन्धियों को) जानते हैं, तुम्हें उनके पास पहुंचा देंगे, डिपो में ले जाते हैं और वहां से यथा स्थान भेज देते हैं।

अब हम यह लिखना चाहते है कि डिपो और उपनिवेशों में उनके साथ किस प्रकार का बर्ताव किया जाता है वहां

उनकी क्या दशा होती है ?

डिपो में पहुंचने पर सब से पहिली दुर्दशा जो स्त्री पुरुषों की होती है, वह यह है, कि उनके धर्म्म कर्म्म सब नष्ट कर दिये जाते है, क्योंकि ब्राम्हणसे लेकर चमार तक सबको एक ही साथ भोजन करना पड़ता है। जो लोग सहभोज के पक्ष में हैं, वे भी इस मलियामेट कार्य्य को कभी पसन्द नहीं कर सक्ते, परन्तु वहां पर ऐसा करने के लिये वे बाध्य किये जाते हैं और सबको एक साथ बलात्कार भोजन कराया जाता है। साथ ही वहां स्त्री पुरुषों के आचरण भ्रष्ट होकर वे दुराचारी हो जाते हैं। सब प्रकार के स्त्रीपुरुषों को भेड़, बकरियों के समान एक साथ एक ही घर में ठूंस दिया जाता है, उसके जो भयंकर परिणाम होते हैं वह अवर्णनीय है, और विचार करनेसे वे स्वयं ही जाने जा सक्ते है। डिपो से जहाज पर चढ़ाये जाने के पूर्व ही स्त्री पुरुषों के जोड़े बना दिये जाते हैं, अर्थात् यह कि कौन स्त्री किस पुरुष के साथ पत्नी-वत् रहेगी, इससे चाहे जिसकी स्त्री चाहे जिस पुरुष के साथ कर दी जाती है। जब बेचारी अबलाओं को अपनी इस दशा का पता चलता है, तो रोना आरम्भ करती है, परन्तु जिस प्रकार कसाई के यहां गाय की कुछ नही चलती, बेचारी इन अबलाओं का भी रोना कलपना वहां व्यर्थ हो जाता है।

इसके साथ जो प्रतिज्ञापत्र कुलियों से लिखाया जाता है, वह भी भ्रममूलक होता है। शर्तबन्दी के यथार्थ नियम बेचारे स्त्री पुरुषों को नहीं बताये जाते। शर्तनामे में कुली के लिये बारह आना दैनिक लिखाये जाते हैं, परन्तु उसे यह नहीं बतलाया जाता कि यह उपनिवेशों के पांच आने हैं। स्त्रियों

को नौ आने बतला कर उनसे कहा जाता है कि 'उन्हें खेतों पर काम करना पड़ेगा। वे समझती हैं कि वहां खेतों पर वैसे ही काम करना होगा जैसे भारत में, और उनके बाल-बच्चे उनके समीप खेलते रहेंगे। परन्तु फ़िजी में तो बात ही दूसरी है। वहां इन बेचारी अबलाओं को अपने बालकों को कुलीलेनो में छोड़ कर समस्त दिवस खेतों में काम करना पड़ता है। विश्राम तनिक नही मिलता, उन्हें इतना भी अवसर नहीं दिया जाता :कि अपने बाल बच्चे और पतियों के लिये भोजन तक बना लें। न उन्हें यह बतलाया जाता है कि वहां पर पांच वर्ष तक उन्हें लज्जारहित अशिच्छावस्था में जीवन विताना पड़ेगा। यह बातें स्पष्ट बतलाती हैं कि शर्तनामें नितान्त भ्रममूलक और त्रुटिपूर्ण होते हैं। वेचारे कुलियों को इस बात का बोध नही होता कि किन २ नियमों के आधीन रहकर उन्हें काम करना पड़ेगा, वहां पर उनकी सामाजिक-स्थिति क्यो होगी और कैसा जीवन विताना होगा? वहां पहुंचने पर उनकी दशा और ही होती। वहां का जलवायु हानिकारक है। छोटे २ अपराधों के लिये कड़े २ दंड दिये जाते हैं, ओवरसीयरों की ठोकरें खानी पड़ती हैं, और उनका वेतन काट लिया जाता है। उनके कोटिम्बक जीवन का तो अभाव ही होता है.........आदि।

डिपो से चलकर जहाज़ों पर बैठने पर जिस स्थिति में मज़दूरों को रहना पड़ता है, वह भी अच्छी नहीं होती। स्त्रियों की लज्जा का कोई ध्यान नहीं रखा जाता; जाति और धर्म्म सम्बन्धी सब बन्धन तोड़ दिये जाते हैं। जिन निस्सहाय अभागे मनुष्यों को उच्चकुल में उत्पन्न होने का कुछ भी अभिमान होता है, वह अपने आतमसम्मान की रक्षा

के लिये प्रयत्न करते हैं, परन्तु बेचारों का यह मरम भेदी प्रयत्न प्रायः सफल नहीं होता और निदान उन्हें दैवाधीन होकर कुली लेनो की अश्लील बातों और दुराचारों के सामने मस्तिष्क झुकाना पड़ता है। सब लोग एक साथ एक ही स्थान में भर दिये जाते हैं, विवाहित पुरुषों और उनकी स्त्रियों के लिये कोई अलग स्थान नहीं दिया जाता। इस प्रकार की अवस्था में जाने वालों का चरित्र भ्रष्ट हो जाना साधारण सी बात है। जहाज़ में बैठकर शाकभोजी रहना सर्वथैव असम्भव है, चर्बी अथवा मांस ही खाना पड़ता है, इससे कट्टर हिन्दुओं को जो कष्ट होता है, क्या वह वर्णन किया जा सक्ता है? जब बहुत से लोग इस आचार भ्रष्टता को सहन नहीं कर पाते, तो बेचारे अपनी धर्मरक्षार्थ मार्ग ही में समुद्र में कूद कर उस नर्क से पीछा छुड़ाते और आत्मघात द्वारा उस अभक्षण पाप का प्रायश्चित करते हैं।

अब उपनिवेशों में उनकी दुर्दशा का चित्र देखिये—

भारतीय स्त्री पुरुषों को खेतों पर जो काम करना पड़ता है, वह उनकी शक्ति से बहुत अधिक होता है। बहुत से ऐसे मनुष्य होते हैं, जिन्हों ने तो क्या कभी उनके पूर्व पुरुषों ने भी कुलीगिरी का काम नहीं किया? उन्हें ही बड़े २ भारी टूलोंको लेकर खेतों पर नौ २ दस २ घंटे काम करना पड़ता है। पुरुष तो मर गिरकर आधा पौन काम कर भी लेते हैं परन्तु लड़कों और बेचारी स्त्रियों को यह कार्य्य करना सर्वथा असम्भव है। जितना कम कार्य्य होता है, वेतन भी उतना ही कम दिया जाता है। फिर भी यदि वे उस कार्य्य को ठीक नहीं कर पातीं तो पीटी जाती है, उन पर जुर्माना किया जाता है, यहां तक की जेल में भेज दी जाती है। खेतों पर कार्य्य

करते २ उनकी आकृति बदल जाती है, वह पीड़ित और विदीर्ण हृदय दीख पड़ती है और उदास व उद्विग्न हो जाती हैं। वहां से लौट कर उन्हें अपने स्वामियों के लिये भोजन बनाना होता है। कुली लेनों से खेत बहुधा दो दो मील के अन्तर पर है, जिसके जाने में डेढ़ घण्टा लगता है। इस प्रकार बारह घण्टे तो खेत और मार्ग ही में लग जाते हैं। फिर भोजन बनाने का समय अलग। बाल बच्चे बालिकों को पालन पोषण के लिये समय चाहिये। परन्तु समय कहां? बेचारियों को नियम के अनुसार अपने बालकों को कुली लेन में ही छोड़ जाना पड़ता है। यदि कोई मोह के कारण कभी अपने प्यारे बत्स को देखने के लिये चली आवे तो उस पर मार पड़ती है। भला भारतीय कोमलांगी रमणियां उस कष्ट और दुर्दशा को कहां तक सहन कर सकती हैं, इसके लिखने की हम आवश्यकता नहीं समझते, उसे सभी पाठक जानते हैं।

खेतों पर तो यह दशा होती है, अब जो मनुष्य अपनी कारीगरी और चतुरता (Skill) के कारण मिलों में काम करने के लिये रखे जाते हैं, उनकी दुर्दशा भी कुछ कम नहीं हैं। उन्हें सप्ताह में प्रति रात बारह घंटे काम करना पड़ता है। उन्हें भी वेतन बहुत कम मिलता है और काम करने वालों का वेतन वैसे ही काट लिया जाता है जैसे खेत के मजदूरों का। मार पडती है सो अलग। यदि वहां काम करतेर पेंच में आकर कभी किसी का अंग भंग हो जाय, तो उसपर भी ध्यान नहीं दिया जाता, किन्तु वेतन काटे जाने का दण्ड और भोगना पड़ता है।

परन्तु एक साधारण प्रतिज्ञाबद्ध कुली के लिये (स्त्री वा

षुरुप) खेतों और मिलो का जीवन विशेष चिंता कर्षक नहीं होता, वरन जिस दशा में उन लोगों को कुली लेनों में रहना पड़ता है वह बहुत ही भयंकर और असहनीय होता है। पाठकगण? आप से हमारा निवेदन है कि वहां का दृश्य देखने के पूर्व अपने हृदय को पकड़ लीजिये और तब अपने नेत्र खोलिये।

सरकारी नियम के अनुसार सौ पुरुषों के लिये चालीस स्त्रियां भर्ती करके उपनिवेशों को भेजी जाती हैं। इससे सहज ही विचारा जा सक्ता है जहां पुरुषों की संख्या से स्त्रियों की संख्या आधी से भी कम हो, वहां व्यभिचार की क्या दशा हो सक्ती है? यह लिखा ही जा चुका है कि अरकाटी लोग डिपो ही में कुत्ते कुत्तियों की भाँति उनके जोड़े मिला देने का प्रयत्न करते हैं। स्त्री सधवा हो अथवा विधवा, हिन्दू पति की स्त्री मुसलमान हो वा मुसलमान पति की स्त्री हिन्दू, इस बात पर अरकाटी विल्कुल ध्यान नहीं देते। यद्यपि वहुत कम स्त्रियें अपने पतियो के साथ उपनिवेषों को जाती हैं, तथापि थोड़ी देर के लिये यह मान भी लिया जाय कि इन चालीस नारियों में पन्द्रह अपने पति के साथ जा रही है, तो पच्यासी पुरुष और पच्चीस स्त्रियां बचीं। एक तो स्त्रियों की संख्या पुरुषों से आधी तिहाई दूसरे उनकी जाति, रीति ढंग और धर्म्म-कर्म नष्ट हो जाना, फिर सबका अशिक्षित होना और तिस पर भी कुली लेन जैसे भ्रष्ट स्थानों में निवास; यदि इन स्थितियों मे स्त्रियां व्यभिचारिणी और पुरुष परस्त्रीगामी वन जावें तो आश्चर्य्य ही क्या है? अब इन ८५ पुरुषों में २६ स्त्रियें के लिये लड़ाई झगड़ा होता है, सिर फूटते हैं, हत्याएं होती हैं दण्ड मिलते हैं और

फांसिया लगती हैं। इन सब झगड़ों को मिटाने के लिये वहां की गवर्नमेन्ट एक एक स्त्री को तीन २ पुरुषों के साथ कर देती है अर्थात् एक स्त्री तीन पुरुषों की पत्नी बन कर रहती है। जब एक शर्त बन्दी भारतीय रमणी को तीन २ शर्तबन्दी पुरुषों और कितने ही अन्य पुरुषों का काम चलाना पड़ता है तब इसके फल स्वरूप गर्मी, सूजाक के फैलने में क्या सन्देह हो सक्ता हैं ?

इतना ही नहीं वहां के ओवरसीयर तथा अन्य सरकारी मनुष्यों का आचरण और वर्ताव भी स्त्रियों के प्रति बड़ा बुरा होता है। प्रायः गोरे अंग्रेज यह विचार करते हैं कि एक काले मनुष्य (भारत वासी) को अपने शरीर पर कुछ अधिकार नहीं है, ये उनकी दृष्टि में पवित्र भी नही मानी जाती। यदि कोई स्त्री अपने सतीत्व को बचाने के लिये प्रयत्न करती है, तो भीं गोरे आदमी नहीं मानते। कोठियों के गोरे अविवाहीत अफ़सर भारतीय रमणियों के सतीत्व नष्ट करने के ही उपाय सोचा करते हैं। वे कोठियों के सर्दारों से कह सुन्दर स्त्रियों को बुलवाते हैं और बलात्कार उनका सतीत्व हरण करते हैं। इसके अतिरिक्त यदि कोई स्त्री कहीं रूपवती हो तो कोठी का व्यवस्थापक (Manager) इस स्त्री को रोक लेता है और उसके स्वामी को लौटा देता हैं। वह इमीग्रेश आफिस में यदि रिपोर्ट करता है तो

* हमारे नगर में एक मनुष्य रहता है वह फिज़ी से लौट कर आया है, उसने इसी प्रकार कीं बातें तथा, अन्य बहुत सी बातें हम सुनाई है, ज़ो बड़ी हृदय वितारक और रहस्य पूर्ण है उन्हें हम फिर कभी अलग छोटी सी पुस्तका के रुप मे प्रकाशित किया। प्रकाशक

उसकी कोई सुनाई नहीं होती, बेचारा रोता हुआ इधर उधर मारा २ फिरता है।

इसी बात को दूसरे शब्दों में यों लिख सक्ते हैं कि फ़िजी ही नहीं, किन्तु सब उपनिवेशों के भारतीय स्त्री पुरुषों के जहां वे कुली बना कर भेजे जाते है, आचरण दिन प्रति दिन निकृष्ट होते चले जाते है, और यदि दो चार वर्ष तक भारत फ़िज़ी की ओर से इस प्रकार बेसुध रहा तो फिर वहां के भारतीयों का उद्धार करना असम्भव हो जायगा। क्यों कि वहां की भारतीय विशेपतः हिन्दू रमणियों का समाज एक ऐसी नौका के सदृश है कि जिसमें पतवार नहीं, जिसका मस्तुल टूट गया है और यों चट्टानों की ओर बहती चली जा रही है। उसका पार लगाने वाला कोई नहीं। फ़िजी की हिन्दू स्त्रियां एक पति को छोड़ कर दूसरे पुरुष के पास चली जाती हैं, अथवा बल पूर्वक भेज दी जानती हैं, परन्तु इसमें उन्हें कोई लज्जा नही आती है। हिन्दू पुरुषों का भी समाज छिन्नभिन्न हो गया है, जाति पांति का कोई ठिकाना नहीं, और सामाजिक संगठन नाम मात्र को भी नहीं रहा है।

इस प्रकार की बातों से किसी भले मनुष्यका हृदय विना कम्पायमान हुए नहीं रह सक्ता। परन्तु हमारे देशवासियों की सोती हुई आत्माएं इस चैतन्यता जागउठने का नामतक नहीं लेती; और देशके दुर्भाग्य से यह भी बात है कि साधारण से साधारण अपराधों को खोज में तो पुलिस की चैतन्यता और सर्कारकी दृष्टि बड़ी तीव्र होती है, परन्तु आरकाटियों को उनकी टेढ़ी चालों और दुष्टता की पूरी खोज और उसके दण्ड के लिये वे और उनकी आत्मा इतनी शान्त रहती है कि

मानो कहीं कुछ हो नहीं रहा है। यदि भारत के किसी नगर में कोई व्यभिचार गृह खुल्लमखुल्ला खुले, तब तो स्थानीय म्यूनीसिपेलिटी और अधिकारी मण्डली अपने कोपसे उसके काम करने वालों को भस्म कर डालने में तनिक भी विलम्ब नहीं करेंगे, परन्तु इसका किसी को ध्यान तक नहीं होता कि व्यभिचारका सबसे बड़ा प्रत्यक्ष अड्डा इस समय फ़िज़ी है। एक २ स्त्री के चार २ पाँच २ पति होते है, एक २ घर में दो तीन स्त्रियाँ और दस पंद्रह पुरुष रहते हैं, दिन रात और खुल्लमखुल्ला व्यभिचार होता है, पशुमात किये जाते हैं, पति पत्नी वस्त्रों की भांति बदले जाते हैं, स्त्रियां वेश्याएं हैं और पुरुष पक्के लम्पट, बच्चों के पिताओं का पता नहीं, वे आरम्भ से लम्पटता के पालने में पलते है, यह सब पतित होते हैं, परन्तु स्वयं पतित नहीं हुए, उस पतित देश के कारण उन्हें पतित होना पड़ा है। संसार का एक भाग भारत का परिचय इस कलंक क्षेत्र और उस व्यभिचार से पाता है। व्यभिचार और आचरणों के नाशकारी, पर अपने कोप का वज्र गिराने वाला संसार और उसकी सत्ता सृजक सरकारें इस आचरण नाश के व्यापार को देखती है और आंखें फेर लेती हैं। इतना ही नहीं, किन्तु वे अपनी आत्मा की हत्या करके इस प्रकार के व्यभिचार के क़ानूनी अड्डे और हाटों की रचना करते हैं, क्योंकि उनके कारण ही प्रत्येक नव कुटुम्ब जो भारतवर्ष से फ़िज़ी पहुंच कर वहां की कुली लेनों में प्रवेश करता है, वहां के कुत्सित वायु मण्डल से प्रवाहित होकर उसी रोग में फंसा दिया जाता है। पति से कहा जाता है कि तुझे अपनी पत्नी व्यभिचार के लिये दूसरों को देनी होगी क्योंकि यहां कितने ही पुरुष स्त्री विहीन हैं' यह यहां का नियम है। यदि

प्रथम २ वह इस पर आपत्ति करता है (जैसा कि स्वाभावितः है) तो उससे कहा जाता है 'यह भारत नहीं, फ़िज़ी है, यहां की रीति ही नहीं है'। सुतरां वह किसी न किसी प्रकार इस कार्य्य के करने के लिये वाध्य किया जाता है और अन्त में उसे ऐसा करना पड़ता है इस आचरण विनाश का फल यह हुआ है कि फ़िज़ी के भारतीय कुलियों की पापवासनाएं इतनी बढ़ गई हैं कि वहां के प्रति सौ अपराधियों में लगभग नब्बे (९०) भारतीय ही होते हैं। मारकाट, आत्महत्याएं, लड़ाई झगड़े और स्त्रियों के लिये उपद्रव इतने बढ़ गये हैं कि फ़िज़ी के भारतीय कुली सदाचार और धर्म्म को जानते ही नहीं, और वे नहीं जानते कि प्राचीन हिन्दू पद्धती की आज्ञाएं उलंघन करना कहते किसे हैं? 'एक भारतीय हृदय' महोदय प्रवासी भारतीय कुलियों की दशा का वर्णन करते हुए लिखते हैं—

अधम आरकाटी कहता था, फिजी स्वर्ग है भूपर,
नभ के नीचे रहकर भी वह पहुंच गया है ऊपर।
मैं कहता हूं फ़िजी स्वर्ग है' तो फिर 'नर्क कहां है'?
नरक कहीं हो किन्तु नरक से बढ़कर दशा यहां है॥
दया भले ही न हो नरक में न्याय किया जाता है,
किन्तु यहां आ फंसता है जो दण्डमात्र पाता है।
यमके दूत निरपराधों पर कब प्रहार करते हैं!
यहां निष्ठुरों के हाथों हम बिना मौत मरते हैं॥
ढोर कसाई खाने में बस भूख प्यास सहते हैं,
जोते कभी नहीं जाते हैं बंधे मात्र रहते हैं।

नियमबद्ध हम अभ पेटों को खेत गोड़ने पड़ते,
अवधि पूर्ण होने के पहिले प्राण छोड़ने पड़ते ॥
गीध मरी लोथे खाते हैं पर यह नृपशु निरन्तर,
हाथ चलाते यहां हमारी जीती अबलाओं पर ।
भारतीय कुलियों का मानो फ़िजी स्मशान हुआ है,
हाय मनुजता का मनुजों से यों अपमान हुआ है ॥
भूमि, रामजाने किस की है ! श्रम है यहां हमारा,
किन्तु विदेशी व्यापारी ही लाभ उठाते सारा ।
जड़यंत्रो को भी तैलादिक पूर्ण दिया जाता है,
अर्द्धाशन में हमसे दूना काम लिया जाता है ।
हाथों में छाले पड़ जावें तो भी धरती गोड़ो,
रोगी क्यों न रहो जीते जी काम कभी मत छोड़ो ।
ये गन्ने के खेत खड़े हैं इनसे खांड बनेगी,
जिससे तुम्हीं भारतीयों की मीठी भंग छनेगी ॥
भारतवासी बन्धु ! हमारे तुम यह खांड न लेना,
लज्जा से यदि न हो घृणा से इसे न मुंह में देना ।
हम, स्वदेशियों के शोणित में यह शर्करा सनी है,
हाय हड्डियां पिसी हमारी तब यह यहां बनी है !
वह देखो किसकी ठोकर से किसकी तिल्ली टूटी !"
धरती लाल हुई शोणित से हाय खोपड़ी फूटी ?
अपनी फांसी आप कौन लगा रहा है देखो,

जीवन रहते विवश मृत्यु को जगा रहा है देखो ॥
देखो दूर खेत में है वह कौन दुखिनी नारी ?
पड़ी पापियों के पाले है, वह अबला बेचारी ।
देखो कौन दौड़कर सहसा कूद पड़ी वह जल में ?
पाप जगत से पिण्ड छुड़ाकर डूवी आप अतल में ॥
न्यायदेवता के मन्दिर में देखो वह अभियोगी—
हो उलटा अभियुक्त आपही हुआ दंडका भोगी ।
प्रतिवादी वादी बन यैठा वह ठहरा अधिकारी,
'छुरी और खरबूजे वाली' इस बिधिकी बलिहारी ॥
डूबे हुए पसीने में वे कौन आ रहे देखो ?
आंखों में भी स्वेद-बिन्दु या अश्रु छा रहे देखो ।
परवश होकर दस २ घण्टे है वे खेत निराते,
सांझ हुए पर गिरते पड़ते डेरों को हैं जाते ॥
दसनर पीछे तीन नारियां थकीं और शंकित सी—
देखो लोट रही हैं कैसी पत्थर में अंकित सी ?
बुझे हुए दीपक से मन है नहीं निकलती वाणी,
हे भगवन ! मनुज है यह भी अथवा गूंगे प्राणी ?
सुनो, फ़िज़ीवासी असभ्य वे हम से क्या कहते है—
क्या तुमसे ही जघण्य जन भारत में रहते है ?
धिक ! है उसको जिसके सुत यों घोर अनादर पावें,
मनुज कहाकर पशुओं से भी बढकर समझे जावें ॥

हे भारत के वीर वकीलों ! हम क्या उत्तर देवे ?
अथवा यह अपमान तुम्हारा चुप रहकर सहलेवे !
अब भी 'गांधी' जैसे सुत की जननी भारतमाता !
तुझसे यह दुर्दृश्य निरन्तर कैसे देखा जाता ?
देकर अन्न दूसरो को भी मां ! तू पालन करती,
पर तेरी सन्तति उसके हित परदेशों में मरती।
मरना ही है तो जननी ! घर ही में न मरें क्यो ?
परवश होकर यहा आप ही अपना घात करें क्यों ?
रख न सके हम पुत्रों कोही होकर भी जो घरणी,
भरण न कर सके हाय ! हमारा भी भव भरणी--
तो हे भगवन् ! भारतीयों की तनिक तुम्हीं सुधि लीजे,
वहीं नरक है मरने को ही जग में जन्म न दीजे।

कौन ऐसा भारतवासी होगा, अपने प्रवासी भाइयों विशेषतः रमणियों की इस दुर्दशा को सुन पढ़ कर जिसके हृदय पर चोट न पहुंचे ? जिस भारत की ललनाएं अपने सतीत्व के कारण समस्त संसार में पूज्या समझी जातीं थीं, जहां पर परपुरुषों को देखना तक पाप माना जाता था, भारत की उन्हीं ललनाओं की फ़िज़ी में यह दशा हो ? वे बलात्कार वेश्यायें बनाई जांय, उनसे घृणोत्पादक और लज्जित कर्म कराये जाँय। हा हन्त! हा जिस भारतीय स्त्री जाति के हृदय पर सतीसाध्वी सीता के पवित्र चरित्र की छाप लगी हो, जिसके आदर्श चरित्र का उन्हें गर्व हो कि अपने पति तक से अपनी शंका का तिरस्कार नहीं सहा, और पृथ्वी गर्भ में

चली गईं, चित्तौर की पद्मिनी और राजपूताने की अन्य रमणियों के नाम प्रातःकाल लेने में जो अपना अहोभाग्य इसलिये मानती हों कि उन्होंने विधर्मियों से धर्म्मरक्षार्थ प्रज्वलित अग्नि में अपने कोमल शरीरों की आहुति दे दी, जिनके सामने सती, सावित्री, दमयन्ती आदि के आदर्श चरित्र विद्यमान हैं, और जिन में अब भी श्रीमती गांधी देवी सरोजिनी आदि जैसी परोपकारिणी, आदर्श-चरिता, प्रातः स्मरणीया देवीयां विद्यमान हैं, उन्हीं भारतीय रमणियों की भारतीय देवियों की उपनिवेशी में यह गति की जाय? प्यारे भारतवासियों! क्या भारतीय-रमणियों के उपनिवेशों से आने वाले यह आर्त्तनाद तुम्हारे हृदयों पर कुछ प्रभाव नहीं डालते? शोक है हमारे आप के लिये कि हम आनन्दपूर्वक घर में बैठकर सुख से दिन व्यतीत करें और मर्य्यादा की रक्षार्थ हमारे भाई बहिन प्रवास में यह यन्त्रणायें भोगें और फिर भी उनकी धर्म्मरक्षा न हो। क्या वे मातायें और कन्यायें जो यहां आदर्श मातायें हुई होतीं, भारतवासिनी नहीं हैं? वे भारतीय-सभ्यता की स्तम्भस्वरुप थीं, जिनके नैतिक आचरण के सामने संसार को नीचा सिर करना पड़ता था, किन्तु उपनिवेशों में उनकी दशा ही परिवरितित हो गई। वे इतनी चरित्र हीना हो गई हैं, नहीं २ स्वयं नहीं, किन्तु कुली प्रथा ने उन्हें इतनी चरित्र भ्रष्टा बना दिया है कि हम उन्हें अपनी माता बहिन कहने में संकोच करेंगे। वास्तव में वे इतने गिर गये हैं, इतने पतित बना दिये गए हैं कि शब्द नहीं जिनमें उनकी यंत्रणाओं का वर्णन किया जाय। आप का हृदय उनकी दशा के स्मरणमात्र से रोष में भर जाना चाहिये। ये रोटी के टुकड़े के लिये बाहर जाकर पतित हों,

क्या इसके लिये हम आप उत्तरदाता नहीं हैं ! और क्या उनके इस कार्य्यों से भारत कलंकित नहीं होता ? परन्तु इस अवस्था के मिटने का उपाय धक के अतिरिक्त और कोई नहीं है कि कुली प्रथा का अन्त हो जाय। यदि हमारे प्रभू उसका अन्त करने में हिचकते और डरते हैं, तो देश के शुभनाम और उसकी कीर्ति के लिये हमें इस प्रथा का गला घोंट देने में तनिक न हिचकना चाहिये यदि आपको अपने चालीस सहस्र भाइयों पर प्रेम है, यदि आप उनको अपना अंग समझते हैं, उन्हें भारत की सन्तान मानते हैं, और यदि आपको अपने देश से प्रेम है, यदि आप में मनुष्यत्व है, आप में राणाप्रताप, शिवाजी, लक्ष्मी और सावित्री का रक्त शेष है, यदि उनके समान आपने भी अपने गौरव के लिये अपना शरीर देना सीख लिया है, तो अपनी प्रवासिनी माता वहिनों और प्रवासी भाइयों के नाम पर प्रण करो कि अपने चरित्र से उस कलंक कालिमा को छुड़ा कर ही कर ही विश्राम लेंगे इस कुली प्रथा के बंधन को तोड़वा कर ही छोड़ेंगे।

यह तो हुई फ़िज़ी की वात, अव हम संक्षेप में अन्य उपनिवेशों में रहनेवाले प्रवासी-भारतवासियों के दशा का भी संक्षिप्त वृत्तान्त यहां पर देकर इस लेख को समाप्त करते हैं।

इस समय दक्षिण-अफ्रिका, ब्रिटिश गायना, जामैका, ट्रिनीडाड, जेन्जीवर, कैनेडा, आस्टलिया, मोरेशस आदि स्थानों में भारतवासी प्रवास कर रहे हैं, जिन में क्रमशः १४६७६१, १२६०००, १७३८०, १२००००, १००००, ४५००, ६५००, २५७७०० भारतवासी रहते हैं; फ़िज़ी में जिसका वृत्तान्त ऊपर लिखा जा चुका है, इस समय केवल ४४२२० भारतवासी हैं। अन्य स्थानों की अपेक्षा फ़िज़ी की दशा तो भी

अच्छी है। उससे अनुमान किया जा सक्ता है, कि जब फ़िज़ी ही में भारतवासियों की यह दशा है, तो अन्य उपनिवेशों में उनकी क्या दशा होगी?

दक्षिणी अफ़्रीका में साठ वर्ष पूर्व नवीन कार्य्यालय खोलने और खानों के खोदे जाने के समय भारतीय कुली मज़दूर भेजे गये थे। इन मज़दूरों को वहां के संचालकों ने भारत-सरकार से प्रार्थना पूर्वक अनुरोध करके शर्त्तवन्दी पर बुलाया था, वे वहां भेजे गये। परन्तु जब तक उनकी वहां आवश्यकता रही, तब तक वहां के गोरों ने उन्हें स्वच्छन्दता-पूर्वक रहने दिया, और कभी २ उन्हें थोड़ी सी भूमि भी दे दी, परन्तु ज्योंही भारतवासियों के कठिन परिश्रम के कारण वे धनवान हो गये, उनकी संख्या बढ़ गई और कार्य्य खूब चलने लगा, तो उन लोगों ने विचारे भारतीय मज़दूरों को नाना प्रकार के कष्ट देने आरम्भ किये। जिस प्रकार कोई नारंगी का रस चूस कर छिलके को फेंक देता है, उसी प्रकार इन गोरे अधिवासियों ने भारतवासियों के यौवन का परिश्रम खींच कर उन्हें अपने यहां से निकाल देने की बड़ी चेष्टायें कीं। अब भी वे भारतीयों को कुली कहकर पुकारते हैं, उन्हें ट्रामगाड़ियों में नहीं चढ़ने देते। अपने चलने के मार्ग में होकर नहीं चलने देते और वहां के स्नानगृहों में नही आने देते। भारतवासियों की बढ़ती रोकने के लिये उन्होंने एक नियम बनाया, जिसके अनुसार जो कोई शर्तबन्द मज़दूर समय समाप्त होने के पश्चात् वहां के नेटाल देश में रहना चाहें, पैंतालीस रुपया वार्षिक कर देना होगा। अधिकांश दीन स्त्री पुरुषों को, जो इसके देने में असमर्थ थे, नाना प्रकार के कष्ट दिये गये; पुरुषों को जेल में ठोंका गया और स्त्रियों के धर्म्म

तक नष्ट किये गये। साथही स्वतंत्र भारतवासियों को रोकने के लिये भी एक नियम बनाया गया, जिसके अनुसार प्रत्येक भारतवासी को जो वहां जाना चाहे, अब तक तीन पौण्ड का कर देना पड़ता है। बेचारे बहुत दीन मनुष्य इसके देने में असमर्थ है। जो वहां कमाने की इच्छा से जाते हैं, लौटा दिये जाते हैं, और इस प्रकार उन्हें व्यय का बड़ा बोझ झेलना पड़ता है। एक और नियम के अनुसार बेचारे दूकानदार अपनी दूकानें एक स्थान से दूसरे स्थान को उठा ले जाने को बाध्य किये जाता हैं। इससे उनकी चलती दूकान बन्द हो जाती है और उन्हें बड़ी हानि उठानी पड़ती है। विवाह करने में भी स्वतंत्र नहीं है। फ़िज़ी जैसे वहां भी सरकारी इच्छा से ही विवाह करना पड़ता है, जिसकी रजिस्ट्री करानी पड़ती है। इसका क्या परिणाम हो सक्ता है, वह स्वय ही अनुमान किया जा सक्ता है। सत्याग्रह संग्राम में भारतवासियों को जो २ कष्ट झेलने पड़े, वे समय २ पर पत्रों में निकल ही चुके है, अतः उनके दुहराने की यहां आवश्यकता व्यर्थ मालूम होती है।

कैनेडा में भारतवासियों के जो उपनिवेश हैं, उनमें इस समय पांच सहस्र भारतवासी रहते हैं। यह लोग सभी पुरुष है, स्त्रियां केवल तीन या चार है। इन प्रवासियोंमें अधिकतर सिक्ख हैं, उनकी स्त्रियाँ और परिवार वाले वहाँ नहीं जा सक्ते, इस कारण वहाँ उनके वंश वृद्धि की कोई सम्भावना नही हैं। भारत वासियों को कैनेडा पहुंचने से रोकने के लिये एक बड़ाही अपूर्व नियम बनाया है, वह नियम है कि, 'कोई भी यात्री यदि वह अपने देश से एकही जहाज़ और एक ही टिकट से न आया हो तो जहाज़ से नीचे न उतरने दिया

जावे'। वहाँ पर भारतवासियों की दशा बड़ी ही बुरी है। वे स्वतंत्र व्यवसाय नहीं कर सक्ते, प्रतिज्ञाबद्ध बनकर रहना पड़-ता है। इस अन्यायकाभी कुछ ठीक है? जिस सिक्ख जातिके कारण ही ब्रिटिश सम्राज्य बना है, जिस जातिने ब्रिटिश साम्राज्य के लिये मिश्र, सुदान, चीन और बर्मा आदि देशों में अपना रक्त बहाया, साथ ही गत् योरुपीय महाभारत में भी सिक्खोंने सरकारकी इतनी सहायता की है, इतना होनेपर भी उन्ही सिक्खों (भारतीयों) के साथ प्रवास में इतना अन्याय युक्त व्ययहार किया जाय; क्या यह शोचनीय बात बात नही हैं?

मोरीशस में प्रवासी भारतवासियों के हाथ अच्छी भूमि नहीं आसक्ती, जिस भूमिको वहां के गोरे लोग नहीं लेते, वह उन्हें मिलती हैं, जो ऊसबर होती है और जिसमें अच्छी उपज नहीं होती। वहाँ पर भारतवासियों का जो थोड़े बहुत राजनैतिक अधिकार प्राप्त भी हैं, वे उन का उप-भोग नहीं कर सक्ते। सब बातों में उन्हें गोरों की इच्छा-नुसार ही चलना पड़ता है,। प्रत्येक बातपर टैक्स अधिक देना तो छोटी सी बात है। जिस समय में भारतवासी वहाँ जाने आरम्भ हुए थे, वे अपनी स्त्रियों को नहीं लेजा सक्ते थे, पीछे भी उन्हें तैतीस प्रतिशत् स्त्रियों के ही ले जाने की आज्ञा मिली, उसका परिणाम जो हो सक्ता है वह प्रत्यक्ष है। वहाँ पर अमने धर्म्म-शास्त्रों के अनुसार उन्हें विवाह करने की भी स्वतंत्रता नहीं है। जो विवाह इस प्रकार किया जाता है, वह घरेलू समझा जाता है।

भारतवर्ष में हिन्दू और मुसलमानो के उत्तराधिकारी का निश्चय धर्म्म शास्त्र के अनुसार होता है, परन्तु मोरीशस

में फ़रान्सीसी नियमके अनुसार उनके उत्तराधिकारी निश्चित किये जाते है, जिसके अनुसार भारतवासियोंके यथार्थ उत्तराधिकारी अपने पैतृक-सम्पत्ति से बंचित कर दिये जाते हैं। शिक्षा के विषय में कुछ लिखना व्यर्थ हैं, जब स्वयं भारतवर्ष में ही हमारी शिक्षा का कोई ठीक प्रबन्ध नही है, तो वहां क्या हो सक्ता है ? मोरेशस के भारतवासी अपने मुर्दों को भी नही जला सक्ते, जो ऐसा करता भी है, वह कठिन दंड का भागी होता है।

सबसे बड़ी शोचनीय अवस्था यह है कि जो भारतवासी मोरेशस मे उत्पन्न हुए (जन्मे) हैं और जो इन्डो-मोरेशन्स (IndoMorations) कहलाते है, बिगड़ी फ्रेंच भाषा ही बोलते है। मातृ भाषा हिन्दी से उन्हें बड़ी घृणा है, अधिकांश तो उसे जानते भी नही है। वे मोरेशसको ही अपना स्वदेश और भारतवर्ष को विदेश मानते हैं, और कहते है 'यह विदेशी (भारतवासी) आकर हमारे स्वदेश मोरेशस को हानि पहुंचा रहे है। क्या यह कम शोचनीय बात है ? जिन भारतीयों ने उन्हे वहाँ जन्म दिया, उन पूर्वजों के उपकार को यदि वे भूल गये, तो भारत के वर्त्तमान एहसान को तो उन्हें मानना चाहिये था, कि आज भी वह उनकी आवश्यकताओं को पूर्ण कर रहा है। जो भारत आज गेहूं चावल, दाल, घी और शकर आदि भेजकर उनकी जीवनरक्षा कर रहा है, और जो एक नाते उनकी जन्म भूमि न सही तो मातृभूमि तो है, उसीको विदेश कह कर पुकारना क्या हमारे घावपर नमक छिड़कना नही है ?

यही समस्त प्रवासी भारतवासियों के दुख और उनकी शोचनीय अवश्थाएं हैं। इन्हें देखकर कौन ऐसा भारतीय

हृदय होगा, जो अपने प्रवासी भ्राताओं की इन दशाओं पर दो बूंद अश्रु न बहाये, उसके हृदय में बेदनाकी तीव्र कटार न लगे ? परन्तु हम पूछते हैं कि इतने पर भी कितने भारतवासी ऐसे हैं जो उनके इन दुखों को दूर करने के लिये तयार हैं ? यह दुःख उन्हें कोई आज से तो है ही नहीं, गत् अस्सी वर्षों से हमारे प्रवासी भ्राता इन कष्टों को भोगते चले आरहे हैं, फिर कितनों ने उनके लिये आत्यत्याग किया ? महात्मा गांधी को छोड़ ऐसा कौन अन्य भारतवासी है जिसने अपने प्रवासी भाइयों के लिये कुछ उद्योग किया हो ? उनके दुखों के लिये इस महत्माने जो २ कष्ट सहन किये हैं, वह सब जानते हैं। उनके पश्चात् जिस दूसरे महापुरुष ने उनके कष्टों पर ध्यान देकर उनके लिये उद्योग किया है, वह मिस्टर एण्डज़ *हैं। आप एक विदेशी सज्जन है, फिर भी भारतमाता के प्रति आपके हृदय में असीम श्रद्धा और अनुपम प्रेम है। आपने प्रवासी-भारतवासियों के लिये बड़ा ही आत्म-त्याग किया है। यह आपही का काम था कि श्रीमान् लार्ड हार्डिंज महोदय से मिलकर आपने कुली-प्रथाको सदैवके लिये बन्द करादिया। आप अपनी बीमार माताको छोड़कर दक्षिण आफ्रीका में वहाँ का झगड़ा तय कराने को गये हुए थे, पीछे ही आपकी माता का स्वर्गगमन होगया, परन्तु फिर भी आप काम करते

---

* जो अब फिर हाल ही में अर्थात नवम्बर १९१९ के मध्य में भारतवासियों को पुनः कष्ट दिये जाने का समाचार सुनकर दक्षिण अफ्रिका गये हैं। क्या कोई भारतीय भी वहां जाने को तयार हुआ है ? धन्य हैं उस महात्मा और उसके भारत प्रेमको।

ही रहे। जिस समय आप फ़िज़ी में भारतवासियों की सहायता के लिये काम कर रहे थे, आप के पिता का देहान्त हो गया, परन्तु तिसपर भी आपने अपना कार्य्य नहीं छोड़ा। पाठक! कहिये आपमें से कितने ऐसे है जो अपनी मातृ-भूमि के लिये अपने प्रवासी भ्राताओं के लिये इतना आत्म-त्याग करने के लिये तयार हों, जैसा महात्मा एण्डूज़ ने एक विदेशी होकर किया है? क्या हमारे लिये यह एक लज्जा की बात नही है? देश देशान्तरों में हमारी जन्म भूमि-भारत-माता का गौरव बड़ा गिरा हुआ है, भारतीय और कुली परियायीवाचक हो रहे है प्रशान्त महासागर में भारतमाता के ललाट की यह दासत्व कालिमा संसार को यह विज्ञापन दे रही है कि भारत वासियों मे राष्ट्रीयता का सम्मान, आत्म-गौरव, स्वाभिमान, जातीयता और देश प्रेम लेशमात्र भी नहीं है। प्यारे नवयुवकगण! माता के इस कलंक कालिमा के टीके को धोना आपके हाथ में हैं, आपही माता के उद्धारक और मुख उज्वल करने वाले हैं, आपही भारतमाता जननी जन्म-भूमि के इस कलक को धोकर संसार को दिखला सक्ते हैं कि देखो हमारी माता किसीसे कम नही है, कौन ऐसा देश है जो हमारी माता के ऊचे मस्तिष्क का सामना करसके। आप चाहें तो शीघ्र ही माता की गौरवजयध्वजा देश देशान्तरों में फहरा उसे सच्ची भारतमाता बना सक्ते हैं, यह आपके थोड़े से आत्मत्याग पर निर्भर है। देखें कौनसा शुभदिवस वह होता है जब माता का यह कलंक छूटकर वह संसार में मस्तिष्क ऊँचा करके योग्य होती है?

जब प्रवासी भारतवासियों के कष्टों और माता के इस कलंक के कारणों पर विचार करते हैं तो मुख्य तीन बातें जान

पड़ती हैं यथा—(१) भारतवर्ष पराधीन और पराश्रित है, जिसका भारतप्रवासियों पर बड़ा प्रभाव पड़ता है, (२) विदेश में जो भारतवासी गये हैं; वेबलात्कार शर्तबन्द कुली बनाकर अरकाटियों द्वारा भेजे गये हैं (३) वहाँ वे जिन लोगों और स्त्रियों के साथ रहते हैं, वे दूसरी जाति, धर्म्म और स्थिति के है। इन तीनों बातों को देखते हुए, यदि प्रवासी भारतवासियों की दुर्दशा हो, तो आश्चर्य्य ही क्या है ? एक बात और है—जब हमे स्वदेश में ही समान अधिकार प्राप्त नहीं हैं, जो साम्राज्य में अपने ही देश में नागरिक के वास्तविक अधिकार नहीं देता, उस सार्माज्य के द्वारा हम दूसरे देशों में इस प्रकार रहें तो कोई अचम्भा नहीं है। जिस समय हमें अपने देश मे समान अधिकार प्राप्त हो जावेंगे, उसी समय प्रवास सम्बन्धी सब प्रश्न हल हो जावेंगे। और जब तक हमको यह अधिकार प्राप्त नही होते, तबतक सर्कार को ही भारत-प्रवास की उस स्थिति पर पूर्ण ध्यान देना चाहिये।

परन्तु जो सरकार शर्त्तबन्दी कुली प्रथा के स्थान में एक और अर्थात् 'कंगानीकुली प्रथा' * को स्वीकृत करने के लिये तय्यार है, उससे आशा करना अथवा सहायता मांगने की इच्छा रखना सर्वथैव भ्रम-मूलक है। आपको उससे किसी प्रकार की सहायता पाने की आशा न रखना चाहिये। हां यदि वे सहायता दें तो सहर्ष स्वीकार करो, (सर्कारका-कर्तव्य ही है कि अपनी प्रजा की सहायता करें) और यदि न दे तो आपको स्वयं उसका निवारण करने का उद्योग करना चाहिये। साहस और धैर्य्य को हाथ से न जाने दीजिये। यह

× इसका वृत्तान्त प्रवासी-भारतवासी में देखिये।

अपना कार्य्य है, उसके विरुद्ध घोर आन्दोलन करना अपना कर्त्तव्य है। अनपढ़े ग्रामीणों को अरकाटियों की करतूतों की कथा सुनाना, उन्हें उनके जाल में फंसने से रोकना और उपनिवेशों में भारतवासियों के दुख दूर करना, हमारे वांये हाथ का खेल है। केवल आवश्यकता इस वात की है कि इस प्रथा और उसके अफ़सरो के विरुद्ध हमारे हृदय मे घृणा के भाव उदय हो जांय। हरघर की दीवार से उस घृणा और "प्रवासियो" के दुख दूर करेंगे, के शब्द ऊंचे स्वर से निकलें, हाथ पकड़ लिये जांय उसके जो अपनी भगनियो का सतीत्व अव और अधिक नष्ट करने का उद्योग और धृष्टता करे; अथवा जो अव और अधिक भारतवासियों को कष्ट देने का साहस करे। देशके हित के नाम पर, उसकी कीर्ति, जातीय-प्रतिष्ठा, आत्मगौरव, राष्ट्रीय-अभिमान,भारत सन्तानों के दुख दूर करने और अपने भाई वहिनों को पाशविक वर्त्तावों से वचाने के लिये वेदना की असह्य लहर उत्पन्न हो जाय और अपनी शक्तियां जागृत होकर पग वढ़ाने लगें, तो घोर माया का जाल टूट जायगा, अरकाटियों की दाल न गलेगी और हमारे प्रवासी भाई कष्टों से जांयगे। परन्तु वन्धुवर्ग ! यह कार्य्य वड़ा कठिन है, असुविधाओं की एक विस्तृत भयंकर आंधी आपके सम्मुख है,समय आपके विरुद्ध है, अतः दृढ़ता की आवश्यकता है। अपने दुखों का वोझ लेकर एक संकीर्ण डोंगी से पार उतरना है और पारलगैया मांझा (स्वत्त्व) भी साथ नहीं है; किन्तु इसकी विशेष चिन्ता नहीं, दृढ़ता के साथ कार्य पर डट जाइये, और भारत-माता की पवित्र वेदी पर खड़े होकर यह वात जतला दीजिये कि हमें संसार में जीवित रहना है, और आदर, मान और गौरव के

साथ जीवित रहना है। इन सब बातों की जीतने के लिये 'स्वराज्य' की आवश्यकता है, यही केवल वह कुंजी है जिस पर हमारी आशा, शक्ति, महत्व और समस्त गौरव निर्भर है। इसी के द्वारा प्रवासी भारतवासियों के कष्टों का ताला खोलकर उन्हें सुखी और आनन्दमय बनाया जा सक्ता है। इसलिये प्रथम सब भारतवासी मिलकर दृढ़तापूर्वक 'स्वराज्य' के लिये अविश्रान्त और निरन्तर उद्योग और घोर आन्दोलन कीजिये। बस जहां स्वराज्य मिला, सब झगड़े आपही निपट जाँयगे, और उपनिवेशों में रहनेवाले प्रवासी भारतवासियों के साथ गोरे निवासी ऐसा बर्ताव कदापि नहीं कर सकेंगे; और हम भारतवासी यहां तथा उपनिवेश सब स्थानों मे स्वच्छन्दता पूर्वक रह सकेंगे।

भारत की आर्थिक अवस्था

सब भाँति भारतवर्ष का व्यापार नष्ट किया गया,
कर से तथा प्रतिरोध से सब भाँति भ्रष्ट किया गया।
दारिद्र, दुर्भिख*अब यहाँ करता निरन्तर बास है,
धन के बिना भारत हमारा पा रहा अति त्रास है॥

अब तक हमने भारत की नैतिक स्थिति का वर्णन किया है, अब उसकी आर्थिक अवस्था का भी थोड़ा सा दिग्दर्शन कराना उचित समझते है।

यह बात सर्वमाएय है कि संसार में धनही एक ऐसी वस्तु है जिसके ऊपर किसी देश, राष्ट्र अथवा जाति की उन्नति वा अवनति निर्भर है उसी पर वहाँ की धार्मिक, नैतिक व जातीय स्थिति अवलम्बित है। यदि धन है तो सब कुछ है, और धन नहीं तो कुछ भी नही है। इसलिये यह अति आवश्यक है कि किसी देशकी आर्थिकोन्नति के लिये वहाँ के निवासी और शाशक दोनो ही तन मन से भरसक यत्न करें और जब ऐसा होगा, तब ही उस देशकी साम्पत्तिक दशा अच्छी हो सक्ती है। आमेरिका, जापान, जर्मन. आदि समृद्धशाली और स्वतंत्र देशोंमे ऐसा ही होता है. और यही कारण है कि वे देश आज आर्थिक भाव में उन्नति के शिखर पर विराजमान हैं। परन्तु भारत की आर्थिक दशा कैसी है? वह धनवान है या निर्धन? इन प्रश्नों के करतेही कहना पड़ता है कि भारत की आर्थिक अवस्था अच्छी नहीं है। कारण स्पष्ट है- भारतीय

---

* दुर्भिक्ष

सरकार का ध्यान इस ओर बिलकुल नहीं है, और इसी से देश आर्थिकावस्था में बहुत गिरा हुआ है।

देश के दस पाँच मनुष्य खाते पीते रहने से कोई देश मालदार नहीं कहा जा सकता। एक समय था जब भारतवर्ष सम्पत्ति से भरपूर था। महमूद ग़ज़नी, तैमूर और नादिर भारत पर चढ़ाई करके यद्यपि इसका बहुत सा धन ले गये थे, फिर भी भारत में पर्य्याप्त सम्पतिशेष थी। परन्तु कोई डेढ़ सौ वर्ष से तो भारत के धन को मानो जोंक ही लग गई भारत क्षीन तथा दरिद्र होता चला गया और इंगलैण्ड के कारख़ाने फ़ैक्टरी आदि ख़ूब अधिक चलने लगे। इस के व्यापार और व्यवसाय का अधिक लाभ अंग्रेज़ों के ही हाथ पड़ता है और भारत दीन हीन और भिक्षुक हो रहा है। भारत मे इस समय सब से अधिक संख्या किसानों की है, परन्तु यही किसान वर्ष में तीन मास से भी अधिक भूखे रहते हैं। भारत के सौ में अस्सी मनुष्य आधे पेट भोजन कर जीवन बिताते हैं। यह देखते हुए भी 'भारत अच्छी दशा में हैं; यह कैसे मानलिया जाय? परन्तु सबसे अधिक विस्मय तो उस समय होता है, जब विदेशियों द्वारा यह सुनते हैं कि भारत मालदार है। उनका कहना है 'कि भारत की माली हालत अच्छी है, उसमें रुपया, सोना, चाँदी आदि बहुत अधिक है, लोगों की आय ख़ूब होती है। परन्तु यह मान कैसे लिया जाय? जिसमें एक मनुष्य की आय पांच या छः पैसे के लगभग हो, वह कैसे धनवान कहा जा सक्ता है? जिस देश के निवासियों को बारी २ से भूखों मरना पड़ता हो, जहाँ सौ में अस्सी ऐसे मनुष्य हों जो आधपेट रहते है, प्लेग दुर्भिक्ष,रोग आदि दैहिक दैहिक और भौतिक समस्त प्रकार के ताप जिस देश को

निरन्तर सता रहे हों, उसे मालदार कहना अथवा ऐसी बातें कहना जिसे सुनकर दूसरों के मुंह में जल भर आवे, उस देश की हंसी उड़ाना, तीव्रहिंसा और उपहास करना नहीं तो क्या है ? लिखा जा चुका है 'भारत में एक बड़ी संख्या किसानों की है' उनके पश्चात् मज़दूर ही भारत में अधिक है, परन्तु मज़दूरों और किसानों मे यहाँ कोई अन्तर नही है, दोनों की दशा समान और एकसी है। जैसे किसानों को इतने परिश्रम के पश्चात् पांच पैसे बड़ी कठिनता से बचते हैं, वैसे ही मज़दूरों को भी प्रातःकाल से दीपक बलने के समय तक कठिन कार्य्य करने के पश्चात् तीन पैसे प्रति मनुष्य की दर से पड़ते हैं। अच्छा, अब थोड़ी देर के लिये मान भी लिया जाय कि भारत में सोना चांदी, रुपया, पैसादि बहुत है, तो केवल उसके होने से देश को लाभ ही क्या ? भोजन, अन्न और वस्त्र का तो कार्य्य यह दे ही नहीं सक्ते, फिर भी बड़े परिश्रम से खान से निकलते हैं और उसी सीमा तक अच्छे हैं, अतः इनको भोजन सामिग्री से अधिक महत्व नहीं दिया सक्ता। जब भोजन पदार्थ ही न होंगे तो क्या इनको धरके चाटा जायगा ? परन्तु हम यह भी नही कह सक्ते कि भारत में अन्न उत्पन्न ही नही होता। नहीं, भारत मे प्रतिवर्ष इतना अन्न और अनाज उत्पन्न होता है कि एक वर्ष की उपज कई वर्ष तक काम में लाई जा सक्ती है। किन्तु विदेशी, जिनके पास रुपया है, भारत का अनाज क्रय करके आनन्द उड़ाते हैं और यही कारण है कि भारत में अकाल ही अकाल दिखलाई देते हैं, और जिनकी संख्या सदैव बढ़ती ही चली जाती है, जिसके कारण भारत की दरिद्र-जनता तिलमिलाकर प्राण देने लगती है। प्राचीन काल में अकाल भारत में इतने सर्वव्यापी नहीं थे, जितने अब

हैं, परन्तु हम लोगों में उनके सहन करने के इतने स्वभाव पड़ गये हैं कि भयानक से भयानक अकाल भी हमारी दृष्टि में अब कुछ नही है। पराधीनता की भांति उसने भी भारत-वासियों के हृदय और मस्तिष्क मे स्थान बना लिया है। शत्रहवीं शताब्दी से भारतवर्ष में अकालों की जो वृद्धि हुई है और जैसी भयंकरता ने उन्होंने धारण की है, वैसी उसके पूर्व कभी नहीं थी। वर्त्तमान अकालों से तो भारत स्वाहा ही हो गया, समझ में नहीं आता इसका क्या कारण है। स्वार्थियों का कहना है, समय पर वृष्टि ही नही होती तो इसमें किसीका क्या अपराध ? उसका होना तो भगवानहीके हाथ में है। परन्तु क्या हम इन बातों से भूल सक्ते हैं ? हमारी शस्य श्यामला भारत–वसुन्धरा पूरा २ नाज उत्पन्न करती है, पर हम भूखों मर रहे हैं, बरसात के दस दिवस भी सूखे चले जाँय तो मनुष्य आँसू बहाने लगते हैं। क्या पहिले हमारा भारत इतना निर्बल था ? हमारे करोड़ों भ्रातओं के गृहमें दिन की कमाई का नाज रातको पिसता है, तो भी रूखा सूखा टुकड़ा खाकर आधपेट ही रहना पड़ता है। इसका कारण क्या है ? यही न कि हमारी सारी सम्पत्ति चली गई, हम कंगाल हो गए, और तब भी हम मालदार बने हुए है। जहाँ हमारे देश में एक मनुष्य की आय वर्ष में तीस रुपया की दर से पड़ती है वहाँ अन्य देशों के प्रति मनुष्य की आय पैतालिस पौंड अर्थात् पौने सातसौ रुपया है वार्षिक से भी अधिक है। फिर हम देश को समृद्धिशाली कैसे कह सक्ते हैं ? किसानों और श्रमजीवी मनुष्यों की तो यह दशा है, परदेश के गौंड़, भील, संथाल आदि मनुष्यों की दशा तो इनसे भी अधिक दयाद्रवित है, वे इनसे बड़े २ कार्य्य करते हुए लाखों

करोड़ों की संख्या में भूखों मरते हैं। अकाल की कौन कहे, अच्छे समय के दिनों मे भी वे सांप तकको उसका चार अंगुल सिर काटकर शेष धड़ को खा जाते हैं। कतिपय बेचारे सड़े हुए लक्कड़ों से कीड़े निकाल कर उन्हें आग पर सेंककर अपने वालकों को खिलाते हैं। देखने में आता है-जोड़ के दिनों में जब शकर की वेलें गांवों में चलती हैं, तब कढ़ाइयों में जो ऊखका रस औटाया जाता है उस पर उसका मैल जम जाता है, वेलवाले मनुष्य इस मैल को उतार कर मिट्टी में फेंक देते हैं, कुत्ते बिल्ली आते हैं, उसे सूंघ का छोड़कर चले जाते हैं, परन्तु हाय कहते कलेजा दुखता है पेट वड़ा पापी है, क्षुधा वड़ी राक्षिसी है, हमारे यह अकाल ग्रसित भाई वेलों पर आते है और उसी रसके मैल को जिन से श्वान, बिलाड़ तक घृणा करके भाग जाते हैं अपने दग्ध पेट की क्षुधा ज्वाला शान्ति करने के लिये उसे रेत सहित बड़े प्रेम से खा जाते है और तृप्त हो ईश्वर का धन्यवाद करते हैं। हा शोक! जिन भारतवासियों के ग्रामीयों हाथों में सब का जीवन है, उन्हीं की यह दशा, वेही नीच प्रकृति के जानवरों से भी घृणित वस्तु को इतने प्रेम पूर्वक खायें, इससे अधिक दरिद्रता, और हृदय दग्धकारी दृश्य और क्या होगा ? भगवन् क्या ऐसे मनुष्यों के लिये आप के दर्वार में यम-राज भी नही रहे ? यह कौन से पापों का फल है जो हम इस प्रकार भोग रहे ? वही भारत जिसकी पृथ्वी इतनी उर्वरा कि शस्य श्यामला कहलावे और उसी के पुत्रो की यह दशा, हा अन्याय! हा दुर्दैव !! हा दुर्भाग्य !!! इधर स्त्रियों की यह दशा है कि दिनों तक खाने को अन्न वा क्या कुछ भी नहीं पाती, लज्जा निवारणार्थ वस्त्र भी नहीं मिलते, उधर वेचारे

वहां हमारे भारत के मनुष्यों की यह दशा हैं कि यदि कहीं एक स्थान रिक्त होता है, अथवा पत्रों में 'आवश्यकता हैं' (Wanted) निकलती है तो बातकी बातमें पचास सौ नहीं दोसौ, तीनसौ प्रार्थना पत्र (Applications) उसके लिये पहुंच जाते है। यदि कुछ भी नहीं हुआ तो हमारे यह पढ़े लिखे भाई कहते चित्त दुखता हैं- चोरी, जुआ, व्यभिचार, आदि निकृष्ट कर्म करके अपने पेटका पालन करने का उद्योग करते हैं * इस का कारण क्या है- भारत की दरिद्रता अथवा कुछ और ?

इस समय भारत में मृत्यु संख्या के साथ मनुष्योंकी उत्पत्ति भी बढ़ती जाती है। परन्तु क्या यह बात दरिद्र-भारत के लिये कोई सन्तोषप्रद है ? इस समय लाखों की संख्या में बच्चे ऐसे घरों में उत्पन्न होते है, जहां घोर दरिता निवास करती है, शारीरिक और मानसिक कष्टोंकी सीमा नही है और बुरे पदार्थ भी भोजनको नही मिलते। फल यह होता है कि बच्चों के अंग बालपनसे ही सूख २ कर सिकुड़ जाते है, शरीर ढीले पड़जाते हैं और जन्म से ही वे तुच्छ और हीन प्रकृति और निकृष्ट स्वभाव के हो जाते हैं, क्यो कि पेटकी ज्वाला उन्हें निन्द्य से निन्द्य कार्य्य करने के लिये भी विवश करती है। क्या ऐसे मनुष्यों और उनकी संन्तान से देश-सेवा की कोई आशा की जासक्ती है ? जहां अन्य देशों के बालक आरम्भ

---

* हम बहुत से ऐसे मनुष्यों को जानते है, जो पढ़े लिखे है, शिक्षित हैं, विद्वान और बुद्धिमान हैं, और देशकी गति का समझते है, फिर भी बेचारे अर्थाभाव के कारण उपरोक्त कर्म्म करते हैं। हायरी दरिद्रता!

से ही उत्तम २ भोजन वस्त्र प्राप्त करके राष्ट्र-सेवा में लीन हो जाते हैं, वह देश क्यों न उन्नति करें ? और उनके सामने जिसके बालकों की यह दशा हो कि दर २ भीख मांगने पर भी भोजन न मिले और छटापटाकर प्राण दे दें, उसके नाश होने में क्या सन्देह हो सक्ता है ?

भारत ! कहो तो आज तुम क्या हो वही भारत अहो ?
हे पुण्य भूमि। कहां गई है वह तुम्हारी श्री कहो ?
अब कमल क्या जलतक नहीं सर मध्य केवल पङ्क है,
वह राजराज कुबेर अब हा ! रक का भी रंक है ॥
उड़ते प्रभंजन से यथा तप-मध्य सूखे पत्र हैं,
लाखों यहा भूखे भिखारी घूमते सर्वत्र हैं ।
है एक चिथड़ाही कमर में और खप्पर हाथ में,
नंगे तथा रोते हुए बालक बिकल है साथ में ॥
वह पेट उनका पीठ से मिलकर हुआ क्या एक है—
मानो निकलने को परस्पर हड्डियों में टेक है
निकले हुए है दाँत बाहर नेत्र भीतर हैं धँसे,
किन शुष्क आंतो में न जाने प्राण उनके है फंसे ?
सन्तान ने आकर कहा 'मां ! रात तो होने लगी-
भूखे रहा जाता नहीं' हा ! सुनि जननि रोने लगी ।
जननी पड़ी है और शिशु उसके हृदय परमुख धरे-
देखा गया है, किन्तु वे मां पुत्र दोनो हैं मरे ॥

जब दारिद्रको के कष्ट की छाया समस्त भारत के मुख

पर इस प्रकार पड़ रही है, चारों ओर रोने के अतिरिक्त कुछ देखही नहीं पड़ता, जिधर देखो उधर ही आर्त्तनाद सुनाई देता है, आंसुओं के नाले और नदियां बह रही हैं, दरिद्रता और बुभुक्षा पीढ़ी दर पीढ़ी की स्वामिन बन गई है; उसकी बेड़ी से निकलना कठिन है, इस पर भी सतान उत्पन्न होकर दासों की संख्या बढ़ा रही है, और देश के सूने आकाश के नीचे हाहाकार कर के रोने वाले बच्चे उत्पन्न हो रहें है, ऐसी दशा में धन्य हैं वे माता पिता जिनके बालक नहीं, धन्य हैं वे कुटुम्ब जिन में बच्चे नहीं और धन्य हैं वे मनुष्य जो कारागार में पड़े हुए परिश्रम करते और आनन्द से भोजन पाते है। हा! जहां माता पिता सन्तान का मुख देखने के लिये तरसते हैं, जपतप, दान करते और देवीदेवता मनाते हैं, वहां हमें दरिद्रता के कारण दुखित हो हृदय को कड़ा करके यह कहना पड़ता है कि 'सन्तान-रहित कुटुम्ब और माता-पिता धन्य हैं, तो हमसे अभागा और निर्लज्ज और पाषाण हृदय मनुष्य कौन होगा? पाठक क्षमा करें, देशकी दशा और धनाभावही ने हमें ऐसा लिखने को विवश किया है, इसमें हमारा अपना कोई अपराध नहीं है। हा दुर्भाग्य!

अब भारत-वासियों की दशा जानवरों की सी होगई है, वरन् मनुष्यों में पशुओंसे भी कम पवित्रता, शक्ति और आशा है, इसका मूलकारण भूख, दरिद्रता, कंगलापन, पराधीनता और मनुष्यत्व विहीनता है, भूखके मारे स्त्री अपने अमूल्य सतीत्वरत्नको खोने के लिये तयार होजाती हैं, बच्चों को बचपन में ही प्राणदेना होता है, दरिद्रता की निर्दय मशीन मनुष्यों के हाड़ मास को दाबकर कुचला बनाती है, उनकी

आशाओं पर पानी फेरती है, और पुरानी और वंश परम्परा की दरिद्रता ही हैजे, प्लेग, महामारी आदि रोगों के रूप में फूट रही है और अपने राक्षसी उदर में बेचारे दीनों को भर रही है। अनाज पांच सेरके भावसे भी नहीं मिलता, पीतल तावें के लोटे थाली तक गिरवी रखे जाते हैं, देश उत्सन्न हो रहा है, दुख बढ़ रहे हैं, समस्त दिवस परिश्रम करने पर भी भोजन नहीं मिलता और जहां न मालूम कितने दुखी चुपचाप आंसू गिरा रहे है, तो हम बड़े २ वेतन वाले मनुष्यों के इस कथन को कैसे मानलें कि-'भारत धनवान है, उससे जितना धन चाहिये मिल सक्ता ?' सच तो यह है कि इस देशके दुखियों की आहों में भी इस समय वह सामर्थ्य नहीं जो उससे आकाश फटजाय और आंसुओं मे वह शक्ति नहीं कि गिरने से पृथ्वी गल जाय। क्यों कि-

यद्यपि बुझासक्ता हमारा नेत्र-जल इस आग को।

पर धिक हमारे स्वार्थमय सुख हुए अनुराग को।

अकाल जो पड़ते हैं सो तो हैं ही, साथही भारत के व्यापार, कारीगरी, कलाकौशल और शिल्प का भी नाशहो गया। एक समय था जब भारत का व्यापार कलाकौशल आदि उन्नतिके शिखर पर था। अकेले सन् १६८७ में तीस लाख मलमल विलायत गई थी, अथवा छोटी सी बातमें यों समझ लीजिये कि सन् १८०० ई० तक समस्त वस्तुऐं भारत से विलायत जातीथी परन्तु आज क्या अवस्था है? आज भारत समस्त बातों में गिरा हुआ है, आज उसका सब कुछ विदेशियों के हाथ में है, हमारी छोटी से छोटी वस्तु भी आज विलायत से आती है, मोटे कपड़े तक का अकाल पड़ रहा है, और तो क्या—चुड़ियां जो हमारे देशकी ललनाओं को

सौभाग्य-चिन्ह समझा जाता है, और कपड़े सीने की सुई तक विदेशों से आती हैं। इस समय भारत के कल और कारखानों में भी विदेशियों का आधिपत्य है, उनका सबलाभ बाहर चला जाता है, हमारे खानिज पदार्थ करोड़ों के मूल्य के आज देशमें उत्पन्न होते हैं, परन्तु उनसे हमें क्या ? चाय, काफी, नील, नमक और अफीम आदि तक की खेती विदेशियों ही के हाथ में है। हिन्दुस्तान में जो बड़े २ वेतन पाते हैं, वे सब विदेशी हैं। सुतराम् इस समय भारत का सब कुछ औरों के हाथ में है, जिससे इस प्रकार और इस रूप में एक बड़ा भारी धन देश से निकल जाता है। फिर भारत दरिद्र क्यों न हो ?

सन् १७८८ ई० की बात है-ईस्ट इण्डियन कम्पनी के डाइरेक्टर (Director) भारत में रुई उत्पन्न करने के प्रयत्न में लगे हुए थे, पर वह प्रयत्न भारत का व्यापार सुधारने के लिये थे अथवा कच्चामाल बाहर भेजकर वहां से तयार करके फिर यहीं लाकर खपाने को ?

किसी समय जिस देश का व्यापार इतनी अच्छी दशा में था कि जिसकी शिल्प और कारीगरी की प्रशंसा विदेशी लेखकों और प्रवासियों तक ने की थी और देश के केवल एक ही प्रान्त अर्थात् अकेले बंगालमें कोई छःलाख स्त्रियां प्रति वर्ष सूत कात कर पचपन लाख रुपया का माल खपा देती थीं, देश की कलाकौशल से चकित और मुग्ध होकर उन्होंने यहां तक कह डाला था कि 'यह माल देवताओं द्वारा बनाया जान पड़ता है' और यहां विदेशों से मनुष्य जुलाहों और कारीगरों से काम सीखने के लिये आया करते थे, हा आज उसी देश की यह दशा, उसी भारत की यह स्थिति ?

यह तो लिखा ही जा चुका है कि सन् १८०० तक भारत का व्यापार अति उन्नतावस्था में था। परन्तु यह उन्नति सन् १८७० तक रही। इसके पश्चात् यहां के व्यापार की अवनति और अन्य देशों के कलाकौशल आदि की बढ़ती होने लगी और होते २ इस अवस्था को आ पहुंची है। किन्तु यह उन्नति उन देशों से अपने आप नही हुई, वरन् वहां की सरकारो ने ऐसे नियम बनाये कि जिससे प्रजा को वह सीखना पड़े और व्यापार में सरलता रहे। किन्तु यहाँ उलटी ही बात हुई, यहाँ की नीति विदेशों को कच्चा माल भेजने और यहाँ के कारखानो के सामने रुकावट की दीवाल खड़ी करने की है। इसी को यों कह लीजिये कि भारत के व्यापार के सामने ऐसी रुकावटे है जिस से हमारा व्यापार कभी नही चेत सक्ता। भारतीय उद्योग धन्धों के सामने नियमों की ऐसी दीवारें खड़ी है, जिनके रहते हुए देश उन्नति कर नहीं सक्ता। वह नियम ऐसे हैं कि भारत से जो कच्चा माल बाहर भेजा जाता है, उसपर तो बिल्कुल कर नही है, परन्तु जो माल वहाँ से बनकर यहाँ आता है, अथवा जो यही बनकर एक स्थान से दूसरे स्थान को जाता है, उसपर नाना प्रकार के भारी २ कर लगे हुए है। ऐसी दशा मे भारत के व्यापार की क्या उन्नति हो सक्ती है?

फिर इसे सबही देख रहे है कि हमारे देश मे पूंजी का अभाव है। भारत के अटूट कोष की बाते अब स्वप्नकी कहानियाँ हैं। भारत के मध्यमश्रेणीवाले व्यापारी आज देवालियों की दशा में हैं। इगलैण्ड में जैसे धनवानों की संख्या अधिक है। भारत में भूखों की संख्या अधिक है। भारतीय-व्यापार उन्नति क्यों नही करता, इसका उत्तर हम

एक अंग्रेज़ विद्वान के शब्द यहां लिखते हैं। आपका कहना है-
"भारत की सरकार यहाँ की माँ बाप तो बनी, परन्तु उसने अपना कर्त्तव्य पालन नही किया। जब सेना भेजने की आवश्यकता होती है तब तो व्यय के लिये भारतवासियों से अवश्य पूछा जाता है, परन्तु उद्योग धन्धों और व्यापार के सम्बन्ध में कभी कोई बात नहीं पूछी जाती। यही नही, यहाँ के व्यापार को ऐसा ढीला और बे जोड़ बना दिया है कि जिस से विदेशियों को इस देश मे व्यापार करने का साहस हुआ, और भारत का व्यापार नष्ट, जिससे यह देश केवल राज्य ही में नहीं, वरन् व्यापार में भी परमुखापेक्षी हो गया।

धीरे २ भारत का सब धन खिंच जाने लगा, फल यह हुआ कि यहाँ वाले पूंजी के अभाव से नवीन मशीन और यन्त्रों को जो व्यापार की उन्नति के एक साधन है-कार्य्य में न ला सके।

उन पर ऐसे कर लगाये गये जो उनके व्यापार को सब प्रकार से नष्ट भ्रष्ट करने के साधन हुए। यह कर सत्तर, अस्सी प्रतिशत् तक है"।

व्यापार के साथ २ हमारे कला-कौशल की भी जो हानि हो रही है, इसका एक मात्र कारण अन्य देशों के कारखाने हैं। भारत इस समय केवल एक कृषि-प्रधान देश ही रह गया है; ऐसा केवल वर्तमान काल में ही हुआ है। एक समय भारत की कला-कौशल बड़ी उन्नति पर थी, और उस समय भारत में ऐसा सुन्दर और इतना महीन कपड़ा बनता था कि देखते ही रह जाते थे। बंगाल के कई नगरों को इसके कारण यह कहा गया था कि यह लण्डन से भी सुन्दर और मालदार हैं। यहां की कारीगरी का आदर सर्वत्र

था ; बग़दाद में क़ाज़ी के दरबार तक में उसका मान होता था ; बहुत से अंग्रेज़ यहाँ के कारचोबी के कामको आंख फाड़कर आश्चर्य्य से देखते रह जाते थे धोती की किनारी ऐसी सुन्दर और मनमोहनी होती थी, कि उसे सीखनेकेलिये विलायत से मनुष्य आते थे। सूत जो यहाँ कतता था उसके १७५ गज़ लम्बे टुकड़े का बोझ केवल एक रत्ती होता था ; एकबार केवल आध सेर रुई मे २५० मील लम्बा सूत काता गया था। एक मलमल का थान जो एक बांस की छोटी नली से निकाल लिया जाता था, वह अम्बारी सहित हाथी को पूर्णतः ढक सक्ता था। कितने ही मलमल के थानों की तोल साढ़े आठ तोला होती थी, यह थान दस गज़ लम्बे और आठ गिरह चौड़े होते थे और अंगूठी मे होकर सहज ही निकाले जा सक्ते थे ; बारीकी मे यह ऐसे होते थे कि एक थान के बारह पर्तों में होकर भी शरीर दीखता रहता था। शालों के विषय में कहना ही क्या ? वे तो नेत्रों को अपने ही पर लगाए रहते थे। चिकन का काम भी यहां बड़ा सुन्दर होता था। इसके अतिरिक्त लकड़ी, पत्थर आदि तथा अन्य कलाकौशल की भी यही अवस्था थी*।

परन्तु आज वह सब कहां हैं ? इस समय उसकी क्या दशा है ? उसकी यह अवनति इस कारण से नहीं हुई कि भारत-वासी उन्हें अब जानते नही हैं। आज भी बनारस की साड़ी और ढाका की मलमल और भागलपुरी देखने योग्य हैं ; किन्तु यह अवनति इसलिये हुई कि विदेशी कारख़ानों ने भारत की समस्त पूंजी को खींच लिया, अब हमारे पास पैसा नहीं जो

---

* इनका वृत्तान्त बौद्धों की प्राचीन पुस्तकों से मिलता है।

लगावें। आज भारतवासियों का एक मात्र साधन और आश्रय नौकरी अर्थात् दासता ही रह गया है। दरिद्रता के कारण नौकरी करने और अफ़सरों की गालियां खाने में ही भारतवासी सौभाग्य मान बैठे हैं, किन्तु आप नहीं, विवशतावश।

भारतीय व्यापार, कलाकौशल, व्यापारिक-नीति और उस पर करों की तो यह दशा है, अब तनिक अन्य करों का भी हाल जो भारत को और भी दरिद्र बना रहे है, देखिये-

सबसे पहिले होमचार्ज (Home Charge) को ही लीजिये। इसके द्वारा एक बड़ा धन परिणाम भारत से इङ्गलैण्ड जाता है। इस धनसे भारत-मन्त्री और उनके इंडिया-आफ़िस (India Office) का व्यय पूरा किया जाता है, और पेन्शन प्राप्त अंग्रेज़ों को उसी से पेन्शन मिलती है। यह धन परिमाण सत्ताईस क्रोड़ रुपया है, जो प्रतिवर्ष भारत से निकल जाता है। इतने बड़े परिमाण में से भारत को फिर लौटकर एक पैसा भी नहीं आता। पहिले यह बहुत कम था, परन्तु धीरे २ बढ़ता ही चला गया और होते २ इतना अधिक हो गया। पिछले कई वर्षों से अब यह इसी संख्या में जाता है। भारत-मंत्रि-मण्डल के अतिरिक्त रेलवे-कर; सैनिक वेतन, उसकी भर्ती के समय का व्यय, आने जाने का व्यय, तथा अन्य ऐसे ही व्यय सब इसीसे जाते हैं। ऐसे भारी करको एक अंग्रेज़ी विद्वान सर जार्ज विङ्गेटमहोदय ने राज्यका निष्ठुर कर (cnuee burda of yribune) कहा है। दूसरे महाशय मिस्टर डिग्बी साहब इसे 'बलवान जाति द्वारा रक्त का चूसा जाना' कहते हैं। इसके विषय में मिल महोदय अपने भारतवर्ष के इतिहास में लिखते हैं—

इस धन शोषण से देशकी सम्पत्ति खींची जा रही है, परन्तु इसके परिवर्तन में उन्हें कुछ भी नहीं दिया जाता। यह राष्ट्रीय उद्योगरूपी धमनियों मे से जीवन रक्त का सोख लेना है, जिसकी क्षतिपूर्ति करने के लिये कोई भी पौष्टिक-पदार्थ (अर्थात् बदला भारत को) नहीं दिया जाता"।

एक और पुस्तक में उसके विषय में लिखा है:—

देशके इस वृथा धननाश से दुखित होकर सोलह नवम्बर सन् १८८० ई० को स्वर्गीय श्रीमान् दादाभाई नौरोजी ने भारत-मंत्री के नाम लिखे अपने पत्र में एक स्थान पर लिखा था—

'बिना विचारे आजतक जो यह धन भारत से खींचा गया है उसे हम अपना दुर्भाग्य समझते हैं, परन्तु यदि भविष्य में भी ऐसा ही होता रहा तो उसे देखते हुए मानना पड़ेगा कि यह सब भारत की लूट और पतन के उद्योग हैं"।

इसके सम्बन्ध में स्वयं बहुत से अंग्रेज़ महाशयों का जब यह मत और सम्मति है, तो इससे स्पष्ट है कि भारत के लिये यह कर कितना हानिकारक और उसकी साम्पत्तिक अवस्था को नष्ट भ्रष्ट करने वाला है।

सरकारी सेनाओं को पहुंचाने के लिये इंगलैण्ड से ऋण लेकर सरकार कोई कार्य्य करती है, अथवा कोई कम्पनी बनाती है, उस धनका व्याज भारत-सरकार प्रतिमास दिया करती है, एक पुराना धन और है जो ईस्ट इण्डियन कम्पनीको उससे भारत लेनेके बदले में ऋण लेकर दिया गया है, इसका व्याज भी प्रतिमास दिया जाता है, और वह सब भारत से लेकरही सरकार देती है, इस प्रकार एक दूसरा बड़ा धन परिमाण "भारत के ऋणका व्याज" के नाम से निकल जाता है।

इसके विषय में श्रीरमेशचन्द्रदत्त ने यों लिखा है:-

'ब्रिटिशराज्य ने अपना करोड़ों रुपया संसार के अन्य भागों पर राज्य स्थापित करने में लगा दिया, परन्तु भारत जैसे महादेश को प्राप्त करने और लड़ाई आदि लड़ने में जो धन व्यय हुआ, वह सरकार ने यहीं से चुकाया है। भारत को लेने में ब्रिटिश राज्य ने अपने कोष से एक पैसा भी व्यय नहीं किया। ईस्ट इण्डिया कम्पनी इस देश मे व्यापार करने आई थी, उसने इसमें बहुत सा लाभ उठाया और फिर राज्य स्थापित करके बहुत सा धन एकत्रित किया, और जब अन्त में कम्पनी ने इसे भारत सरकार को बेच दिया तो उसका समस्त मूल्य ब्याज सहित भारतको ही भरना पड़ा। अब भी उसका कुछ भाग शेष है और वह भारत से ही वसूल करके दिया जाता है।

भारत में एक बड़ी भारी सेना रखी गई है, जो केवल भारतवर्ष की ही रक्षा के लिये नही-समस्त इंगलिश-साम्राज्य की रक्षा के लिये काम में लाई जाती है, उसका समस्त ब्याज जो लगभग दो करोड़ प्रतिवर्ष है, भारत को ही भरना पड़ता है।

ब्रिटिश जहाज़ों के बेड़े के लिये भी पन्द्रह करोड़ प्रतिवर्ष भारत ही देता है। परन्तु उनकी, ट्राम की और रेलवे आदि की जो आय होती है, वह सब सीधी इंगलैण्ड को भेज दी जाती है। दस करोड़ प्रतिवर्ष भारत के कर्म्मचारियों के वेतन में दिया जाता है, वह भारत से ही लिया जाता है।

भूमि-कर इतने अधिक हैं कि बेचारे किसान उन्हें सहन नहीं कर सक्ते, तिस पर यह लगान ऐसी भीषणता और दुर्भिक्ष के दिनों में घटने के स्थान में बढ़ते ही जाते हैं। इस

समय मालगुज़ारी की आय अर्थात् भूमिकर पांच करोड़ से ऊपर है।

नमक के ऊपर जो कर लिया जाता है, वह दिन प्रतिदिन बढ़ता ही गया और अब जाकर कोई चार करोड़ के ऊपर प्रतिवर्ष बैठता है। एक साधारण वस्तु जिसे भारत के ही नहीं, किन्तु समस्त संसार का प्रत्येक मनुष्य, वह चाहे जिस स्थिति, अवस्था और लिंगका हो खाता है, और भारत में जिसके तयार करने मे कोई डेढ़ दो आना मन पड़ता है, उस पर इतना कर लिया जाता है। यह नमक कर भारत को छोड़ कदाचित ही पृथ्वी के अन्य किसी देश में होगा।

मादक द्रव्यों से जो हानि मनुष्य को होती है, वह किसी से छिपी नहीं है, विद्वानों का मत है कि प्रत्येक देश के शासक का कर्तव्य है कि वह अपने राज्य में ऐसी वस्तुओं को प्रचलित न होने दे जिससे मनुष्यों की शारीरिक, मानसिक और स्वास्थिक सब प्रकार की हानि हों। शराब-जिस से प्रत्येक मनुष्य की कितनी हानि होती है—का प्रचार हमारे देश में बहुत है। अन्य देश के शासकगण अपने २ राष्ट्रों से इसका विनाश करते चले जाते है परन्तु हमारी सरकार इसका अधिकाधिक प्रचार ही करती जाती है और ठेके पर ठेके लोगों को देती है। कभी २ तो शराब भांग और चरस आदि के ठेकों के नीलाम होते हैं। भारतवासी मूर्ख तो है ही, बहस में बढ़ते चले जाते हैं और एक अपने दूसरे भाई को न लेने देने के प्रयत्न में ही लगा रहता है चाहे उसे साल के अन्त में लाभ के स्थान में हानि ही क्यों न उठानी पड़े। इसकी आय लगभग ग्यारह करोड़ प्रति वर्ष होती है।

इनके अतिरिक्त स्टाम्प, दस्तावेज़, अभियोग, जंगल

आदि कामों और विभागों से भी करके रूप में कोई पन्द्रह बीस करोड़ रूपया प्रतिवर्ष वसूल हो जाता है।

अब अन्य बातों को देखिये। कई और प्रकारों से भी भारत को बहुत सा रूपया देना पड़ता है।

अफ़ग़ान और भारतीय लड़ाई का व्यय, चीनके संग्राम का व्यय, एबीसीनियन और स्वेडन लड़ाई का समस्त भार भारत के ही ऊपर रहा। गत् योरुपीय महायुद्ध में भारत ने जो सहायता की है, उसे संसार भर जानता है।

यही समस्त बातें और कारण हैं जिनसे भारतवर्ष द्ररिद्रता के रोग से बुरी तरह पीड़ित है। कदाचित ही कोई ऐसा देश होगा जो इतना दीन दुखी हो। जहां दूसरे देशवाले खा पीकर बचत कर लेते हैं * वहां भारतवासियों को भरपेट भोजन भी नही मिलता करोड़ों स्त्री पुरुषों को लज्जा निवारणार्थ वस्त्र तक नहीं मिलते। घर २ दरिद्रता देवीका राज्य हो रहा है। नगरों की चमक दमक को न देखिये, कस्बों को भी छोड़ दीजिये, और उन लाखों नहीं करोड़ों झोपड़ों की ओर दृष्टिपात कीजिये जो गांवों मे हैं और जिनमें देश की सच्ची आत्माएं निवास करती हैं। देशके उन देवालयों पर घोर दरिद्रता और अज्ञान की काली घटा छाई हुई है, किसी के होंठों पर हंसी तो क्या मुस्कराहट भी दिखलाई नहीं देती। साधारण समय में भी इन करोड़ों आदमियों

---

* अकेले इगलैंड को ही व्यय निकालने के पश्चात् ३२२१४६४२२ पौण्ड प्रति वर्ष बचते है, जो भारत की उत्पत्ति से भी अधिक है।

को पेट भरना दुष्कर है, फिर जब घोर दुष्काल मुँह बहाए खड़ा रहता है, उस समय इनकी जो दशा होती है, उसे पाठक देख ही चुके हैं। इतने पर भी इस वस्त्रहीन, गृहहीन और पीड़ित जनता से दरिद्रता के प्रमाणों की मांग होती है। साल में कई मास पेड़ की छालों के आटे, गाजर के टुकड़े और आम, इमली, जामुन, महुआ आदि पर दिन काटने वालों के चूल्हों में सोना गड़े होने का स्वप्न देखा जाता है। जिनमे दरिद्रता के क्षीणता का इतना प्रकोप कि मनुष्य लाखों की संख्या में प्रतिवर्ष प्लेग हैज़ा, युद्धज्वर महामारी आदि के कालकवर हो जाते हैं। अकेले गत् युद्ध-ज्वर (INFLUENZA) में तीन करोड़ भारतवासियों की बलि चढ़ गई; इतने चार साल के योरुपीय महाभारत में भी नही मरे कटे थे। जिनमें भयंकर जीवन-संग्राम मे जन्मपर्य्यन्त पराजित होते रहने के पश्चात् नैतिक बलकी हीनता दीखती है, जिनके लिये आनन्द, सुख और विश्राम स्वप्न है, जिनके लिये जीवन का ठीक अर्थ इसके अतिरिक्त कुछ नही कि श्वानवत् आँखें मूंदकर जन्मभर एड़ियां रगड़ २ कर उसे (जीवन को) किसी प्रकार बितावे और समय के पूर्व हलके धक्के से ही चलतेबनें—कोई शोक करने-वाला नही और अधिक जीने से किसी को कोई लाभ नहीं। ऐसे ही करोड़ों मनुष्यों के बीच में रहने वाले सुख-सम्पन्न लोगों का हृदय यदि बहुधा बलपूर्वक मसोस नहीं उठता, उसमें जलन नही उत्पन्न हो उठती वर्त्तमान अवस्था का सामना नही कर उठता, अपनी दशा पर उसे घृणा, और ग्लानि, लज्जा और शोक नही व्यापते, विश्राम के समय उसमें दुखका काँटा खटकता ज्ञात नही होता, सुखके मार्ग में पग बढ़ाते समय उसकी गति दीनता—हीनता के नग्न चित्र के

सामने लज्जा और दुख से ठिठक जाने का नाम नहीं लेती, और संकट के अवसर पर उसे क्लेश की इस बाढ़को देखकर सन्तोष और शान्ति नहीं मिलती-तो इसमें आश्चर्य्य ही क्या है? लोगों की गति और मति का वैसाही विरोध हो गया है, जैसा कि सड़े पानी के नाले का। स्वार्थी जीव इस वासना पर जिसे वे आनन्द के नामसे पुकारते हैं, इस भय से कि कहीं उनका मुर्दा हृदय भयंकर दृश्य की दुखप्रभा से जागकर उन्हें बुरा भला कहने न लग जाय और कही विपत्ति की पवित्रता उनके हृदय की मलिनता को धोकर उनके वर्त्तमान रंग में भंग न डाल दे अथवा सिर भूमि में गाड़े इस कल्पना में मग्न हैं कि कहीं भी कुछ नहीं हो रहा है; सब कहीं आनन्द ही आनन्द हैं। वे अपने इस स्वप्न में ऐसे मग्न हैं कि उन्हें इस बात का बोधतक नहीं कि संसार की कामधेनु भारतभूमि आज सपूर्र्णतः दीन हीन है-सो भी केवल नैतिक-दृष्टि से ही नही-आर्थिक अवस्था में भी। उसके वत्सों के मुख से पयोधरों को बलपूर्वक छुड़ाकर निर्दयी स्वार्थी उसके जीवन अमृतोपम दुग्ध को पानकर जाते हैं। कहावत है-कि 'पावन सलिला जान्हवी के पापमोचन जलाचमन से ही मनुष्यों के जन्मजन्मान्तरों के पाप धुलजाते हैं, परन्तु देखा जाता है कि उसकी कल्लोलमय धारा में अहर्निश निरंतर विहार करनेवाली मछलियाँ उसके इस प्रभाव का अणुमात्र भी अनुभव नहीं कर पाती। ठीक यही दशा भारत की है-भारत-क्षीरसागर के क्षीर से संसार के अन्य समस्त देश परिपुष्ट हो रहे हैं, परन्तु भारतवासी मुंह फाड़े ही रहजाते हैं, अथवा यों कहिये कि आवश्यकता होने पर अन्य देशों के मनुष्यों की दृष्टि अपनी पूर्ति के लिये इस कल्परु (भारत) पर पड़ती है

और उन्हें मनवांच्छित फल भी मिलते हैं; किन्तु जिस स्वर्गादपि गरीयसी, शस्य-श्यामला-भूमि में यह कल्पतरु स्थित है, उसके निवासी सदैव टुकड़े २ के लिये तरसते रहते है। हा दुर्भाग्य! हायरी परतंत्रता!!

परन्तु देश के कल्याण के नाम पर यह अवस्था अब और अधिक समय तक नही रहनी चाहिये। जिनकी आत्मा मुर्दा हो चुकी है, उन्हें उनके भाग्य पर छोड़ कर ऊर्द्ध-मृतको को उनकी घोर निद्रा से उठाना पड़ेगा। देश की यथार्थ अवस्था दरिद्रता के इस ताण्डव-नृत्य को देखने के लिये उनके नेत्रों की पलकें उघाड़नी ही होगी। अब देश इन बातों में अधिक निद्रावस्था में नही रह सक्ता, इसे उससे सचेत होना ही पड़ेगा और उसके निवारण के उपाय कार्य्य में लाकर इन दुखों से पीछा छुड़ाना ही होगा।

इन समस्त दुखों को दूर करने और बुराइयों के मिटाने का एक मात्र उपाय 'स्वराज्य' है, वह ही इसकी एक मात्र औषधि है। दिन पर दिन आर्थिक-पराधीनता देश को हीन से हीन करती चली जाती है, युक्तियों से उसकी नसों तक को रक्त चुस गया और वह उस समय तक नही भर सक्ता जब तक भारत 'स्वराज्य' प्राप्त नही कर लेता। स्वराज्य प्राप्त होने पर दरिद्रता-सम्बन्धी और आर्थिक दुख सब आप से आप हवा हो जायंगे; देश का धन देश में रहेगा, व्यापार की उन्नति होगी और कला कौशल का पुनर्द्धार हो कर देश हरा भरा; स्मृद्धिशाली और जीवतावस्था में हो जायगा।

अतः प्यारे देश-बन्धुओ यदि आप दुखी देश का कल्याण चाहते हैं, देश से दरिद्र-देवी के आतंक को दूर कर उसे उन्नतिशाली बनाना चाहते है तो आइये, दृढ़ निश्चय होकर

मातृभूमि के नाम पर जननी जन्मभूमि के कल्याण के लिये, माता का दुख दूर करने के लिये तयार हो जाइये और स्वराज्य प्राप्ति का पूर्ण उद्योग करने में तन मन से लग जाइये, फिर दरिद्रता और अधिक भारत में नहीं रहेगी।

स्वराज्य-मार्ग में बाधाएं और उनके दूर करने के साधन ।

ससार की सगरस्थली में धीरता धारण करो ।

चलते हुए निज इष्टपथ पर बाधको से मत डरो ॥

अभी बहुत सी बातें ऐसी है जिन से भारत की स्थिति बड़ी बुरी हो रही है, किन्तु उनमें अधिकतर अथवा सबही ऐसी है जिनका आर्थिकावस्था से घनिष्ठ सम्बन्ध है। धन सम्बन्धी दुविधाओं के दूर होने पर वे आप से आप दूर हो जाँयगी, और भारत सुखी और आनन्दमय हो जायगा। अतः यहां पर उनके लिखने की ऐसी कोई विशेष आवश्यकता नहीं जान पड़ती। हां इतना अवश्य है कि समस्त दुर्दशाओं को दूर करने का एक मात्र साधन ब्रिटिश सम्राट-छत्र-छाया के अन्तर्गत रहते हुए अपने जन्मस्वत्व 'स्वराज्य' का उपभोग है। यदि हम एक स्वराज्य को ही प्राप्त करने में दृढ़ हो जांय और इस बात का निश्चय कर के कि भारत सम्राट के अन्तर्गत रहते हुए अपने स्वत्वों का उपभोग करेंगे, उसके लिये तन मन से निर्भीकता पूर्वक लगजाएं तो सन्देह नहीं कि समस्त दुविधाएं आप से आप हट जायंगी। अतः इसके लिये हमें निश्चय पूर्वक कटिबद्ध होकर प्रयत्न करना चाहिये, उससे कभी मुख नही मोड़ना चाहिये, अपने लक्ष्य पर दृढ़ रहना चाहिये, एक दिन होगा जब हम अवश्य ही 'स्वराज्य' का उपभोग करते होंगे।

परन्तु यह सदा ध्यान में रखिये कि इस कार्य्य में आप को कठिन दुख झेलने होंगे, स्वराज्य की प्राप्ति के उद्योग में

नाना प्रकार के कष्टों का सामना करना पड़ेगा, नाना प्रकार की कठिनाइयां अड़चने आप के मार्ग में बाधक होंगी, किन्तु उनसे घबराना नहीं चाहिये. निरन्तर परिश्रम के साथ दृढ़ हो कर उद्योग करते रहना चाहिये, एक दिन अवश्यही बिजय होगी। अब हम जो २ बाधाएं हमारे स्वराज्य मार्ग में उपस्थित होंगी, उनका थोड़ा सा दिग्दर्शक और उनसे छुटकारे के उपायों को यहां पर बतला कर तब आगे बढ़ेंगे।

आप यह न समझ बैठें कि हम से सभी स्वराज्य का आन्दोलन कर रहे हैं, या उसके प्रचार में किसी प्रकार से सम्मलित हो रहे है ; जहां स्वराज्य के पोषक हैं वहां उसके विरोधी भी है। परन्तु यदि आप अपना यह कर्तव्य समझ कर कार्य्य आरम्भ करे कि ईश्वर की दीन हीन सन्तानों-अपने ग़रीब देशवासियों की सेवा ही ईश्वर की सेवा है और उन्हें स्वतंत्र बनाना ही उसकी आज्ञा का यथार्थ पालन है, तो चाहे जो हो, यश या अपयश, दूसरे सहायता करें अथवा अड़चने और बाधाएं डालें हम मरते समय तक अपने कर्तव्य का पालन करेंगे, तो समस्त विघ्न बाधाएं आप से आप हट कर आप का मार्ग स्वच्छ हो जायगा। देश में बहुत से ऐसे मनुष्य विद्यमान हैं, जो नौकरशाही से पीठ ठुकवाने के लिये अपनी आत्मा पर आपही आघात कर रहे हैं। यद्यपि वे एकान्त में पूछने पर कहते हैं ' हम स्वराज्य चाहते हैं, परन्तु हम उसके प्रचार में सम्मलित होने मे विवश हैं'। यह बातें उन लोगों की हैं, जो बड़े धनशाली हैं परन्तु भय के वशीभूत होकर आत्महत्या कररहे हैं। हम स्वयं बहुत से ऐसे मनुष्यों को जानते है जिनकी यह दशा है, परन्तु हम उनका नाम प्रकाशित करना उचित नही समझते। इधर हितै-

षियों की यह दशा है कि हमारे मूर्ख भाइयों और उपाधियों के लालायित हो रहे मनुष्यों को पट्टी पढ़ाकर हमारे विरुद्ध खड़ा करते हैं। यह दोनों बाते ऐसी हैं, जिनमें हमें बहुत सोच समझ कर कार्य्य करना चाहिये। यदि उन स्वराज्य विरोधियों को छोटा समझ कर हम उन्हें उपेक्षा की दृष्टि से देखेंगे तो बहुत सम्भव है कि हमारे विरोधी हमसे जीत जावें। ऐसी अवस्था में हमें जैसे स्वराज्य प्राप्ति के लिये उद्योग करना चाहिये, वैसे ही इन विरोधियों को उत्तर भी देना चाहिये।

सब से प्रथम हमको दृढ़ता रखना चाहिये। जो लोग स्वराज्यवादी हैं, उन्हें समझ लेना चाहिये कि हमने अपने जीवन-मरण का कार्य्य अपने हाथमें लिया है; यदि इसमें हमने कुछ भी पैर ढीला किया, तो हमारा अमंगल चाहने वाले हमारा नाश किये बिना नहीं छोड़ेंगे, और ऐसा प्रयत्न करेंगे कि हम कभी उनके सन्मुख सिर तक न उठाने पावें। अतएव, यदि आप उसके लिये खड़े हो गये हैं, तो ढीले न पड़िये। उस समय यदि आपके जीवन की भी आवश्यकता पड़े तो अपनी आगामी सन्तान और देश के लिये उसे दे डालिये, अन्यथा एक समय आयेगा जब दोनो का नाम मिट जायगा। ध्यान रखिये भारत का पुनरुत्थान सचमुच आपकी मुट्ठी में है। आप परमात्मा पर भरोसा रखकर काम करें जिससे संसार की सारी सम्पत्ति से उत्तम रत्न 'स्वाधीनता' को अपनी भावी सन्तान के लिये छोड़ जाँय। स्वाधीनता के लिये सब कुछ दिया जा सक्ता है, फिर यह शरीर क्या वस्तु है? तिसपर यह शरीर आपका निजका नहीं, आपके देशका है, आपतो परमात्मा के अंश-मात्र और साधन हैं, आप सच्चे राष्ट्र-वादी बनें, भयभीत न हो, तभी आप राष्ट्रका उद्धार कर

सकेंगे। आपको चारों ओर अन्धकार सूझेगा, निराशा मार्ग में आखड़ी होगी, विपत्ति आपका पीछा करेगी, परन्तु आपको अपने पैरों पर खड़ा रहना होगा, तनिक भी विचलि हुए कि सर्वनाश हुआ।

इसके पश्चात् आपको यह भी विश्वास कर लेना चाहिये कि अनेक धनी और ज़िमीन्दार लोग भी किसी प्रकार आपके साथ न हों गे, तनिक भी भय हुआ कि छोड़कर भाग जाँयगे। चाहे वे स्वराज्य के प्रेमी ही हों, अथवा उन्हें मातृभूमि का ध्यान हो, किन्तु फिर भी उनकी शक्ति दुख सहने की नहीं, उनका मानसिक बल नष्ट हो गया है। वे सोने के ग्रह में कोमल शय्यापर पले है, वे कभी दुख के सामने नही आवें गे। ऐसी अवस्था मे आपको विवश होकर यह विश्वास कर लेना चाहिये कि दरिद्रता की अवस्था मे ही आपको अपने पैरों पर खड़े रहना होगा।

जो दूसरों के आधीन हैं, जिन्हों ने अपना तन मन बेच दिया है, जो आलस्य की गोद में पले हैं, जो विलासताकी प्रबल धारा मे बहे जाते हैं, जो विना क्रय किये ही विक गये है, जो उपाधियों और पदवियों के भूखे है, और जो नहीं जानते कि मान और मर्य्यादा, लाभ और उपकार, और उन्नति और वृद्धि के जीवन की प्रथम अवस्था राजनैतिक (राष्ट्रीय) स्वतंत्रता है, इसके विना जीवन व्यर्थ है वे भी कभी हमारा साथ नहीं देने के हैं, और सम्भव है कि कभी कुछ अनिष्ट भी कर बैठें, क्योंकि दुखी और बरवश क्या नही कर डालते? अतः उसने भी सावधान रहना चाहिये।

अब रहें कृषक और व्यापारी लोग, जो एक प्रकार से स्वतंत्र प्रकृति व वृत्ति के मनुष्य समझे जाने चाहिये। कृषकों

की संख्या ही भारत में अधिक है ; सुशिक्षित लोग तो दाल में नमक के बराबर है। अभी कृषक-वर्ग विकल्प की मध्य धारा में ही पड़ा हुआ है । यद्यपि अब उनकी स्थिति पर विषेश ध्यान दिया जाता है और वे कांग्रेस में भी सम्मलित होने के लिये निमंत्रित किये जाते हैं, तथापि उनकी दशा अभी ऐसी हैं कि भय दिखाकर वे पीछे को हटा दिये जा सक्ते हैं। इसलिये आवश्यकता है कि उनकी स्थिति को पूर्णतः सुधारा जाय, क्योंकि यदि अकेले कृषकों को ही सम्भाल लिया जाय, यदि इन्हीं को अपने पैरों पर खड़ा होना सिखा दिया जाय, तो आशा है कि स्वराज्य का काम पूरा हो जाय, मान लीजिये-आपको स्वराज्य का कुछ अंश मिल भी जाय तो मनुष्य उसे कुचल डालने का भी बड़ा प्रयत्न करेंगे, डिस्टिक्टबोर्ड (Dist Board) और चुंगी (Municipality) की दशा सब जानते ही हैं, वहाँ के प्रतिनिधि-रूप मनुष्य किस प्रकार चापलूसी के शिकार हो रहे हैं। इससे भय है कि उसका कार्य्य भी थोड़े से शिक्षित पुरुषों द्वारा चल सक्ता है ? अतएव उसके लिये इन्हें (कृषकों को) पहिले ही से सम्भाल लेने की आवश्यकता है।

एक बातका भय और भी है-हमारे स्वराज्य-वादियों में भी अधिकांश ऐसे हैं जो स्वयं तो स्वतंत्र हैं, पर अपने भाई बन्धुओं को कोल्हू में पिसवा देना चाहते है, अर्थात् वे स्वयं तो सन्मुख आकर कार्य्य करने के लिये तयार नहीं और दूसरों को आगे करते हैं, और जब समय आता है अथवा जब उनके ऊपर कोई लाल पीली आँखे करता है तो जो हमारे सामने बड़ी २ लम्बी बातें करके बड़े स्वराज्यवादी बनते हैं, वे राक्षसी रूप धारण कर नेत्र दिखलाने लगते हैं। ऐसे

मनुष्यों से भी हमें सावधान रहना चाहिये; और जो सच्चे उत्साही तथा कार्य्य करनेवाले हैं, और जिन्हें अपनी मातृभूमि के लिये कष्ट सहने में ही अपूर्व सान्त्वना मिलती है, उसकी आराधना ही को वे सब पापों का प्रायश्चित समझते हैं, अपनी मातृभूमि के लिये ही प्राण धारण करना जो जीवन की सब से बड़ी सफलता और लक्ष्य समझते हैं और जो समझते कि उसके लिये प्राण देना तो अक्षय अमर पद को पाना है उन्हें ही साथ रखना चाहिये।

साहित्य भी एक ऐसी वस्तु है, जिसका जनता पर बड़ा प्रभाव पड़ता है, कोई स्वराज्य प्रचारक हर जगह तो व्याख्यान दे ही नहीं सक्ता, अथवा सभी मनुष्य अंग्रेजी पढ़े लिखे तो हैं ही नहीं, इसलिये स्वराज्य पर छोटे २ लेख और व्याख्यान पुस्तकाकार देशी भाषा में छपकर सर्वसाधारण में बांटे जाने अथवा लागत मूल्य पर बेचे जाने की आवश्यकता है, इस से उनमें जागृति उत्पन्न होकर आन्दोलन को बड़ा सहारा मिलेगा।

हिन्दू मुसलमानों का वैमनस्य भी स्वराज्य का बड़ा बाधक है, उस से इसमें जो विघ्न पड़ता है, वह हमें स्वराज्य प्राप्ति से कोसों दूर रखता है, और देशकी समस्त आशाओं पर पानी फेर देता है। इसलिये अब हिन्दू मुसलमानो को परस्पर सहकारी होकर ही स्वराज्य के लिये आन्दोलन करना उचित और कल्याणकारक है, क्योंकि ऐसा करने से हमें पूर्ण आशा है-संसार में कोई शक्ति नही जो फिर हमे हमारे ध्येय में असफलीभूत कर सके इस हिन्दूमुसलमान-विभिन्नता को हम स्वराज्यका सर्वोरि बाधक समझते है, अतएव यहां पर उसकी थोड़ी सी विवेचना करना हम उत्तम समझते हैं।

हिन्दू-मुसलमान-प्रश्न ।

जो लड़ते ही रहजाओगे, पिट जाओगे ।
अपने ही अस्तित्व मिटाकर मिट जाओगे ॥

इस समय भारत की अन्य जातियों में हिन्दू और मुसलमान ही प्रधान हैं । अन्य जातियाँ उनके सम्मुख अंगुलियों पर गिनने योग्य हैं, तो भी उनमें परस्पर पूर्ण ऐक्यता, प्रेम और सहानुभूति है । परन्तु खेद है कि हिन्दू और मुसलमान जो इस समय देश की सीधी और बांई आंखे अथवा दोनों हाथ-पांव अर्थात् एक जाति हाथ और दूसरी पैर है, अपने धार्मिक भेदभाव के कारण मेरे मिटते हैं । इससे हमारा यह तात्पर्य नहीं कि अकेले हिन्दूओं का ही अपराध है वा अकेले मुसललानों का । नहीं, इसमें दोनों का अपराध है और दोनों ही एक दूसरो से भेद भाव और वैमनस्य रखते है । यह भी देखने में आता है कि यह बात शिक्षित हिन्दू मुसलमानों में बहुत कम पाई जाती है, शिक्षित समुदाय इसे अच्छी नहीं समझता. वे दोनों जातियों को समान समझते और दोनों को एकही दृष्टि से देखते हैं। परन्तु यह भी नहीं है कि समस्त शिक्षित अच्छेही हैं और समस्त अशिक्षित बुरे । जहां ऐसे शिक्षित है, जो दोनों जातियों में परस्पर मित्रभाव रखना चाहते हैं, वहां कतिपय शिक्षित हिन्दू मुसलमान ऐसे भी हैं, जो सदैव आपसमें झगड़ा कराकर आनन्द से तमाशा देखना चाहते हैं, बहुधा वह अपने ध्येय में सफल भी होते हैं । अभी गतवर्षों * में जब दशहरा मोहर्रम एक साथ आकर पड़े थे अथवा कई बार ईद के अवसरों पर उन्हों ने अपने मन्तव्य

---

* १९१७, १९१८ और १९१९

को हाथ से नहीं जाने दिया, और परस्पर लड़ाई झगड़ा कराके रक्त की नालियां बहाई हैं, दोनों ओर से जानों को खोवाया है और सैकड़ों को करागारवासी बनवा दिया है। इसी प्रकार अधिकांश परस्पर मेल भी रखते हैं, एक दूसरे के साथ सहानुभूति प्रकट करते और उनके धार्मिक, समाजिक तथा अन्य प्रकार के उत्सवों और कार्यों में सम्मलित होते हैं। बहुधा देखने में आता है कि ग्रामों के हिन्दू अपने मुसलमान भाईयों के ईद, मुहर्रम और अन्य तिहवारों में और मुसलमान हिन्दूओं के दशहरा, दिवाली, होली और सलूना आदि त्योहारों में सम्मलित होते और मनाते हैं। दस पन्द्रह वर्ष पूर्व दोनों जातियों का यह प्रेम और एकता ग्राम और नगर सबही में थे, एक दूसरे के कार्यों में पूर्ण सहानुभूति के साथ भाग लेते थे। परन्तु अब वह बात देखने में कम आती है।

इधर जब भारत बासियों के हृदय क्षेत्र में राष्ट्रियता के बीज बोए जा रहे थे, और उन्हे उन्नति के मैदान में अपने पैरों पर आप खड़े होने की शिक्षा दी जा रही थी, उस समय कौन ऐसा अभागा होगा, जिसने भारतमाता की पवित्र वेदी पर अपना मस्तिष्क न टेका हो? ऐसा कौन नराधन था जो जातीय उत्थान और राष्ट्र के अभ्युदय के लिये कटिबद्ध होकर कर्म्मक्षेत्र में न आया हो? किसने अपने हृदय में राष्ट्रीयता को सर्वोच्च स्थान नहीं दिया? सन् १८८५ में भारत की जातीयसभा (National Congress) के स्थापित होने ही देश की समस्त जातियों ने सम्मलित होकर उसके पवित्र भावों और उद्देश्यों को अपने हृदय में स्थान दिया और तभी भारतीय मुसलमानों ने भी कांग्रेस को अपने जातीय उत्थान का केन्द्र बनाया और उसकी ओर पूरे बल के

साथ झुके। कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन में मुसलमानों का केवल एकही प्रतिनिधि था। दूसरे अधिवेशन में तैतीस हुए और चौथे में उनकी संख्या जाकर (२२१) दो सौ इक्कीस हो गई। उस प्रकार दिन प्रतिदिन मुसलमानों का झुकाव राष्ट्रीय उत्थान की ओर बढ़ता ही गया, और वे लोग अधिकाधिक संख्या में प्रतिवर्ष अपने प्रतिनिधि जातीय सभा को भेजने लगे।

परन्तु समय की गति विचित्र है, स्वार्थ बड़ा बुरा पदार्थ है। जिस प्रकार सन् १८५७ के पूर्व हिन्दू मुसलमानों में बड़ा प्रेमभाव था, एक दूसरे के लिये जीवनार्पणार्थ तक तयार थे, परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ महानुभाव इसे सहन न कर सके, और किसी न किसी प्रकार दोनों जातियों में विद्वेप कराने ही के प्रयत्न में लगे रहते थे अन्त को अपने ध्येय में सफल हुए, हिन्दू मुसलमानों में झगड़ा उठ खड़ा हुआ; और एक दूसरे को शत्रुवत समझने लगे। जब कुसमय बीता, और दोनों जातियों में फिर प्रेम उत्पन्न हो गया, तो फिर मनुष्यों के हृदयों में वही भाव उदय हुआ, और विद्वेप की आग भड़की, स्वार्थ ने अपना रंग जमाया, और इस प्रेम बाढ़ को वे उसी प्रकार रोकने का प्रयत्न करने लगे।

राजनैतिक चाल बड़ी ही विचित्र होती है, उसको समझना तनिक टेढ़ी खीर है, इन स्वार्थी लोगों ने मुसलमान नेताओं को अपनी ओर गांठना आरम्भ किया और लगे उन्हे झांसा पट्टी देने, लालच बुरा होता है, उसके वश में पड़जाने से नाना प्रकार के अनर्थ हो जाया करते हैं, राजनैतिक बातों में तो वह जादू का सा कार्य्य करता है। और हुआ भी ऐसाही, उनकी चाल चल गई, कुछ मुसलमान नेता

राष्ट्रीय सभा के विरुद्ध खड़े होकर उसे बुरा भला कहने लगे। स्वार्थियों ने उनकी पीठ ठोकना आरम्भ की, उन्हे अपना कार्य्य निकालने का अच्छा अवसर हाथ आया, वे इससे कब चूकने वाले थे। किसी न किसी प्रकार वे भी इनके सुरों में सुर मिलाने लगे। उन्होंने अपने पूरे बल के साथ मुसलमानों को भड़का कर कांग्रेस के विरुद्ध खड़ा किया और आप उनके सहायक बने। खोज २ कर कांग्रेस में बुराइयां बतलाने लगे, उसे हिन्दूओं की ही सभा कहा गया, और मुसलमानों को बतलाया गया कि इससे केवल हिन्दूओं को ही लाभ है, मुसलमानों को नहीं। सुतरां जहांतक उसके बहकाने में उनकी दाल गली वहां तक कुछ भी नही उठा रखा। मुसलकानों में इस समय धार्मिक उत्साह था, वे इस चाल को कुछ भी नहीं समझ सके, लालच के भुलावे में पड़ कर उन्होंने राष्ट्रियता से बिल्कुल मुंह मोड़ लिया। वहुतों का विचार तो यहां तक बदला कि भारत-भूमि में उत्पन्न हो कर भी ईरान, अफग़ानिस्तान और तुर्किस्तान आदि को वे अपनी मातृभूमि समझने लगे। हम पूछते हैं, क्या कोई तुर्क अफग़ानिस्तान को अपनी मातृ-भूमि कहेगा? परन्तु खेद है भारतीय मुसलमान उक्त प्रदेशों को अपनी मातृभूमि बतलाने लगे, वे भूल गये कि हिन्दू उनके सगे भाई हैं, भारतही उनकी मातृभूमि है, इसी के जल वायु, से हमारा शरीर बना है, इसी के अन्न को खाकर जीवित हैं और भविष्य में भी वही पोषण करती रहेगी।

यह प्राकृति नियम है—जहां कांटे होते हैं; वहां पुष्प भी होते हैं। इसी प्रकार जहां देश-द्रोही होते हैं, वहां देश हितैषी भी हुआ करते हैं, इतिहास इस बात को पुकार पुकार कर कह रहा है। कुछ देश-प्रेमी मुससमान नेता

उनकी बनावटी बातों में नही आये और बराबर राष्ट्रीय आन्दोलन में सम्मलित होते रहे। उन्होंने उन्हें भी उससे अलग करने का बड़ा प्रयत्न किया, परन्तु उसमे सफलमनोरथ नहीं हुए। इधर जो लोग उससे अलग हो गये थे, वे भी देशही में तो रहे; कुछ उससे अलग तो होही नहीं गये ? अत. देश में जो कुछ राजनैतिक आन्दोलन होते रहे, उनके कानों मे पहुंचते रहे और धीरे २ उनपर अपना प्रभाव डालते रहे। साथही उन में सुशिक्षा का प्रचार हुआ। मुसलमान नवयुवकों ने पाश्चात् संसार की सैर करके लौटने पर अपनी स्थिति को बड़ा तुच्छ पाया। उन्होंने कार्य्य करना आरम्भ किया, घोर आन्दोलन होने लगे, देश में एकयता की पुकार पड़ी, और मनुष्य राजनैतिक सभाओ में सम्मलित होने लगे, फल यह हुआ कि देश में नवीन शक्ति का संचार हुआ और सर्वसाधारण तक में आन्दोलन की ध्वनी पहुंचने लगी।

कहावत है—जबतक किसी जाति वा राष्ट्र के उत्थान का समय नही आ जाता, उसके मार्ग मे नाना प्रकार के विघ्न बाधाएं आ उपस्थित होते हैं। और जब समय आ पहुंचता है, तो कोई भी ऐसी शक्ति नहीं, जो उस में कठिनाइयां उपस्थित कर सके। अभी भारत के सुख-दिवस दूर थे, उसे अभी बहुत कुछ दुख देखने थे, अतः उस एकयता में विद्वेष की आग फिर भड़की। दोनों जातियां पुनः भिन्न २ होकर आन्दोलन करने लगीं। भेदभाव यहां तक बढ़ा कि दोनों के आन्दोलन में बड़ा भारी अन्तर हो गया। किन्तु फिर भी एक दूसरे से आशा करते रहे कि वे हमारे आन्दोलन में सम्मलित हों, परन्तु किसी की आशा पूर्ण नहीं हुई, उलटा एक दूसरे का

अविश्वास करने लगे, दोनों भ्रममे पड़े, और उसकी भँवर में पड़कर चक्कर खाने लगे।

मुसलमानों में तो यह भ्रम और अविश्वास यहां तक बढ़ा कि वे हिन्दूओं की हवा तक से भय करने लगे। घात और प्रतिघात आरम्भ हुआ, परस्पर सहानुभूति नहीं रही, एक का भारत एक और दूसरे का दूसरा हुआ, द्वेषभाव की रेलापेल मची, मुसलमान हिन्दुओं के और हिन्दू मुसलमानों के बिगाड़ में खड़े हुए। दोनों के हृदयों से स्वजातीयता के भाव जाते रहे, और भूल गये कि एक ही मातृभूमि की सन्तान होने से परस्पर भाई २ हैं, एक के हित से दूसरे का हित और एक के कल्याण से दूसरे का कल्याण है। कहीं २ तो यह भाव यहां तक बढ़े कि हिन्दुओं की हितचिन्तना भी मुसलमानों को बनावटी ज्ञात होती थी और वे उन्हें गाली गलौज तक करते थे।

यह वैमनस्य तो था ही, उधर एक दूसरी समस्या गो-वध की उठ खड़ी हुई जो विरोधका सबसे बड़ा कारण सिद्ध हुई। परन्तु निष्कपटभाव से हम कहेंगे कि इसमें दोनों जातियोंका ही अपराध है। हिन्दुओंका अपराध इसमें यह है, और अधिक है, कि वे गाय कसाई को क्यों बेचते हैं? यदि वे ऐसा न करेंगे, तो गोवध भी बन्द हो जायगा। उन्हें कसाइयोंको बेचनेके स्थान में उनकी रक्षार्थ वे क्यों नहीं अच्छे २ गोशाला जिनका प्रबंध और व्यवस्था अच्छे देशभक्त और गोहितैषी सज्जनों के हाथों में हो, स्थापित करते? दूसरी यह बात है, कि जब साधारण दिनों में सहस्रो गायें मारी जाती हैं, औन हिन्दू कुछ नहीं कहते, तो क्या कारण है, कि बकरीद के दिवस ही झगड़े उठाये जाते हैं? और फिर क्या परस्पर के लड़ाई झगड़े से गोवध

बन्द हो जायगा ? इसके लिये सालभर तक बराबर आन्दोलन करते रहने की आवश्यकता है। यदि मुसलमानो को प्रेम-पूर्वक समझावें, तो कोई कारण नहीं, कि गोवध बन्द न हो जाय, और इस विरोध से राष्ट्रीयता की जो हानि हो रही है, वह बच जाय, क्यों कि लड़ते तो हम भाई २ हैं, और बन पड़ती है यार लोगोंकी, और वे ताना देकर कहने लगते हैं—"यह तो लड़ते ही रहते है, राजनैतिक अधिकारों और स्वराज्य का यह क्या उपभोग करेंगे ? तब तो और भी लड़ाई झगड़े होंगे"। मुसलमानों का अपराध यह है, और इससे हमको खेद होता है, कि वे इस पापकार्य्य को पुण्यकर्म्म समझ बैठे हैं, और तो क्या, उसे उन्होंने धर्म्म तक में सम्मलित कर लिया है, तभी तो बकरीद के दिन गायका बध करना वे आवश्यकीय और धार्मिक समझते है, और इसी धार्मिक झगड़े के कारण वे हिन्दुओं से मेल करना अनुचित मानते है। परन्तु यह उनकी भयंकर भूल है; लड़ना, झगड़ना और हत्याकरना धार्मिककर्म नहीं, और न भगवानही इससे प्रसन्न होते हैं। कुरान शरीफ़ में लिखा है—"जो अपने पड़ोसियों का जी दुखाता है, वह मोक्ष नही पा सक्ता, स्वर्ग नहीं जा सक्ता"। कितने मुसलमान हैं, जो इस उपदेश पर चलते हैं ? देखने में आता है, कि मुसलमान अपने पड़ोसी हिन्दुओंका जी दुखाने से नही चूकते। जब बकरीद के दिन गोवध से उनके हिन्दूभाई दुखित होते हैं, तो वे इस कर्म्म को क्यों करते हैं ? इसमें उनको लाभ ही क्या ? उचित तो यह है, कि अपने भाइयों की प्रसन्नतार्थ वे इस दिन गोवध न करें, ईश्वर इससे प्रसन्न ही होंगे-ऐसा हमारा विश्वास है। अच्छा, क्या बकरा बलिदान करने से पुण्य प्राप्त नही हो सक्ता ? क्या गोवध

में ही वह पुण्य रखा है ? नहीं जानते इसी में क्या भारी पुण्य मिल जाता है ? मुसलमानो को ध्यान देना चाहिये, कि ऐसा अधिक करते रहना राष्ट्रीयताकी जड़ काट कर परतंत्रताकी शृंखलाको और भी दृढ़ करना है।

हिन्दी-उर्दू का भेदभाव भी विरोधका एक कारण है। मुसलमानोका कहना कि "उर्दू हमारी मातृ-भाषा है"—नितान्त भ्रममूलक है। वह समझते हैं, कि हिन्दू बल-पूर्वक हिन्दी को हमारे मत्थे मढ़ना चाहते हैं, यह भी भूल है। जिस प्रकार उन्हों ने मातृ-भूमिका उलटा अर्थ ले लिया है, उसी भाँति वे इसे भी भूले हुए हैं। हिन्दुओं का यह मन्तव्य कभी नहीं, कि वे उर्दू का विनाश चाहते हों। हिन्दी, उर्दू का झगड़ा धार्मिक नही, राष्ट्रीय है। हिन्दी से जितना लाभ हिन्दुओं को है, मुसलमानों को भी उतना ही है। जिस प्र कार देशकी भाषा इस समय अंग्रेज़ी हो रही है, उसी प्रकार हिन्दी-उर्दू को अर्थात् साधारण बोलचाल की भाषा को राष्ट्रीय-भाषा बनाना चाहते है, लिपि केवल नागरी हो; इसका कारण यही है कि नागरी लिपि सरल और सीधी है; हमारे मुसलमान भाई भी इसे स्वीकार किये बिना नहीं रह सकते। अतः इस झगड़े को उठाना मुसलमानों की भूलके अतिरिक्त और कुछ नहीं कहा जा सक्ता।

हिन्दू और मुसलमानों में विरोध होने से देशकी बड़ी भारी हानि हो रही है। इस बात को सभी स्वीकार करेंगे, कि अभी देश उस स्थितिको नहीं पहुंचा है, जब एक दूसरेकी सहायताकी आवश्यकता न रहे। मुसलमानों के लिये हिन्दू आवश्यकीय हैं, और हिन्दुओं के लिये मुसलमान। दोनों को एक ही स्थानमें निवास करना है, दोनों को इसीके जल, वायु

से अपना शरीर पालना है; भारत में उत्पन्न होने के कारण दोनों का घनिष्ठ सम्बन्ध है। अतः दोनो का एकही कर्त्तव्य है कि एक होकर मातृभूमि-भारत की सेवा करें। जब दोनों की स्थिति एकसी है. तो दोनोका कर्तव्य है, कि वे एक होकर प्रेमपाश में बंध जावें और इसी में दोनों का कल्याण है। राजनैतिक स्वत्व दोनो के एक है। यद्यपि अन्य मनुष्य दोनों की इस फूटके कारण हैं, और वे सदैवही यह उद्योग करते रहेंगे, कि दोनो में फूट बनी रहे, क्यों कि उनमें फूट बने रहने के कारण ही उनका स्वार्थ सिद्ध होगा, अर्थात् न तो सरकार स्वयं ही स्वराज्य देगी, और न हमही उसे ले सकेगें। अतः यदि स्वराज्य को लेकर भारत के दुख और संकटको दूर करना है, तो इस प्रकार की चालों से बचकर, फूट को दूरही से प्रणाम कर दीजिये, और कह दीजिये कि अब किसी की दाल नहीं गलेगी, अर्थात् अब हम दोनो जातियों मे वैमनस्य नहीं हो सक्ता। अब दोनों जातियां एक और भाई रहें। जहां यह बात हुई, तहाँ कोई भी शक्ति नहीं कि जो भारत को स्वराज्य से रोक सके और उसे अपने वास्तविक स्वत्वों का उपभोग न करने दे।

हर्षका विषय है, कि रौलटबिल की कृपासे हमें वह बात फिर प्राप्त होगई, अर्थात् दोनो जातियो में वैमनस्य दूर होकर एक्यता उत्पन्न हो गई। इसके लिये हमें दूसरों का कृतज्ञ होना चाहिये कि जिनके अनुग्रह से भारत को वह बात मिल गई, जिसके लिये वह चिरकाल से लालायित हो रहा था, अर्थात् हमारी यह पुरानी सम्पत्ति (हिन्दू मुस्लमान प्रेम) जो हमसे चालों द्वारा छिन गई थी और जिसके लिये हम चिरकाल से तड़प रहे थे, हमे फिर मिलगई, हिन्दू और

मुसलमानों के प्रेम और एक्यता का अनन्त भंडार हमारे हाथ लग गया, और अब वह किसी प्रकार नहीं जाने देना चाहिये। अब हिन्दू मुसलमानों के विचार, कार्य्य और ध्येय एक हैं, और अन्तकाल तक वे एक ही रहें"—ईश्वर से यही हमारी प्रार्थना है, क्योंकि अबकी उनकी एकता पर परस्पर के रक्त की मुहर लग गई है, जो सदैव स्थायी रहेगी, और जब तक सृष्टि है किसी प्रकार भी धोए न धुलेगी, यह हमें सदा स्मरण रखना चाहिये।

सत्याग्रह ।

जागृति की यह लहर नव, हृदयों में जो आरही-
सत्याग्रह से देश की निश्चय विजय बता रही ॥

हमारे इस लिखनेसे देश-वासियों को यह न समझ बैठना चाहिये कि हिन्दू-मुस्लिम एकता से ही भारत को स्वराज्य प्राप्त हो जायगा, अथवा हम दोनों का परस्पर मेल देखकर सरकार हमको स्वराज्य देदेगी। नही,कदापि नहीं, यह आशा हमें भूलकर भी नही करना चाहिये, और न इसी भरोसे पर रहना चाहिये कि हमारा थोड़ासा आन्दोलन ही उसकी प्राप्ति में सहायक होगा। सोभी नही, किन्तु इसके लिये हमको घोर परिश्रम करना पड़ेगा, बड़ाभारी आन्दोलन करना होगा; बड़ी २ कठिनाइयों को सहन करना पड़ेगा और आवश्यकता पड़ने पर सर्वस्व तकको त्याग देना होगा। तब कहीं जाकर हमें अपने चिरकालीन ध्येय में सफलता प्राप्त होगी। इस विषय में सत्याग्रह हमारा पूर्ण सहायक होगा, वह हमारे ध्येय की पूर्ति में हमे बहुत कुछ सहारा और सहायता देगा, अतः यहां पर "सत्याग्रह" के विषय में भी थोड़ा लिखना हम उचित समझते हैं।

"सत्याग्रह क्या है"? पहले इस बातको समझ लेना चाहिये। "किसी बलशाली-शक्ति के सामने सत्य और प्रेमके साथ में महान से महान कष्टों को झेलते हुए, उस पर किसी प्रकार घात वा वार न करके अपने ध्येय की प्राप्ति का नामही सत्याग्रह है" जहां२ प्रजा पर भीड़ आकर पड़ी है,उसने सत्याग्रह के सहारे ही अपने आन्दोलन में सफलता पाई है, इतिहास

इस बातका साक्षी हैं। हमपर चाहे जितने दुख पड़े, विपदाओं के पहाड़ टूटें, दण्ड मिलें, कारागारवास करना पड़े, फांसी तक मिल जाय, परन्तु अपनी इच्छा के विरुद्ध कोई कार्य्य न होने देगें और प्रेम पूर्वक सत्यके पथ पर उसका निरोध करेंगे, यही सत्याग्रह है। स्वराज्य के प्राप्त करने में हमें सत्याग्रही होना पड़ेगा। नाना प्रकार के संकट उठाने पड़ेगे, दुख झेलने पड़ेगे, कठिनाइयोंका धैर्य्य पूर्वक सामना करना पड़ेगा परन्तु शान्त रहना पड़ेगा, तब कहीं जाकर स्वराज्य मिलेगा।

सत्याग्रह वह शस्त्र है, जिसके सामने मनुष्य की तो क्या, बड़े २ पशुतक वशमें हो जाते हैं; परन्तु सत्याग्रही होना चाहिये। सत्याग्रही के लिये सबसे बड़ी बात यह है कि वह मार खाना सीखले, और मारना भूल जाय। जो समझने लगे कि सुख दुख मान लेनेका है, वह कुछ भी नहीं है, उसके पैरों पर बड़े २ चक्रवर्त्ती सम्राट लोटने लग जाते हैं। सुख और दुख, और लाभ और हानिको समान समझकर जो लोग सत्याग्रह करते हैं, वे कभी हताश नहीं होते। परन्तु सत्याग्रह का जहाँ एक बार अवलम्बन कर लिया, वह छोड़ा नहीं जा सक्ता; यातो सत्याग्रही विजयी होता है और अपने विरोधी को आधीन कर लेता है, अथवा सत्यको वह आत्मनिवेदन कर देता है। गुरु गोविन्दसिंह के पुत्रों ने सत्य पर प्राण दे दिये, परन्तु धर्म्म नहीं छोड़ा।

"सत्याग्रह तप है' यह किसीको न भूलना चाहिये। काम, क्रोध, मोह, लोभ, क्षुधा और तृष्णा (पिपासा) इन सब वस्तुओं को जो वशमें करलेता है, वही पक्का सत्याग्रही है। सब प्रकार के तपों के लिये जैसे आत्मसंयम की आवश्यकता है, उसी प्रकार सत्याग्रह के लिये भी। जिसने आत्म-संयम करके

उक्त बातों को वश में कर लिया, उसे किसी का भय नहीं। सत्यका आचरण करते हुए वह निर्भय रहेगा। आत्मा अमर है, वह किसी प्रकारभी नष्ट नहीं किया जा सक्ता,उसी प्रकार सत्याग्रही भी अमर है, किसी शक्तिका साहस नहीं,जो उसे परास्त कर सके। सत्याग्रही अदृष्ट शक्ति रखता है, उसे ही अपनी शक्ति और सुख का अनुभव होता है, किसी अन्यको नहीं। वह अपनी शक्तियां अजेय और अदम्य समझता है। पशुबल से जो शक्तियां काम लेती हैं वे आत्मावलम्ब रखने वाली शक्तियों (सत्याग्रहियों) से सदैव डरा करती हैं कि न जाने निर्दोष का उपमर्दन कब उन्हें नष्ट करडाले ? न्याय का पक्ष लेकर जो कार्य्य करता है, और किसी से कुछ न कहकर स्वयं कष्ट सहने को तयार रहता हैं, अन्त में उसकी विजय होती है। सत्याग्रहीका आत्मा परमात्माके समान ही बनजाता है, उसके सामने बड़ी २ शक्तियां भी एक बार काँप उठती हैं।

परन्तु ध्यान रखना चाहिये कि सत्याग्रह का पूर्ण अनुभव किये बिना आत्मा बलवान नहीं हो सक्ती। उसे अपनी आत्मा को सदैव पवित्र बनाने का उद्योग करते रहना चाहिये, किसी से कभी कोई अपशब्द या बुरी बात न कहना चाहिये। सत्याग्रही को जो कष्ट देते हैं, वे तो भूलकरते ही हैं, परन्तु सत्याग्रही बनकर जो कष्टों को कष्ट मानता है, वह उन से भी अधिक भूलकरता है। सत्याग्रही को सदैव प्रसन्नवदन, दृढ़वृत्ती, ईश्वरभक्त और धैर्य्यवान रहना चाहिये। आशावादी बने रहना तो सत्याग्रही का एक मुख्य सिद्धान्त है।

यह सबही जानते हैं कि अंग्रेज़ी शासनका वर्तमान रूप इस प्रकार का है, कि उससे यह आशा नहीं की जा सक्ती,कि भविष्य में कोई समय ऐसा आवेगा, जब वर्तमान शासन

पद्धति स्वराज्य के रूप में परिणित होगी। यह भी सर्वमान्य है कि किसी देशमें वहीं के मनुष्यों का शासन होना न्याय संगत है। इसलिये इसकी चेष्टा करना अर्थात् सम्राट छाया अन्तर्गत् स्वराज्य मांगना ईश्वरीय आज्ञापालन करना है। परन्तु उसके लिये निर्धन और शक्तिहीन भारत वासियों को सत्याग्रह का सहारा लेना चाहिये। इस धर्म्मकार्य्य में प्रत्येक भारतवासीको सम्मलित होना चाहिये। जो मातृभूमिके सच्चे उद्धारक हैं, उन्हें यह अवसर नहीं खोना चाहिये। यह आन्दोलन वह है जिसमें दूसरों को कुछ न कष्ट देकर स्वयं कष्ट सहते हुए अपना ध्येय प्राप्त करना है। ईश्वर के ऊपर भरोसा रखकर हमें अपने ध्येय की प्राप्ति और भविष्य-सन्तति के कल्याण के लिये तयार हो जाना चाहिये, इसका परिणाम शुभ ही होगा। स्थान २ में "सत्याग्रह सभाएं" खुल जाना चाहिये और उसका आन्दोलन न केवल नगरों में, गांवों के छोटे २ झोपड़ों तक में होने लगे, तो बहुत उत्तम होगा, क्यों कि निर्बल उसे समझ लें तो हमारी यह अधोगति न रहेगी और हमारा भविष्य उज्वल होगा। परन्तु सबको यह आन्दोलन धार्मिककृत्य ही समझना चाहिये, और जिस प्रकार हमारे पूर्वजों ने धर्म्म के नाम पर अपने प्राण निछावर किये हैं, उसी प्रकार यदि हमें भी कष्ट सहना पड़े, तो घबड़ाना नहीं चाहिये। हमारी शक्ति तभी बढ़ेगी, जब हम अपनी आत्माओं को बलवान बनावेंगे। बलीआत्मा ही संसार में जीवित रह सकती है, और आत्माएं सत्याग्रह से ही बलवान होंगी। नित सवेरे उठकर हमें आत्मबल बढ़ाने के लिये ईश्वर से प्रार्थना करना चाहिये, और तन, मन, धन से सदा देश-हित-चिन्तक में संलग्न रहना चाहिये। यदि देश, सुखी और

सम्पन्न हो तो हम और हमारे कुटुम्बी सबही सुखी रहेंगे। देश में यदि स्वराज्यकी जड़ न जमी तो हमारे लाख प्रयत्न करने पर भी हम स्थायी सुख शान्ति का उपयोग नहीं कर सक्ते। परन्तु सत्याग्रह यह बतलाता है कि इस चेष्टा में अर्थात् स्वराज्य के प्राप्त करने में सब से प्रथम इस बातको स्वीकार करना होगा, कि हमसे कोई अनिष्ट न होजाय, और तब सत्याग्रही बनो। यदि ऐसा न समझ लिया, तो हाथ से पाप हो जाने की सम्भावना है, कारण कि सत्याग्रह धर्म्म यह नहीं बतलाता कि ऐहिकसुख और स्वार्थ के लिये किसी को हानि पहुंचाई जावे। यह ध्यान रखना चाहिये, कि सत्याग्रही को सत्यपक्ष की विजय तो करानी ही होती है, साथही यह भी विचार होता है कि उसका आग्रह किसी विरोधी के सम्बन्ध में अवश्य है, और उस विपक्षी को शक्तिशाली मानकर निर्बल मनुष्य केवल अपने आत्मिक बल से उसका सामना करना चाहता है। यदि मनुष्य की आत्मा इतनी उन्नत हो जाय, कि वह अत्याचारी के अत्याचारों की चिन्ता न कर आत्मबल से अपने सत्य-सिद्धान्त पर डटा रहे, तो समस्त संसारकी शक्तियां भी उसका कुछ नहीं बिगाड़ सक्तीं।

सत्याग्रह, राजनैतिक चाल नही है। यह एक ऐसा धर्म्म है कि जिसका मूल शान्ति और अन्त भी शान्ति है। सत्याग्रह धर्म संसार मे सत्य का साम्राज्य स्थापित करने और संसार से पशुबल का उच्चाटन करके प्रत्येक को उसके वास्तविक स्वत्व दिलाने के हेतु प्रादुर्भूत हुआ है, और वह संसार में सतयुग का वह चित्र देखना चाहता है जब मनुष्यजाति अपने २ अधिकारों का उपभोग करती हुई एक सूत्र में बंधी रहे, और 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' का नाम मिट जाय।

सत्याग्रह प्रत्येफ मनुष्य को, प्रत्येक जाति को, प्रत्येक राष्ट्र को सत्य की शिक्षा देता है। संसार का रहस्य बतलाता है, कि सत्य ही पर संसार की स्थापना है, और सत्यही एक ऐसी शक्ति है, जो प्रत्येक प्राणी को संसारकी सत्ता और ईश्वर का रूप होने का दावा भरती है।

वर्त्तमान काल असत्य का हो रहा है; उसमें झूठ और चालाकियों का साम्राज्य है। इस समय जिस नीति से संसार के देशोंका अर्थात् पृथ्वी-मण्डल का शासन होता है, उसका मूल झूठ है। वर्त्तमान नीति का आधार मिथ्या-भाषण है; चिरकाल से छलकपट की बातें उसमें देख पड़ती हैं। जिन लोगों ने सत्य का अवलम्ब किया कि उन्हें कालदण्ड भोगना पड़ता है, जो देवतुल्य महापुरुष सत्य धर्म्म की चर्चा छेड़ते हैं, वे तंग होते हैं। समग्र देश एक दूसरे का माल लूटने को परम पुरुषार्थ समझता है; जिस से बन पड़ता है-परापहार में नहीं चूकता; सांराश सब प्रकार से इस समय असत्य और कपट का ही साम्राज्य है।

परन्तु सत्याग्रहियों का धर्म्म सिखलाता है, कि सदैव सच बोलो और सत्यही का आचारण करो, और यदि संसार में कहीं असत्य की प्रतिष्ठा हो, तो अपने प्राण देकर सत्याग्रह-अग्नि में अपने शरीर की आहुति देकर सत्य मूर्त्ति भगवानका आविर्भाव कराओ, सत्यधर्म्म-सोपान पर चढ़ने की इच्छा रखने वालों को सबसे पहिली सीढ़ी यही चढ़नी पड़ती है, क्योंकि सत्याग्रही वही बन सक्ता है, जो सत्यवादी हो, उसमें सत्यकी इतनी प्रखर अग्नि हो कि असत्य उसके पास आते २ आपही भस्म हो जाय। काल विपरीत होने से सत्य की महिमा लोग नहीं जानते। सत्याग्रह सब से पहिले सत्य की महिमा

यतलाता है, "जहां झूठ की महिमा हो, वहाँ सत्य क्या कर सक्ता है" जिसका ऐसा विचार हो, वह सत्याग्रही नहीं बन सक्ता। सत्याग्रह का लक्ष्य है, कि समस्त संसार सत्याग्रही बने और देवताओं का सात्विक आश्रम हो जाय।

सत्याग्रह का मूलमंत्र है "अहिंसापरमो धर्म्म"। प्रायः प्रत्येक धर्म्म का यही मूल मंत्र है, किन्तु अन्य धर्म्मों के वर्तमान रूपों और सत्याग्रह के बीच अन्तर इतना ही है, कि वह असत्य की प्रतिष्ठा नहीं होने देता। इसका अर्थ यह नहीं, कि जहां असत्य का जयजयकार हो वहां सत्यका जयजय कार जाकर उसपर वार करे, किन्तु सत्याग्रह का काम तो केवल इतनाही है कि वह उसे स्वीकार न करे, और सत्य का ही जयजयकार करता रहे। ऐसा करने मे यदि उसका ऐहिक नाश होता हो, तो होने दे, प्राण जाते हो तो जाने दें, नाम मिटता हो तो मिटने दे, (?) परन्तु प्रहलाद की भांति सत्याग्रहव्रत पर बलिदान हो जाने के लिये तयार रहे, ईश्वरको बचाना होगा, बचालेगा कलिकाल के कारागार और परतंत्रता से छुड़ाना होगा, छुड़ा लेगा। सत्याग्रह की शिक्षा यह है, कि मनुष्य को सत्य की स्थिति में ही सच्चा सुख जिसे परमार्थ कहते हैं, मिले, इसलिये असत्य की माया से दूर रहकर मनुष्य इस कार्य्य को करे, अपने जीवन को इस प्रकार से संगठित करे, जिससे उसकी वाणी उसकी समस्त इन्द्रियां, मन, वचन और कर्म सत्यही का जयजयघोष करें, सत्यही के आकाशवाण के नीचे सत्य समीर मे ही विहार करता हुआ, सत्यके लिये सत्यरुप होकर सत्याग्रही सत्याग्नि में स्वात्मार्पण करदे। यही सत्याग्रह का अर्थ है।

सत्याग्रही किसी को भी अपना शत्रु नहीं समझता,

उसके शत्रु यदि हैं तो अपने ही वड्रपु हैं क्योंकि सत्याग्रह का साध्य सच्चा सुख है ऐहिक सुख नहीं। सत्याग्रह का नाम लेने वालों, उसका जयजयकार करने वालों को यही जानना चाहिये, कि सत्याग्रह संसार की माया को ही अपना रिपु मानता है, अन्य किसी को नहीं। परन्तु ध्यान रहे कि सत्याग्रह केवल चिन्तन का मार्ग नही है, कर्म मार्ग है। संसार के सब दृष्टिबन्धनों को तोड़ कर संसार में सत्य की प्रतिष्ठा के कार्य में अपने शरीर की आहुति देने का धर्म है । सत्याग्रही राजभोग नहीं चाहेगा, और स्वर्गलाभ भी नहीं, उसका मन्तव्य अपने जीवन को सत्यमय बनाकर उसके वल से वर्तमान परिस्थिति को उलट देने का होना चाहिये। वह संसार से असत्य का नाश इसलिये नही चाहता, कि इस धर्म के अनुयाइयों को राजभोग प्राप्त हो, वरन इसलिये कि असत्य को मेट देना और अन्याय की जड़ को काट देना मनुष्य का धर्म्म है । यह केवल राजनैतिक धर्म्म नहीं है, किन्तु मनुष्य का सार्वत्रिक धर्म भी है। इस समय, इस कारण इसका प्रवेश होना आवश्यक है, क्योंकि ऐसा न होगा तो राजनीति में खुटाई पड़ेगी, और असत्य की प्रतिष्ठा बढ़ेगी, इसका नाश करना ही सत्याग्रहधर्म्म है । यह धर्म्म व्यक्तिगत आत्मसंयम् से आरम्भ होकर संसार में सर्वत्र सत्य के साम्राज्य में संचारित होता है।

इस धर्म्म पर यह आक्षेप किया जा सकता है, कि यह धर्म्म युगधर्म्म के प्रतिकूल है। यह बात झूठ नहीं है। संसार का इतिहास भी इस बात का साक्षी है, कि संसार में बराबर खुटाई ही बढ़ती चली जा रही है; और मनुष्य की बुद्धि पर कोई ऐसी भविष्य स्थिति प्रतिबिम्ब नहीं होती, जिसमें

सर्वत्र सत्य का राज्य हो। बात सर्वथैव सत्य है, परन्तु इससे यह सिद्ध नहीं होता कि संसार में पाशविक अत्याचार, असभ्यता, अथवा विषय-भोग-साधन की उन्नति होती हुई देखने में आती हो, तो सत्य को मुँह ढांप कर छिप रहना चाहिये। सत्याग्रह तो यही बतलाता है कि असत्यकी प्रतिष्ठा भंग करो, परन्तु किसी को कष्ट मत दो। युगधर्म्म असत्यकी प्रधानता का हो, तो क्या ईश्वर अथवा धर्म्मभी असत्यरूप हो जायगा? और क्या ईश्वर प्राप्तिके लिये अत्याचार करनेही से सफलता प्राप्त होगी? यदि नहीं तो, समस्त संसार असत्यरूप क्यों न हो जाय, सर्वत्र हिरन्यकश्यप का दौरदौरा क्यों न होजाय, कुछ चिन्ता नहीं, प्रहलाद (सत्याग्रही) अपने कर्त्तव्य-पथ से नहीं हटेगा, सत्याग्रहधर्म्मका लोप कभी नहीं होगा; मनुष्य-स्वत्व योंही दबाए नहीं रहे जा सकें।

सत्यागृह के साथ प्रेमका घनिष्ठ सम्बन्ध है। यदि स्वराज्य प्राप्ति के लिये सत्यागृह करना हो, तो प्रेमको हाथ से नहीं छोड़ देना चाहिये, क्योंकि जिस प्रेमके साथ पुत्र अपने पिता से असन्तुष्ट होने पर उसके अन्याय का निषेध प्रायः स्वयं दुख उठाकर करता है, प्रेम का वही नियम प्रजाको सरकारके साथ में कार्य्योचित करना चाहिये। क्यों कि प्रजा और राजा के बीच पुत्र-पिता का सम्बन्ध है, परन्तु जब तक प्रजा और राजा में इस प्रकार का सम्बन्ध स्थापित नहीं होता, अर्थात् जब तक पूजा शासक को पिता तुल्य नहीं समझती और राजा पूजा को पुत्रवत्, तब तक परस्पर प्रेम का व्यवहार असम्भव होता है। जिन दिनों प्रजा राजा को पिता तुल्य समझती थीं, उन दिनों राजा वैदिकमार्ग का अनुयायी और शास्त्रों की आज्ञा का पालक होता था, और इस लिये

प्रजा उसे ईश्वरवत् भी समझती थी। आधुनिक दृष्टि से वह समय चाहें संसार के बचपन का समय हो, चाहे राजा के ज्ञान और प्रजाके अज्ञान का समय हो, परन्तु इसमे सन्देह नहीं कि वह समय वर्तमान अश्रद्धा और कलहपूर्ण समय से अच्छा था। अब शास्त्राज्ञा के स्थापनमें 'जनही जनार्दन की वाणी है' का सिद्धान्त सर्वमान्य हो गया है, यही कारण है कि प्रजा दास और अधिकारी अन्यायी समझे जाते हैं। सत्याग्रही इसे ही मिटाकर राजा और प्रजा के बीच पिता पुत्र का सम्बन्ध देखना अपना धर्म्म समझता है। इस प्रेम के सम्बन्ध को सदा ध्यान में रखकर राजनैतिक उद्योग मे अग्रसर होने से फिर पीछे लौटना न पड़ेगा।

यदि यह सम्बन्ध ध्यान में रहता, तो इस समय इस देश की स्थिति कुछ और ही होती, अधिकारीवर्ग तथा हममें भेदभाव नही बढ़ता, सैनिक-दृढ़ता जैसी इस समय देखी जाती है, नहीं रहती और प्रजा जैसी इस समय दुखित है, नहीं होती, और सम्भव था कि इस समय तक भारत पूर्णतः अपने स्वत्वों का भोग करता होता, और किसी प्रकार का वाद विवाद न रहता। परन्तु अभी क्या है? वह हमें प्राप्तहो सक्ते हैं, किन्तु तभी; जब हम दृढ़ता के साथ सत्याग्रही होकर प्रेम पूर्वक उसको प्राप्त करनेका आन्दोलन करेंगे। हमको हमारे स्वत्वों से वंचित रखना हमारे राजा "साम्राट" की इच्छा व काम नहीं है, वरन् अधिकारी वर्गही अपने स्वार्थ के वशीभूत होकर हमको उससे दूर रखे हुए हैं। हमारे सम्राट को तो कदाचित यह भी पता नहीं है, कि अधिकारी-वर्ग उनकी प्रजा के साथ किस प्रकार का वर्ताव कर रहे है? अधिकारीवर्ग भी जानकर यह कार्य्य नहीं करते, उनका

स्वार्थ ही ऐसा करने के लिये उन्हें बाध्य करता है। परन्तु हमको इसके दूर कराने में किसी प्रकार उनके प्रति बुरे भावों को हृदय में स्थान नहीं देना चाहिये, वरन् सत्यावलम्बी होकर पूर्ण आत्मिकबलके साथ उसका निरोध करना चाहिये, क्योंकि राजनैतिक स्वत्व प्राप्त करने के लिये उद्योग करने की भारतीय-नीति प्राचीन सभ्यता की शिक्षा के अनुसार सत्याग्रह द्वारा ही है। सत्याग्रही की कभी यह इच्छा नही रहती कि वह अपने विरोधियों के प्रति भी किसी प्रकार की घृणाका भाव रखे, किन्तु उनकी भूल का विरोध भी वह बिना किसी विद्वेष के करेगा। ऐसा करने से भेदभाव घट जायगा और अधिकारी अपनी भूल स्वीकार करेंगे ही।

यद्यपि इस समय हम बुरी भाँति दबाए जारहे हैं, और हिन्दू और मुसलमान दोनो के (भारत वासियों के) राजनैतिक स्वत्वों का अपहरण करके कोरी बातों से भुलाया जाता है, परन्तु यह बात सरलता से दूर न होगी, हमारे स्वत्व सहजही नही दिये जाँयगे, वरन् यह उचित रूप से विचार करके अपनी मांग ठीक रखने और उसपर डटे रहने से प्राप्त होंगे, क्योंकि ऐसा करने से भारत की प्रत्येक जाति समस्त संसार की सहायता ले सक्ती है, और अपनी मांग ठीक रख सक्ती है। अन्त में यदि वैसे न मिले तो सत्याग्रह तपोबल द्वारा सहज ही लिये जा सक्ते हैं, क्योंकि सत्याग्रह वह तप है जिसके सामने प्रत्येक पथ-विचलितको अपनी भूल अङ्गीकार कर मस्तिष्क झुकाना पड़ता है।

स्वदेशी व्रत।

निज बन्धुओं के हित तनिक भी त्याग कर सक्ते नहीं,
क्या 'स्वदेशी' से तनिक अनुराग कर सक्ते नहीं ?
हो रहे हैं दीन हम हा ! सब पराई चाल से,
फूलें, फलें, यदि प्रेम करलें अब स्वदेशी माल से ॥

यहाँ पर यह बात सदैव ध्यान में रखना चाहिये कि सत्याग्रह आन्दोलन के साथ स्वदेशी का घनिष्ठ सम्बन्ध है। सत्याग्रहव्रत का पालन वे ही लोग पूर्णतः कर सकेंगे, जिनको स्वदेशी-प्रेम है, क्योंकि बिना स्वदेशी के सत्याग्रह सच्चा सत्याग्रह नहीं कहा जा सक्ता; यहां पर स्वदेशी के विषय में थोड़ा लिखकर हम अपनी लेखमाला को समाप्त करेंगे।

यह सभी जानते हैं, और "विचित्र-परिवर्तन" के पाठक, पाठिकाएं भारतीय व्यापार-सम्बन्धी लेख में पढ़ चुके होंगे, कि इस समय हम केवल राजनैतिक परतंत्रता ही में नहीं, वरन् औद्योगिक परतंत्रता में भी जकड़े हुए हैं। राजनैतिक-परतंत्रता से यद्यपि हमारी हानि हो रही है, परन्तु इस औद्योगिक पराधीनता ने तो हमे सर्वथैव ही दीन हीन बना दिया है। गत् डेढ़सौ वर्षों में हमारा असंख्य धन विदेशी वस्तुओं द्वारा अन्य देशों को गया है, और हमारा देश यहां तक निःस्वत्व हुआ है, कि भारत की आधी प्रजा से भी अधिक के लिये भरपेट भोजन नहीं मिलता। विदेशियों को ललचाने के लिये अब भारत में अटूट सम्पत्ति नहीं रही। वर्त्तमान व्यापार-नीति ने हमारे उद्योगों का नाश कर दिया, जिसके

परिणामों को भारत अभी तक भोग रहा है, और उसे अब तक महान हानियां झेलनी पड़ी हैं।

इस समय संसार भर में विदेशी वस्तुओं को व्यवहार करने में सब से बढ़ा चढ़ा हमारा भारत ही है। इस अवाधित व्यापार-नीति ने ही भारतमाता के बच्चों का रक्त चूस लिया है। हममें कुछ जागृति हुई और स्वदेशी उद्योग आरम्भ हुए कि झट दयालुओं का अनुग्रह उनपर हुआ; विदेशी वस्तुओं के सम्मुख स्वदेशी वस्तु नहीं टिकने पाती और हमारे उद्योगों का बाल्यावस्था में ही मरण हो जाता है।

इन सब दुखों का दूर करने के लिये भारतमाता के सच्चे सपूतों की भांति जननी को प्रत्येक बात में विदेशियों के आश्रय न छोड़ने और दुष्काल और भूखों मरने से बचाने के लिये हमारा आपका कर्त्तव्य है कि सब स्वदेशी व्रत के वृती बनें। विदेशी वस्तुओं का प्रयोग में लाना भारतमाता के साथ अन्याय और अत्याचार करने के साथ २ कपट करना भी है। यह एक अक्षम्य पाप है। विदेशी वस्तुओं को इस कारण कार्य्य में लाना कि हम स्वदेशी वस्तुएँ पसन्द नहीं करते-विदेशी बन जाना है। यह स्पष्ट है कि हम अपने देश को नहीं त्याग देते, चाहे वह और देशों की अपेक्षा निन्द्यतम ही क्यों न हो, फिर हमें अपने देश की बनी वस्तुओं का प्रयोग करना क्यों छोड़ देना चाहिये?

हम भारतवासियों की धर्म्म-भावना प्रसिद्ध है, भारत-वासी कृतघ्न कभी नहीं होते, वे माता के ऋणको सदैव चुकाते रहे हैं, इसके लिये चाहे उन्हें महान कष्ट ही क्यों न झेलने पड़े हों अथवा चाहें जीवन ही क्यों न चला गया हो? भारत-भूमि से हमारे शरीर के पोषण और बिलास के लिये जो हर प्रकार

की वस्तुएं उत्पन्न होती हैं, वे कच्चे माल के रूपमें ही विदेशों को चली जा रही है, और हम भारतवासी भूखों मर रहे और सतत अकाल के भोगी बन रहे हैं। भारतमाता अब आह्वान करती है, कि " प्यारे पुत्रो! तुम जो कर्त्तव्य भ्रष्ट हो गये हो, उसे समझो "। मातृ-भूमि के ऋण से मुक्त होने के लिये हम सब को स्वदेशी व्रत्त लेने चाहियें, जिससे कच्चा माल विदेशों मे जाना बन्द हो जायगा:और उसका उपयोग यहीं होगा। इसके दो लाभ होंगे—'एक तो इसका प्रभाव हमारे व्यवसाय पर पड़ेगा, देशी कारख़ानों के स्वामी उत्साहित होंगे और अधिक संख्या में वस्तुएं तयार करेंगे। तब घर का धन भी घर में रहेगा और धीरे २ व्यापार उन्नत होगा। दूसरा प्रभाव इसका राजनैतिक स्थिति पर होगा, क्यों कि जब हम विदेशों को माल के आर्डर (Order) देना बन्द कर देंगे तो इसका प्रभाव विदेशों की आर्थिक अवस्था पर पड़ेगा और फिर भारत का राजनैतिक प्रश्न बड़ी सहानुभूति से सुना जायगा, तात्पर्य्य यह कि अपनी आकाँक्षा उनतक पहुंचाने का यह एक सुगम उपाय है, कि हम स्वदेशी को उत्तेजना दें। साथही यह हमारा धर्म्म भी है; और धर्म्म से विमुख न होने के लिये हमको स्वदेशी वस्तुएं स्वीकार करना चाहिये, इस से 'एक पंथ दो काज' वाली कहावत चरितार्थ हो जावेगी।

हम छोटी २ वस्तुओं के लिये भी विदेशियों का मुंह जोहते हैं; क्या यह हमारे लिये शोक और लज्जा की बात नहीं है? क्या हम में इतना मनोबल नहीं कि हम अपने पैरों पर आप खड़े हो सकें? हम सब कुछ कर सक्ते हैं और स्वावलम्बी बन सक्ते हैं। जब हम यह समझ कर करें कि स्वदेशी का पोषण करना हमारा कर्त्तव्य है, हम स्वदेशी के व्रत्ती बन

स्वदेशी की पुकार उठावेंगे, तो अवश्य स्वदेशी उद्योगों की उन्नति आरम्भ हो जावेगी और स्वदेशी साहसिक व्यापारी उत्पन्न हो जावेंगे। यदि हममें से प्रत्येक भारतवासी कुछ क्षति सहकर भी न केवल प्रतिदिन की साधारण वस्तुएँ ही, किन्तु विवाहोत्सव आदि मे भी केवल भारत का ही बना हुआ माल वर्ताव में लावेंगे, तो हमारे स्वदेशी-व्यवसाय में अवश्य ही प्राण पड़ जाँयगे; मनुष्य स्वमेव अपने कारख़ानो को अधिकता के साथ चलाने के लिये उत्साहित होंगे।

परन्तु ध्यान रखना चाहिये, कि स्वदेशी वस्तु वह नही कहलाती है जो बनाई तो देश में गई हो, परन्तु उसका समस्त सामान विदेशों से आया हो। उदाहरण के लिये कपड़े को ही लीजिये; वह कपड़ा स्वदेशी नहीं कहलाता जो बुना तो भारत मे गया हो, परन्तु उसका सूत विदेशों से आया हो; वरन् सच्चा स्वदेशी कपड़ा वही होगा, जो हमारे घरों में चरखों के द्वारा कते हुए सूत से करघों में बनाया गया हो। विदेशों से आया हुआ सूत चाहे भारत की रूई से बनता और भारत में ही विदेशी मिलों (Mills) में बनाया जाता है, परन्तु वह स्वदेशी कपड़ा नही है। तभी हम पूर्णतः लाभ करेंगे, जब हमारी रूई देशी तकुओं से हमारी गृह-देवियों द्वारा काती जाकर देशी करघों में बुनी जाय। बहुत से मनुष्यों का यह विचार है, कि भारत की मीलों (Mills) में बने हुए कपड़े को प्रयोग में लाने से ही हम स्वदेशी के व्रती बन जाँयगे, परन्तु यह सर्वथा भ्रम है। ऐसे कपड़ों के काम में लाने से स्वदेशी का पालन नहीं होता, हाँ अपने आपको अवश्य धोखा दे लिया जाता है।

इस समय भारत में मनुष्य अधिकतर विलास–प्रिय बन

गये हैं, यह विलायती-सभ्यता का ही प्रभाव है; वे भी यदि चाहें तो स्वदेशी का पालन कर देश को बड़ा लाभ पहुंचा सक्ते हैं, परन्तु उनसे अभी ऐसी आशा नहीं। हां जो मनुष्य साधारण रहन सहन के हैं, जिन्हें शृंगार अथवा विलास-प्रियता का व्यसन नहीं है, वे स्वदेशी को बड़ी उन्नति दे सक्ते हैं।

साधारणतः भारतवर्ष में बहुत कम ऐसे ग्राम होंगे, जिनमें कोली जुलाहे न हों। प्राचीन समय से हमारे ग्रामों में किसान, जुलाहे, बढ़ई आदि होते आए हैं; परन्तु भारत-वर्ष के कलाकौशल का विनाश हो जाने के पश्चात से भारत-वासियों में अस्सी प्रतिशत् से अधिक कृषि के ऊपर ही निर्वाह करते हैं; किन्तु कृषि से जो उपज होती है, वह भी तो बेचारे किसानों के लिये नहीं बचने पाती; तब कहिये वे अपना पेट किस प्रकार भरें? विदेशी उद्योगों को ही हमारे देश में उत्ते जना मिलने से देशकी यह शोचनीय दशा हो रही है, कि भारतके सभी व्यवसायों का नाश हुआ और निर्धनता, दरिद्रता प्रति-दिन बढ़ती गई। इस स्थिति से बचने का एक मात्र उपाय अब यही रह गया है कि हमलोग स्वदेशी के वृत्ती बनें। स्वदेशी से ग्रामीण लोग फिर से उद्योग धन्धों में लग आनन्दपूर्वक जीवन निर्वाह कर सकेंगे; और यदि हम अपने वृत्त पर कटिबद्ध रहें तो कुछ ही समय में अकाल भी हमारे देशसे अदृश्य हो जांयगे; राजनैतिक स्वत्वों के मिलने में जो सहारा मिलेगा, वह अलग।

हमको भारत में ही बनी हुई वस्तुओं को क्रय करने का आग्रह सदा करते रहना चाहिये, और अपने यहाँ के जुलाहे, कोलियों को कपड़ा बुनने को दे दिया करें, तो इससे हमारे

ग्रामों के छोटे २ गृह-उद्योग भी चमक उठेंगे और धीरे २ हमारे जुलाहे, कोलियों और अन्य उद्योगियों की दशा भी सुधर जायगी।

भारतीय जनता के अभ्युदय और भारतमाता के गौरव के लिये हमको विदेशी मोहजाल से बचना चाहिये। पतला, मोटा भद्दा कैसा ही वस्त्र हो, परन्तु हो स्वदेशी ही, इस प्रकार की भावना जब हमारे हृदयों में दृढ़ हो जायगी, उसी समय हमारे देशका कल्याण होना आरम्भ हो जायगा; अब रही अन्य वस्तुएं, उनके लिये अभी थोड़ा सा त्याग करना होगा, क्योंकि यदि वे अभी हमारे देश में नहीं बनतीं, तबतक यही मानना पड़ेगा कि वह वस्तुएं हमारे लिये बिल्कुल बनी ही नहीं हैं, अथवा उनकी हमको आवश्यकता ही नहीं है। जब भारत-वासी इस प्रकार शुद्ध स्वदेशी का पालन करने लगेंगे, तो हमारे देश के दुःखी झोपड़ों में रहनेवाले निराश कारीगरों के हृदयों में आशा और सुख की किरण प्रकट होने लगेंगी; विदेशियों के सामने हम अपना मस्तिष्क गौरव से ऊंचा कर सकेंगे और उनके ग्रामीणों के साथ होने से अपने आन्दोलन को और भी पुष्ट कर सकेंगे, यहाँ तक कि एक दिन शीघ्र ही हम उसका उपभोग करते होंगे।

इस समय भारत में दीन आत्माएं ही अधिक हैं; उनके हृदय-विदारक शब्द कानों को फोड़े डालते हैं; वे विदेशी बहुमूल्य वस्तुओं को क्रय करने में असमर्थ हैं; अतः यह बात देशकी अन्य सन्तानों को असहनीय होना चाहिये कि उनके देशका कच्चा माल विदेशों को चला जाय और उसके लिये फिर हमारे दीन हीन देशबन्धु अधिक व्यय करें। इसका आदि और अन्तिम उपाय स्वदेशी ही है। हम अपना कच्चा

माल विदेशों के हाथ बेचने को बाध्य या विवश नहीं हैं। जब भारत स्वदेशी की प्रतिध्वनि से गूंज उठेगा, तो कोई भी अपना कच्चा माल विदेशों को नहीं भेजेगा, और फिर वह भारत ही में रहेगा, और तब उससे बनाई वस्तुएं सस्ते दामों में मिलेंगी और भारत के आर्थिक-विस्तार की पूंजी सहस्रों नहीं, लाखों मनुष्यों के हाथों पहुंच जावेगी। यद्यपि अब मनुष्यों के भाव बदलने लगे हैं, परन्तु इसके लिये अभी थोड़े आत्म-बलिदान की फिर भी आवश्यकता है। भारतवासी अब अपनी दशा का अनुभव करने लगे हैं, ऐसे समय में भी यदि स्वदेशी का प्रचार न किया तो फिर हाथ मलते ही रह जांयगे। प्रत्येक देशवासी को वह चाहे जिस जाति, धर्म्म और मतका हो, उचित है, कि स्वदेशी का व्रत धारण करे। यदि हम ऐसा न कर सके तो हमारा जन्म व्यर्थहै। स्वदेशी के लिये यही अवसर है; महात्मा गांधी सत्याग्रह की पताका लिये आपको उसके साथ २ स्वदेशी व्रत धारण करने का उपदेश दे रहे हैं; ऐसे समय में यदि गांव २ में स्वदेशी का संदेशा पहुंच तो गया, थोड़े वर्षों में ही हम स्वदेशी की विजय का जयजय घोष कर घर २ में उसकी आनन्द पताका फहरा सकेंगे, और फिर अल्पकाल में उसे उन्नति के उस शिखर पर बैठा सकेंगे कि हमारा माल विदेशों को भी जाने लगे।

परन्तु केवल स्वदेशी की वीर गर्जनाओं के सुनने से ही कार्य्य न चलेगा, हमको स्वदेशी-व्रतका कृति में पालन करना होगा। यदि हम कृति में शून्य रहे, तो हमारे देशका उत्कर्ष केवल कुसुमवत् है। हमको अब प्रमाद का त्याग कर देना चाहिये। शाब्दिक-पांडित्य की अब आवश्यकता नहीं है, अब तो व्यवहार में कर दिखाने का समय है, अतएव

शुद्ध-स्वदेशी वृतका धारण और व्यवहार करना तथा धीरे २ मुहल्ले २, घर २, स्थान २ और मनुष्य २ में स्वदेशी का ही जयजय कराना हमारा कर्त्तव्य है, और 'हम उसे पूर्णतः कर सकें' यही सदिच्छा रखना हमारा मंत्र होना चाहिये। सर्व-शक्तिमान परमेश्वर से प्रार्थना है कि वे प्रत्येक भारतवासी को स्वदेशी के लिये प्रेरित करें, क्योंकि इसी में देशका कल्याण है।

परन्तु एक बात है-देश में अभी बहुत कम लोगों का ध्यान स्वदेशी की ओर होगा, क्योंकि अभी तक लोग विलायत की चट-कीली भड़कीली वस्तुओं पर मोहित होकर अपने रूपयों को नष्ट और अपने देशका घात कर रहे है। ऐसी दशामे किसी ऐसी शक्ति की आवश्यकता है, जो अपनी प्राणदा, सुखदा और जन्मदा मातृ-भूमि के कल्याण के हेतु उन वस्तुओं से हमारे मनों को हटाकर स्वदेशी वस्तुओं द्वारा साधारण जीवन बिताना सिखलावें।

विलास और भोग की वस्तुएं तो एक ओर, इस समय आवश्यक वस्तुएँ भी देशमें नहीं बनतीं, ऐसे समय में स्वदेशी की प्रतिज्ञा साधने के हेतु देशके नवयुवकों में नेतृत्व का कार्य्य वही आत्माएँ कर सक्ती है, जो त्यागके लिये तत्पर और दृढ़ प्रतिज्ञ हों, अर्थात जो साक्षात त्याग-मूर्ति हों।

इतिहास इस बातको पुकार २ कर बतलाता है, कि शारीरिक दुर्बलता तथा समयके प्रभाव से कई न्यूनताएँ होने पर भी भारतीय-रमणियों मे सदैव दो गुण प्रधान रहे हैं—एक तो त्यागकी वे सजीव प्रतिमाएं होती हैं, दूसरे प्रतिज्ञा में दृढ़ रहना उनकी नस २ में कूट कूट कर भरा होता है उन राजपूत ललनाओं के चरित्रों-आदर्श

चरित्रों से हमारे इतिहास के पृष्ठ के पृष्ठ भरे पड़े हैं, जिन्होंने अपनी धर्म्मरक्षार्थ अपने एकबार के किये हुए संकल्पको निभाने के लिये सब प्रकार का आत्म-त्यागकर प्रसन्नवदन हो मुस्काते २ अपने प्राणों की आहुति दे दी। इस समय भी भारतीय गृहों में सहस्रों बालविधवाएं प्रतिज्ञा-पूर्त्ति की साक्षात् प्रतिमाके रूपमें हमारे सामने विद्यमान हैं, जो सब भाँति त्यागकर दृढ़-प्रतिज्ञ हो अपने धर्म्म की रक्षा कर रही हैं। इससे पूर्णतः प्रकट है कि हमारी रमणियां प्रकृति से ही त्यागी और दृढ़ प्रतिज्ञ होना सीखती हैं। पत्नीका सेवामय जीवन और माताका स्वार्थरहित प्रेम उनके रुधिर के परिमाणुओं में इन दो गुणों को भरदेता है, और इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। इसके अतिरिक्त विलासकी अधिकांश वस्तुओं का सम्बन्ध भी स्त्रियों से है। अतः यदि हमारी स्त्रियाँ स्वदेशी का ब्रत धारण करलें तो उसकी सफलता में कोई सन्देह नहीं है। भारतीयगृहों में स्त्रियों का बहुत अधिकार रहता है, घर की दीवारों के भीतर वे वास्तव अर्थ में स्वराज्य-भोगी होती हैं, वहां पर बड़े २ विद्वान और कठोर व स्पष्ट वक्ता तथा सुधारक भी गृहदेवियों के कठोर शासनको उलंघन करने का साहस नहीं रखते। सभाओं में घण्टों वक्तृताएं देने पर भी वे घरो में पवित्रताका विनाश नहीं कर पाते, चौका आदि की रीतियों को नहीं तोड़ सक्ते। साथ ही बालक भी जन्म से उनके ही साथ रहते हैं, वे जैसा चाहें उन्हें बना सक्ती हैं, वे चाहें तो उन्हें सत्य-स्वदेशी बना सक्ती हैं, और विदेशी रहने देना भी उन्हीं के हाथ में है, अतएव जब तक हमारी देवियों को विदेशी वस्तुओं को त्यागकर स्वदेशी की धुन न समायगी, तबतक उनका विनाश और इनका प्रचार

होना असम्भव नहीं तो कठिन तो है ही। यह माताओं के हाथ में है कि वे बालकों को पूर्ण स्वदेशी बनालें, क्योंकि जब माताओं के हृदय में स्वदेशीकी जागृति होगी, तो सम्भव नहीं कि बालक भी देशीका पालन करनेवाले न हों और जब माता, बालक, बालिकाएं और पिता सब ही स्वदेशी के प्रेमी हो जावेंगे तो यह साधारण सी बात है कि भारत में विदेशी वस्तुओं का प्रयोग करना बन्द हो जायगा। यह तो एक खेलसा हो सक्ता है कि कांच की विदेशी चूड़ियाँ, रेशमी साड़ियां, महीन मलमल और लवेण्डर आदि अन्य वस्तुएं जो विलास से सम्बन्ध रखती हैं, प्रतिज्ञा करने पर उनकी इच्छा मात्र से घरमें आने से रोक दी जायं।

भारतीय-साहित्य में स्त्रियां लक्ष्मी नाम से पुकारी गई हैं, यदि अब से सावित्री, दमयन्ती और कृष्णाकुमारी की सन्तति, जननी-शक्ति की प्रतिनिधि—हमारी ललनाएं प्रत्येक गृह के द्वार पर प्रतिज्ञा-बद्ध हो यह कहकर कि "हम शुद्ध स्वदेशी वस्तुएं धारण करेंगी, जिससे चाहे हमारी केवल लज्जामात्र ही ढक सके, और अन्य किसी प्रकार की विदेशी वस्तु को घर में प्रवेश तक न करने देंगी" स्वदेशी की रक्षा के निमित्त खड़ी हो जावें तो समझिये कि हमारे स्वदेशी प्रचार में अब विलम्ब नहीं है, और तब करोड़ों रुपयों के रूप में समुद्रपार जाती हुई भारत की वास्तविक लक्ष्मी को घर लाकर अपने लक्ष्मी नामको सार्थक कर लेंगी।

उस लक्ष्मी के लौटने पर सहस्रों किसान भरपेट भोजन पायेंगे, और उन झोपड़ियों में से क्षुधार्त्त रुदन के स्थान में "स्वतंत्र भारत की जयध्वनि" निकलेगी। दुर्भिक्ष में मरजाने वाली लाखों आत्माएं कारखानों में काम करेंगी और यथेष्ठ

मज़दूरी पाकर अवकाश के समय 'स्वतंत्र-भारत' के गान गावेंगी। गाँवों में निठल्ले फिरने वाले कृषकों के बच्चों के लिये देहाती राष्ट्रीय-विद्यालय खुल जावेंगे, जहाँ राग और ताल से वे ' स्वतंत्र भारत ' का राग अलावेंगे।

क्या बंगभंग के समय स्वदेशी के लिये अद्भुत वीरता दिखलाने वालीं आर्य्य-कुल की लाज रखने वाली, गिरते हुए भारत की दीवार को मूसलाधार वर्षा में अब तक सुरक्षित रखने वालीं; देवी, शक्ति, सरस्वती और लक्ष्मी की प्रतिनिधि भारतीय-ललनाएं स्वदेशी का दृढ़ और कठिन वृत्त धारण करेंगी और विदेशी परित्याग की प्रतिज्ञा कर भारत का भविष्य उज्वल और सौन्दर्य्यमय बनाने का श्रेय लाभ करेंगी? क्या मातृ-भूमि के कल्याण, देश के उद्धार, राष्ट्र के अभ्युदय और उत्थान, और भारतमाता की दीन हीन सन्तति की दशा सुधारने के हेतु स्वयं स्वदेशी बन वे अपने पतियों से स्वदेशी प्रतिज्ञा कराएंगी, और अपने कोमल शिशु-जाति बालकों को गोद से ही अपने दुग्धपान के साथ २ स्वदेशी का पाठ पढ़ा उनके रोम २ में उस भाव को भरेंगी जिससे वे आगे चलकर राष्ट्र के सच्चे सेवक हो अपने कुल और देश का मुख उज्वल और जननी, जन्मभूमिका कल्याण कर सकें और मातृभूमि को एक दिन स्वतंत्र मंदिर मे स्थापित कर उसके 'स्वराज्य' मुकुट चढ़ाकर अन्य देशों को उसकी गौरवमय लाल-हरी पताका फहरा कर दिखला दें कि ' देखो हमारी भारत माता भी आज किसी से कम नहीं है, हमें गर्व है कि वह आज उन्नति के सर्वोच्च सिंहासन पर विराज रही है और उसके हम सुपूत उसके ऊपर चंवर ढोर उसके चरणों की अर्चना और बन्दना कर रहे हैं; कौन है आज जो हमारे देश की समानता कर सके?'

उपसंहार *

जो भाग अपना शीघ्रही कर्त्तव्य के मैदानमें;
हो बद्ध परिकर दो सहारा देशके उत्थान में ।
अति धीरता के साथ अपने कार्य्य में तत्पर रहो,
आपात्तियों के वार सारे वीर बनकर के सहो ॥

पाठकगण! आपको भारतवर्ष के प्राचीन वैभव की कथा अनेक बार और अनेक रूपों में ज्ञात हो चुकी होगी, उसके दुहारने की यहाँ आवश्यकता नहीं; साथही हमारी लेखमाला के पढ़ने से आपने समझ लिया होगा कि यह रत्नजटित भारत अब किस दीन हीन और अवनतावस्था को प्राप्त हो रहा है, उसके तैतिस करोड़ पुत्र कष्टों, विपत्तियों और आपदाओं से कैसे ग्रसित हो रहे हैं। पूर्व इसके कि अपनी लेखमाला को समाप्त करें, आपसे यह प्रार्थना करदेना चाहते हैं, कि देश अब अवनति की इस दशा में नहीं रह सक्ता; कालचक्र की गति उसे अब इसी दशा में और पड़े रहने की आज्ञा नहीं दे सक्ती। युग की लहर ने पलटा खाया है, जो संसार की समस्त लहरों से बड़ी है। संसार अब परिवर्तन की तरंगों में हिलोरें ले रहा है; देश के जिन हृदयों में कुछ भी रक्त दौड़ रहा है, वे अपने सर्वस्व के मूल्य तक पर जननी जन्मभूमि की इस हीनावस्था की वृद्धि अब सहन नहीं कर सक्ते; वे अब भारत को भी उसी परिवर्तन-तरंग में गोता लगाना चाहते हैं। परन्तु उन्हें स्मरण रखना चाहिये कि

* पुस्तक का नहीं, केवल 'लेखमाला' का उपसंहार है।

जिस अवस्था में हम इस समय हैं और जिन मार्गों में हम चल रहे हैं, उन अवस्थाओं और मार्गों की जीवन-शक्ति का अन्त हो गया है, क्योंकि यदि ऐसा न होता तो आज न इस दुर्दशा का दृश्य ही दिखलाई देता और न इस दुर्दशा की नींव आगे के लिये सुदृढ़ बनानेवाली चरित्रहीन निर्बल आत्माओं की दिन प्रतिदिन वृद्धही दीख पड़ती। इसलिये कल्याण इसीमें है, अपना भविष्य उतना महान जितना अपना भूतकाल था, उसी समय बनाया जा सक्ता है, कि अब हम अपने निर्जीव जीवन से अन्तिम नमस्कार कर लें और कर्म्मक्षेत्र में आ अड़ें।

किसी देश की सच्ची सम्पत्ति वहाँ के हीरे और जवाहिरात नहीं, उसका बल बड़े २ नगरों और अट्टालिकाओं में निवास नहीं करता, किन्तु देश की सच्ची सम्पत्ति हैं उसके वे नवयुवक और युवतियाँ जिनके शरीर की आभा में प्रकृति का सब से अधिक स्पष्ट दर्शन होता है, और जिनके हृदय में उदारता, कर्मण्यता, सहिष्णुता और अदम्य साहस आदि शुभगुणों और भावों के स्रोत का प्रवाह अपने पूर्ण बलपर है।

भारत के नवयुवको! देश का भावी कल्याण केवल तुम्हारी गति पर ही निर्भर है। कर्मक्षेत्र तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है, देश का नाम रहते हुए भी यदि तुम उसके कल्याण के लिये आगे बढ़ने में सोच विचार कर रहे हो, तो ध्यान रखो कि तुम अपनी जन्म-भूमि के प्रति विश्वासघात और अपनी आत्मा के साथ धोखा कर रहे हो। प्रत्युत तुम्हारे जीवन के प्रत्येक विभाग पर और तुम्हारी क्रिया-शीलता के प्रत्येक फल पर विश्वास के भाव की छाप पूर्णतः अंकित रहे। तुम्हारे हृदय में यह भाव जागृत रहना चाहिये कि देश का

उत्थान हमारे ही ऊपर निर्भर है और जब यह ध्वनि तुम्हारे हृदय में समा जावेगी, तभी उसकी प्रेरणा से तुम देश और भूमण्डल के कल्याण के लिये श्रद्धा और प्रेम से अपने शरीर और आत्मा की बलि दे सकोगे। यह भावना तुम्हारी आत्मा को देश की आत्मा बना सकेगी, यह भावना तुम्हें देश के अन्याय के विरुद्ध अग्रसर करेगी, तुम्हें अनुभव करना चाहिये कि देश के साथ होने वाला अन्याय तुम्हारे साथ अन्याय है, और इसी भावना को हृदय में धारण करके तुम्हें संसार के स्वेच्छचारों के विरुद्ध सामना करने के लिये प्रस्तुत हो जाना चाहिये।

स्वत्व इस समय संसार में बड़ा प्रिय शब्द हो रहा है, स्थान २ पर उसकी महिमा की प्रतिध्वनि सुनाई देती है और उसके लिये बहुत हाथ, पैर पटके जाते हैं। विशेषतः पराधीन देशों के लिये तो यह 'स्वत्व' शब्द जीवनप्रायः ही समझा जाता है। परन्तु ध्यान रखना चाहिये कि स्वत्वों की भिक्षा कहीं नहीं मिलती, कर्तव्यबल से ही वे प्राप्त होते हैं। यदि तुम मृगतृष्णा की भांति उसके पीछे २ भागते फिरोगे, तो तुम्हारी शक्तियां केवल बटही नहीं जायंगी, किन्तु वे क्षीण हो चलेंगी। तुम्हारी जिन शक्तियों से अज्ञान का अन्धकार दूर होकर देश के अगणित झोपड़ों–देश के सच्चे मन्दिरों में आलोक की रेखा अंकित होगी, जिनसे तुम्हारा मानसिक-बल बढ़ेगा और विजय-लक्ष्मी तुम्हारे पैरों को चूमेगी, वही शक्ति केवल आलोचना और तर्क में लगकर माता की कोई सेवा किये बिना ही, देश के दुख हरे बिना ही ऊसर-भूमि में विलीन हो जायगी और तुम कुछ न कर सकोगे।

देश के सपूतों! तुम्हारी और तुम्हारे पूर्वजों की जननी,

तुम्हारी वह कार्य्यस्थली, जो परमात्मा ने तुहें दी है, और तुम्हारी वह शिक्षिका, जिससे तुमने वह माया पाई है जो सबसे पहिले तुम्हारी जिह्वा से निकली है। अब तुम्हारी सेवा का व्रत चाहती है—मातृभूमि संसार में ऊँचा स्थान लेने के लिये-आगे बढ़ने के लिये उत्सुक हो रही है। संसार के राष्ट्रों की पंक्ति में वह अपने पुत्रों को बैठा देखना चाहती है; और न केवल अपने ही कल्याण के लिये, वरन् दूसरों के कल्याण के लिये भी, अपने कर्तव्य का यथोचित रीति से पालन करके उन लोगों के अनाचार और अत्याचार रोकने के लिये जो दूसरों का मार्ग रोके खड़े हैं, और अन्त में विश्वव्यापी मनुष्यता की ड्योढ़ी पर अपनी भेंट चढ़ाने तथा दूसरों को यह महानकार्य करने के लिये। सिखाने को तुम्हें उपदेश दे रही है। तुम माता के इस कार्य्य की महत्ता को भली भांति समझ लो और राष्ट्र निर्माण के महावृत्त के लिये तन, मन और आत्मा से पूर्णतः तयार हो जाओ। स्मरण रखो—टेढ़े रास्ते तुम्हारे लिये नहीं है, सामयिक लहर तुम्हें बहा ले जाने वाली नही है। अपने महान कार्य्य की पूर्ति के लिये तुम्हें अत्यन्त विश्वास, अटल-साहस, महान संयम, सत्य, प्रेम और कठिन परिश्रम का पथगृहण करते हुए अपने लक्ष्य की ओर कभी और किसी प्रकार न टलनेवाली दृष्टि रखनी पड़ेगी, और यदि मातृभूमि के उज्वल-भविष्य के अतिरिक्त तुम्हारा कोई दूसरा लक्ष्य न रहा, और न देशवासियों के हित (स्वराज्य) के अतिरिक्त तुम्हारा कोई दूसरा उपास्यदेव, तो एक प्रातः काल, पूर्व के सूर्य्य की कोई रश्मि तुम्हें संदेश देगी, कि परम न्यायी सत्ताधार भगवान ने जननी जन्मभूमि (भारत) के क्लेशों को दूर कर दिया, और हम मनुष्यता की देवी के

आगे अपना मस्तिष्क झुकायेहुए अपने अधिकारों का उपभोग कर रहे हैं।

एक बात और ध्यान रखनेकी है। आधुनिक-भारत अब केवल हिन्दुओं का ही भारत नहीं रहा, इसमें अन्यजातियों के मनुष्य भी रहते हैं। अब हिन्दू, मुसलमान, पारसी आदि सब इसी भारतमाता के शौचमय गर्भ से जन्म धारण करते, और उसी की पवित्र गोद में पलकर नाना प्रकार के पदार्थों का उपभोग करते हैं, और अन्त में उसके पंच-तत्वों में मिल जाते हैं। इसलिये एक देश, एक जीवन, एक जातीयता और एकही लक्ष्य (स्वराज्य) का श्रोत सबके हृदयों में हिलोरें मार रहा है। वह यह भी पुकार २ कर कह रहा है कि धार्मिक-बातों में विभिन्नता और परस्पर साम्प्रादायिक विरोध होते हुए भी हम सब एक ही शक्ति के उपासक और एकही राष्ट्र के सेवक हैं। एक देश में रहने के कारण हमारे सब के दुख सुख हानि लाभ और स्वत्व समान हैं, अतः प्यारे देशवासियों-हिन्दू, पारसी और मुसलमान आदि आओ, राष्ट्रीयता की नींव को और भी दृढ़ बनालो और अपने जीवन के लक्ष्य की ओर और भी दृढ़ता के साथ बढ़ते चले जाओ। पवित्र-माता की वेदी पर जिस बात के लिये सब मत मतान्तर के मनुष्य एक होकर जुट जावेंगे, उसे वे प्राप्त करके छोड़ेंगे कोई भी शक्ति नहीं, जो संसार में उन्हें फिर उनके वास्तविक जन्मस्वत्वों का उपभोग करने से रोक सके।

* * * *

स्त्रियां और राष्ट्रीयता ;

प्यारी चतुर बहिनों ! उठो, उन्नति-शिखर पर चढ चलो,
आलस्य निद्रा छोड़ अब उत्साह से आगे बढो ।
बिना तुम्हारे पुरुष अकेले काम नहीं कर सकते है,
सदा सहारा पाने को वे बदन तुम्हारा तकते हैं ॥

अपनी लेखमाला में हमने पुरुषों के लिये तो बहुत कुछ लिखा और यह भी बतलाया के देश और राष्ट्र के प्रति उनका क्या कर्तव्य है । अब यहांपर हम भारतीय-स्त्रियों के विषय में भी कुछ लिखकर यह बतलाना चाहते हैं कि भारत के भविष्य को उज्वल करने में वे कहांतक सहायक हो सक्ती हैं और देश के अभ्युदय के लिये उनका क्या कर्तव्य है ?

यह एक मानी हुई बात है कि किसी भी देश व राष्ट्रके उत्थान में समता विना कार्य्य नही चलता । कोई देश, जबतक उसके अभ्युदय के लिये स्त्री और पुरुष दोनो मिलकर कार्य्य न करें, उन्नति नही कर सक्ता । इसी प्रकार भारतीय-राष्ट्र के उत्थान में उसके दुख दूर करने और उसको स्वतंत्र बनाने में जबतक देशकी देवियां हाथ नहीं बढ़ायेंगी, यह सब कल्पना करना व्यर्थ ही होगा ।

हम मानते हैं कि स्त्रियों में अभी स्वयं ही बहुत बड़ी न्यूनताएं हैं, और इसके विषय में अपनी लेखमाला में एक स्थान पर लिख भी आए हैं, परन्तु पुरुषों भी इनन्यूनताओं से शून्य नहीं हैं, और स्ववं वे ही स्त्रियों की न्यूनताओं और हीन दशाके कारण हैं, न्याय की दृष्टिसे हमे यह कहने में भी संकोच

नहीं होता कि जातीय-उत्थानके उद्योगमें वर्त्तमान समय में यद्यपि स्त्री जातिकी दिव्य शक्तियां कार्य्य कर रही हैं, परन्तु स्त्री-समाज जब तक पूर्णरूप से उस ओर ध्यान न देगा, कार्य्य होना कठिन है, स्त्री और पुरुष जब दोनों ही अपनी २ शक्ति भर उद्योग करेंगे, तभी कार्य्य में पूर्ण सफलता प्राप्त होगी अन्यथा नहीं।

रूस की राजक्रान्ति हमें यहां पर इस बात की शिक्षा देती है, कि वहाँ सहस्रों स्त्रियोंने अपने प्राण हथेली पर रखकर शासकों से भीषण से भीषण दण्ड-विधान की कुछ भी चिन्ता न करते हुए अपने भाई, बहिनों मे राष्ट्रीयताका प्रचार किया, और उन्हें मनुष्य बनने और मनुष्यके से अधिकार रखने के लिये उकसाया, ऊपर उठाया, और उनके जीवन का उद्धार किया। यद्यपि इस कार्य्य में सहस्रों वीर रमणियां और कुमारियां साइबेरिया के शीतप्रदेशो मे ऐंठ गई, पाशविक कष्टो की शिकार हुईं, कुत्तों की मौत मारी गईं, उनके ऊपर नाना प्रकार के अत्याचार किये गये, परन्तु वे अपने पवित्र उद्देश्य से नहीं हटीं, अपने विश्वास को नही छोड़ा और स्वदेश के उद्धार के लिये प्रसन्नता-पूर्वक प्राण निछावर करती रहीं। कैथेराइन वेशेवाकमका आत्मत्याग तथा भयंकरसे भयंकर कष्टोंका सामना और देवीजोन 'स्वतंत्रा देवी' की मूर्ति दोनों आदर्श स्वरूप है। जापानी महिलाओ ने रुसो--जपानीज़ युद्ध में देश के लिये जो किया, वह सवही जानते है, जिस समय उन देवियोके आत्म त्याग, और निःस्वार्थ-प्रेमका स्मरण होता है, हृदय मे जातीयता की लहर उठने लगती है। यह तो अन्यदेशों की स्त्रियो की वात है, इधर स्वयं भारत में ही साहस और आत्मत्याग के कार्य्य हमारी भारतीय-स्त्रियों ने देश के लिये जो किये है, वे

किसीसे छिपे नहीं हैं। प्राचीन भारतीय महिलाओं का चरित्र तो इतिहास में उनके अपूर्व गौरव और अमरयश का जो उन्हों ने अपनी जन्म-भूमि के लिये अपने बलिदान देकर किये, गीत गा रहा है। चित्तौर और राजपूताना की अन्य महिलाएं हमारे लिये आदर्श होगई हैं। यह तो प्राचीन काल है, इस समय भी देशमें बहुत सी महिलाएं बड़े २ अपूर्व-कार्य्य कर रही हैं। यद्यपि वे अपने पति, पुत्र, भ्राता और देश-बन्धुओं के साथ भारत की लालहरी पताका के साथ २ आगे बढ़ रही हैं, उनके पैर बड़ी दृढ़ता से पड़रहे हैं, उनके चेहरे से अपूर्व वीरत्व, आत्म-त्याग और अटल प्रतिज्ञाओं की दिव्य ज्योति पूर्ण साहसके साथ टपक रही है; उनके हृदय स्वतंत्रता के नवीन संचार से फड़क रहे हैं, वे अपने देश-वासियों को नवीन युगका सन्देशा बड़ी दृढ़ता-पूर्वक सुना रही हैं, तथापि उनकी संख्या अभी परियाप्त तो क्या न्यूनातिन्यून है। आवश्यकता है, कि देश की प्रत्येक रमणीके हृदय में यही धुन समाजावे। अतः बहिनो! आओ, अपनी शक्तिभर आओ, आगे बढ़ो और देश के कार्य्य में अपना हाथ बढ़ाओ। भारतमाता पुकार कर तुम्हारा आवाहन कर रही है' राष्ट्र की बागडोर तुम्हारे हाथ में है, भविष्य की माता तुम्हीं हो, तुम्हारी ही गुणमयी मूर्ति देशकी शोभा और राष्ट्र की सच्ची संचालक है। उठो, अपने भाई, बहिनों और देशवासियों को तन, मन और धन से उनके कष्टों से मुक्त कर ऊपर पहुंचाने का प्रयत्न करो। देखो—वे इस समय शिखर के बिल्कुल नीचे पड़े हैं। तुम्ही तप्त-भारत की प्यास बुझा सकी हो। यहाँ की पवित्र-भूमि जो वर्षों से कलंकित होकर नाना भाँति के दुख झेल रही है, वह तुम्हारेही बल, साहस और आत्म-त्याग

से अपने कलंकको मिटाकर अन्य देशों के साथ २ चलने योग्य हो सकेगी। यहाँ के चिरकालीन दुखित प्राणी फिर तुम्हारे उत्साह, साहस, धैर्य्य और कार्य्य-कुशलता पूर्वक कर्म करने से अपने कष्टों को दूरकर हरेभरे हो जावेंगे। तुम्हीं भारत की रक्षा कर सक्ती हो; तुम्हारा सदैव ही देशमें बड़ा मान रहा है, तुम्हीं भारत के बच्चों को गोद में प्रेम-पूर्वक रखकर अमृत पिलाने वाली हो, उनके द्वारा तुम्हीं भारतको सच्चा वैभव फिर प्रदान करा सक्ती हो तुम्हारा जन्म माता, पिता, कुल और देश को कृतार्थ करने के लिये ही है, देश तो तुमसे विशेषकर बहुत आशा किये है; वह तुम्हारी ओर असन्तोष पूर्ण, सतृष्ण नेत्रों से टकटकी लगाए देख रहा है। अतः तुम्हें भी अब अपने कर्तव्य पालनके लिये तयार हो जाना चाहिये। ईश्वर की दया से धीरे२ अब तुम्हारे पुराने बन्धनभी शिथिल होते जाते हैं, मनुष्य तुम्हारा स्वागत कर रहे हैं, और तुम्हारा मार्ग स्वच्छ बनाया जा रहा है; साथ ही इस समय कार्य्य की भी देश को बड़ी आवश्यकता है। तुम्हें अपने कर्त्तव्य-पालन के लिये उधर इधर नहीं भटकना पड़ेगा, तुम्हें अपने जीवन के लिये अपना वास्तव धर्म्म पालन करने के हेतु दूर तक खोलने की आवश्यकता नहीं है, तुम्हारी मातृभूमि, जननी, जन्मभूमि रोरोकर तुम्हें अपनी आवश्यकता और अपने प्राचीनतमावृत गौरव को फिर से चमकाने की आवश्यकता बतलाकर तुम्हें आगे को प्रेरित कर रही है। तुम्हारे मार्ग के चारों ओर विद्या, परोपकार, देश-सेवा, स्वदेश-प्रेम और आत्म-त्यागके कुण्ड भरे पड़े हैं, तुम्हें चाहिये कि तुम उनमें पूर्ण-रूप से रंगकर निकलो। ईश्वर ने तुम्हें अवसर दिया है, पथ खोई हुई बहिनों और दुखित मनुष्यों को कालीरात्रिमें दीपक का

काम दो, वे तुम्हारे जीवन से पवित्र लाभ करें, कर्त्तव्य-पथपर खड़ी होकर सब गिरी हुई बहिनों और पीड़ित मनुष्योंको उठाओ।

देवियो! तुम्हारा आदर्श बड़ा उच्च है, परन्तु उसे पाने के लिये तुम्हें अधिक त्याग की आवश्यकता है। तुम प्रथम स्वयं ऐसी विद्याको प्राप्त करो, जिससे पूर्ण जातीयता झलकती हो, देश का काम बने और तुम अपने कर्त्तव्य-मार्ग में सुगमता पा सको—और फिर देश-सेवा में लगजाओ। दया, क्षमा, शील, पवित्रता, सतीत्व, प्रसन्नता, मृदुभाषण, प्रेम, लज्जा, निस्वार्थ, चातुर्य्य और सहानुभूति तुम्हारे भूषण होने चाहियें और कर्त्तव्य—परायणता तुम्हारा आदर्श, विदेशी वस्तुओं का त्याग और स्वदेशी का आदर और प्रचार करना तुम्हारा मुख्य धर्म्म हो।

बहिनों! देशकी वर्त्तमान दशा तुमसे छिपी नहीं हैं, उसके लिये बड़े भारी त्यागकी आवश्यकता है, हर प्रकार के संकट और कष्ट सहने के लिये त्यार रहो, किसी प्रकारका संकोच, सोच व भय मत करो, अपनी शक्तियों को संगठित रखो और उन्हें देशके हितसाधन और उसकी सेवा करने में लगाओ, जीवनका आनन्द सेवा ही में है, जन्म का वास्तव तात्पर्य्य यही है कि मनुष्य भली भाँति देशसेवा करे। जहाँ कहीं तुम होओ, अपनी जाति, देश और राष्ट्रके प्रेम को सदैव हृदय में रखो और समय पड़ने पर आवश्यकतानुसार उसे कार्य्यरूप मे परिणित करके स्वदेश-प्रेम का पूर्ण परिचय दो। अपने देशसे अज्ञानता, दरिद्रता, बीमारी, हीनता और पातक दूर करना तुम्हारा मुख्य लक्ष्य हो। व्यक्तिगत् किसी प्रकार के झगड़ों को हृदय में स्थान न दो, वैमनस्य न उठाओ, वरन् संघ-शक्ति द्वारा इस दारिद्रय को निवारण करनेका उद्योग

करती रहो। हृदय, कर्म्म, और शरीर से किसी कार्य्य को यथाशक्ति न करना माता के साथ तुम्हारा अन्याय करना होगा। यह अवश्य है कि प्रथम २ कार्य्य में बाधाएं पड़ेंगी, पैर फिसलेंगे और दुख उठाने पड़ेंगे, परन्तु तुम इसकी चिन्ता न करो, सत्य-चित्त से कार्य्य करती चली जाओ-सफलता तुम्हारे पैरों पर लोटेगी।

काम करने का समय है, कठिनाइयों और बाधाओं से डरने का नहीं, अपनी शक्ति भर कार्य्य करो, घर मे अपने भाग्य-विधाता 'स्वराज्य' का मूलमंत्र फूंक दो, अपनी अज्ञ बहिनों को बतलादो-कि क्या करना है, स्वराज्य क्या है और उसकी हमको क्यों आवश्यकता है? दृढ़ता और वीरता से डटी रहो, विपत्तियों के झोके तुम्हें डगमगा न सकें, हिला न सकें और विचलत न कर सके। सफलता की नींव ऐसे ही मार्मिक समय में चुपचाप रखी जाती है, और रखी जा रही है, तुम भी उसमें सहायता लगादो और दिखादो, कि हम भी साथ हैं,—पूर्णतः साथ है, किसी के अहसानकी आवश्यकता नहीं। वे दिन गये जब हम कृपाके लिये किसीके सामने हाथ पसारते थे, इसलिये प्यारी भगनियों! उठो और कर्म्म-क्षेत्र में आजाओ, इस समय तुम्हारी सहायता ही माताके दुख दूर करेगी। माता के रुदन का काटता हुआ दुख तुम्हारे कर्णों में गुंजार रहा है, उसके साथ ही तुम्हें माता की सेवा में कटिबद्ध होजाना चाहिये, और ज्योंही तुमने आनन्द तथा प्रेमके साथ माताकी लटों को छुआ, ज्योंही तुमने अपनी सेवा तथा विजयी-जीवन माता के क्लेश हरने में समर्पित किया कि वह शोकमय-रुदन आनेवाले उद्धार के लिये तुम्हारी माताकी आशाभरी उत्कण्ठा तथा पुकार में बदल जावेगा।

प्रिय देशबन्धुओ ! प्यारी भगनियों ! अब अन्त में यही कहना है कि कार्य्य अधिक है, उसे सम्भालना ही पड़ेगा; सोचने, विचारने का समय अब नहीं रहा। देश का कल्याण 'स्वराज्य' में है। संसार में सभ्य उद्योगों द्वारा जिस प्रकार स्वराज्य प्राप्त हो सक्ता है, उसी प्रकार देश के दोनों अंग मिल कर उसे प्राप्त करो। डरना काहे का ? संसार के किसी देश व राष्ट्र के विकाश को कौन रोक सक्ता है ? तुम्हें अभी बहुत करना है, इस आन्दोलन की नियम-बद्धता की अन्तिम सीमा 'सत्याग्रह' और 'स्वदेशी व्रत' होगा। परमात्मा हमारे कृपा-लुओं को सुबुद्धि दे। आप अपना कार्य्य किये जाइये, देश की भलाई के लिये अपनी पुत्री व माताओं को लेकर और स्त्रियां अपने पति और पुत्रों को तयार करके इस महान कार्य्य में सम्मलित हों। चाहे उसके लिये आपको बड़े से बड़ा आत्म-त्याग करना पड़े, अपनी महान इच्छाओं को रोकना पड़े, समस्त सुखों का त्याग करना पड़े, परन्तु आप का लक्ष्य देश को 'स्वतंत्र और सुखी' करना ही हो, आगे बढ़ो, परमा-त्मा आपके साथ है, वह आपको आपके कार्य्य में अवश्य सफलता देगा और वह दिन शीघ्र ही आने वाला है कि पूर्ण रूप से 'स्वराज्य' का उपभोग करते होंगे। धैर्य्य और आशा रखिये, और निर्भय होकर दृढ़तापूर्वक नियमानुकूल कार्य्य करते चले जाइये।

होगी सफलता क्यों नहीं कर्त्तव्य पथ पर दृढ़ रहो !
आपत्तियों के वार सारे वीर बन करके सहो ॥
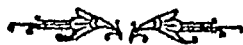
अष्टम परिच्छेद ।

लोकमान्य का आगमन ।

महिमा तुम्हारी ही जगत में धन्य आशे ! धन्य है ।
देखा नहीं कोई कहीं अवलम्ब तुझसा अन्य है ॥

जिन दिनों में यह 'लेखमाला' उस पत्र में निकल रही थी, हिन्दीजगत विशेषकर राष्ट्रीय-भारत में खलबली पड़ गई, लोग बड़े चाव से उसे पढ़ते और बड़ी उत्कण्ठा पूर्वक उस पत्र के आगामी अंक आने की प्रतीक्षा किया करते थे। पत्र की ग्राहक संख्या इतनी बढ़ी, कि कही नहीं जा सकी। उस समय भारत के समस्त पत्रों में वह उच्चकोटिका पत्र समझा जाने लगा और लोग उसका बड़ा आदर करने लगे। नगर की स्वराज्य-सभा का कोई सभासद न होगा, जिसने उसे मंगाकर न पढ़ा हो। इस लेखमाला को मनुष्य ज्यों २ पढ़ते, 'भारतदास' के प्रति उनकी श्रद्धा त्योंहीं त्यों अधिक होती जाती। अन्त को अब कई अंको में माला समाप्त हुई; स्वराज्य-सभा के सदस्यों की उत्कण्ठा भारतदास का यथार्थ नाम जानने को और भी प्रबल हो उठी। माला के समाप्त होते ही सभा के मंत्री ने उसी पत्र के आगामी अंक में एक पत्र छपने के लिये भेजा, जिसमें उन्होंने भारतदास की बड़ी प्रशंसा करके उनके प्रति अपनी परमभक्ति और श्रद्धा प्रदर्शित करके उनका यथार्थ नाम और पता जानने की अभिलाषा प्रकट की थी।

परन्तु फिर भी उन्हें भारतदास का यथार्थ नाम ज्ञात नहीं हुआ, वरन् चिट्ठी छपने के एक सप्ताह पश्चात् सभा

मंत्री के पास १०००) के नोटों के साथ २ एक पत्र आया, जिसमें लिखा था—

'मेरा ठिकाना बहुत बड़ा है; देश के झोंपड़े २ में मेरी आत्मा वास करती है। मेरा नाम 'भारतदास' ही है। मैं यह रूपया आप के पास भेजता हूं, आप इससे देश के झोंपड़ों में जाकर 'स्वराज्य' का संदेशा पहुंचाइये और समझिये कि मुझ से मिल रहे हैं। क्योंकि जब तक आप देश के झोंपड़ों की आत्माओं को जागृत कर उन में स्वराज्य का प्रचार न करेंगे, तब तक भारतीय राष्ट्र का वास्तविक उत्थान होना असम्भव है, और न आप अपने 'स्वराज्य' के ध्येय में ही सफलीभूत हो सकेंगे, कारण कि,—राष्ट्र महलों में नहीं रहता प्राकृतिक-राष्ट्र के निवास स्थान वे अगणित झोंपड़े हैं, जो गांवों और पुरवों मे फैले हुए खुले आकाश, देदीप्यमान सूर्य्य, शीतलचन्द्र और अगणित तारागण से प्रकृति के संदेशे लेते हैं, और इसलिये राष्ट्र का मंगल और उसकी जड़ उस समय तक दृढ़ नहीं हो सक्ती जब तक इन अगणित लह-लहाते पौधों की जड़ों में जीवन का (दृढ़ता का) जल नहीं सींचा जाता। भारतीय-राष्ट्र-निर्माण के लिये उसके ग्रामों और पुरों में जीवन की ज्योति की आवश्यकता है। आवश्यकता है कि हम अपने हाथ, पैर, नाक और कान को भी उस मिठास की कल्पना करने का निमंत्रण दें जिसकी कल्पना हमारे मन में है। करोड़ों प्राणियों की जागृति के लिये हम आगे बढ़ें और उन्हें आगे बढ़ावें जिनके बढ़ाने की शक्ति हमारे हाथ में है। ग्रामों में पचायतें स्थापित करने की प्रथा बड़ी उत्तम है। जहां पंचायतें नहीं हैं, वहां वे स्थापित की जांय और जहां २ हैं, वहां दृढ़ की जांय। काम होने पर पता

लग सकेगा कि हमारे गाँव इसमें कहां तक हैं ? यह बात इस समय चाहे काल्पनिक ही ... परन्तु एक समय था जब हमारे गांव प्रजासत्ता के उस बड़े भाव के केन्द्र-स्थल थे, जिसके आधार पर आगे बढ़ना आज प्रत्येक उन्नत-शील देश अपना कर्त्तव्य समझता है। मुसलमानों ने देश के अधिकांश पर अपना झण्डा फहरा दिया था अवश्य, पर बड़े से बड़े मुसलमान-सम्राट का शासन या तो देश के बड़े २ नगरों में था, अथवा उस भूमि पर जिस पर उसकी सेना का पदार्पण होता था। पर देश के लाखों ग्रामों में उन्हीं की तूती बोलती थी, जो उन्ही के थे और उन्हें पता तक न लगता था कि कौन आया और कौन गया। परन्तु अब गांवो की भी स्वाधीनता नष्ट हो गई, उन्हें जान पड़ा कि हमारे हल के सिरों पर शासकों का बलवान लोहा पड़ा; पंचायतें टूट चली, और ग्रामों की कभी नष्ट न होने वाली शान्ति ने अपना बंधना-बोरिया सम्भाला। जहां प्रजासत्ता आनन्द से विचरती थी। वहां स्वेच्छाचारिता की स्थापना हुई। कोयल के घोसलों में कौओं का वास हुआ। जहां प्रेम और आदर के सूत्र मे सब बंधे थे, वहां स्वेच्छाचारिता की छत्र-छाया में बना बनाया खेल बिगड़ गया, और टूटी हुई अट्टालिका के सुधार पर उसकी नीव पर दूसरी अट्टालिका की नीव रखने का विचार भी उनके हृदयों मे उत्पन्न न हुआ, जिनके हाथों मे बिगड़े भाग की डोरी थी। वर्षों से देश के गांवों की बुरी दशा है, प्रतिवर्ष वे उजड़ने जाते हैं; हर साल लाखों आदमी उनसे निकल कर नगरो में आ बसते हैं—कुछ तो जीविका के लिये और कुछ अपने गांव के स्वेच्छाचारी सरकारी प्रतिनिधियों के असहनीय अनाचारों से बचने के लिये।

इन समस्त बुराइयों को दूर करने के लिये गांवों में पंचायतें स्थापित करने की आवश्यकता है; परन्तु इस ढंग से नहीं, जैसे कि कार्य्य हो रहा है, क्योंकि इनसे लाभ के स्थान में हानि ही होगी—स्वेच्छाचारिता घटने के स्थान में बढ़ेहीगी।

पंचायत 'स्वराज्य' का एक अंग है; पंचायत को अपने गाँवों की भीतरी बातों में पूर्ण स्वाधीनता थी। वर्त्तमान आवश्यकताओं की दृष्टि से एक पंचायत को अवने ग्राम में वही अधिकार तथा उसके वह कर्त्तव्य थे, जो आजकल चुंगी के हैं—अर्थात् गाँव की शिक्षा, स्वच्छता, स्वास्थ्यरक्षा, आदि सब कार्य्य पंचायतों पर ही निर्भर थे, अभियोग व लड़ाई झगड़ों का न्याय भी पंचायतें ही किया करती थीं। परन्तु उस समय यह सब कुछ थे ही नहीं; गाँव वाले स्वयंही शान्तिप्रिय थे; किन्तु आज वर्षों से, जब से पंचायत-प्रथा टूटी गावों की स्वाधीनता का ह्रास हो रहा है और शक्तिमान लोग गाँववालों को सता कर उन्हें निकृष्ट समझने, उन्हें लड़ाने और उनके अभियोगों से लाभ उठाने के बड़े अभ्यासी हो रहे हैं; अथवा यों कह लीजिये कि जिस भारत को देवताओं तक ने अपनी लीलाभूमि बना रक्खी थी, जहाँ से प्रेम की पवित्र मन्दाकिनी ने प्रवाहित हो कर ईर्ष्या द्वेषकी जड़को उखाड़ फेंका था, उस पवित्र भारत के एक कोने (अर्थात् ग्रामों) में आज भी वेश्यायों की भांति सजने वाले, प्रजाका रुधिर चूसने वाले, सण्डेमुसण्डे धनी निर्जीव, दुर्बल प्रजा (गाँव वालों) के ऊपर अपनी नादिरशाही दिखलाने से नहीं चूकते। तवासी लहकती हुई भूमिपर खड़े हो, पसीने के रूप में अपने हृदय के रुधिर को बहाकर जो प्रजा, अनाथ ग्रामीण पहिले उन्हीं धनिकों का, पीछे (वह भी किसी प्रकार) अपना पेट

पोषते हैं, उनपर कृतघ्नमण्डली अमानुषिक अत्याचार कर ऊपर से औरंगजेबी से भी बढ़कर अपनी उद्दण्डता दिखला रही है। एक संध्या भरपेट दाना खाते देख राजकर अथवा आवकारी के विभाग के बहाने उन दीनों के रुपये—साथ ही साथ रुधिर धर्म्म तक चूसने से नहीं हिचकती, और दरिद्र बना कर नीति-भ्रष्ट जीवन पालन करने के लिये उन्हें बाध्य कर रही है। कहीं जंगली असभ्य जातियों का बास है जो जानते ही नहीं—सभ्यता, शान्ति, शिक्षा, धर्म और स्वाधीनता आदि क्या पदार्थ हैं? सृष्टि के महा तुच्छ व नीच जीव तक से उनकी तुलना नहीं की जासक्ती। हिन्सकपशु अपनी उदर पूर्तिकर बहुत कुछ शान्त हो जाते हैं, किन्तु इस भीषण हिन्स-स्वभाव के मनुष्य-समुदाय की हिन्सावृत्ति संसार में अतुल-नीय है। देश में लूट मचाना, हत्या करना, व्यभिचार करना-यही इन लोगों का वर्त्तमान और प्रधान कर्त्तव्य हो रहा है। शान्ति-प्रिय लोगों का उत्पीड़न करना भी इनके मुख्य कार्य्यों में से है। साथही वहाँ पर स्वेच्छाचारिता की जो बढ़ती हो रही है, वह तो अवर्णनीय है, परन्तु इन स्वेच्छाचारियों को हाथ में दाव रखने से गाँव वालो को कुछ स्वाधीनता मिल सक्ती है। पर हम पूछते है—क्या यह लोग किन्हीं बन्धकों में रखे जा सकेंगे? हमें सन्देह है, क्योंकि इन स्वेच्छाचारियों में अधिकांश स्वार्थी लोग है, और उनका दाबा जाना उस समय तक कठिन है, जब तक देश के शाशन में देशवालों का हाथ बहुत कुछ नहीं होता, अर्थात् स्वराज्य नहीं मिलता। परन्तु स्थिति चाहे जो कुछ हो, इसमें कोई सन्देह नहीं कि ग्रामों को उठाने की बड़ी भारी आवश्यकता है—न केवल गावों की दशा का मूलोच्छेदन करने के लिये और उनसे

कलह, अज्ञान और फूटको दूर करने के लिये, किन्तु देश में राष्ट्रीयभावों की जड़ पूर्णतः दृढ़ करने के लिये भी। अतः वह, जिनके हृदय में जागृति के कुछ भाव हैं और जो देश के भिन्न २ अंगों को जुड़ा देखना चाहते है और जो एक महान राष्ट्रका स्वप्न देख रहे हैं, जो देश और देशवासिओं के पूर्ण विकाश रोकने पर दूसरों को तिरस्कृत करते हैं और जो मनुष्यता के कल्याण में ही संसार का कल्याण समझते हैं—उस समय तक अपने कर्त्तव्य से गिरे रहेंगे, जब तक वे स्वयं अपने हाथों से इस बड़े महल राष्ट्रीयता की नीव रखने के लिये आगे न बढ़ेंगे और आगे बढ़कर उन करोड़ों अपने भ्राताओं को आगे आगे बढ़ने का मार्ग न दर्शाएंगे और उनमें राष्ट्रीयता के भावों को उदय नहीं करेंगे, जो स्तब्ध होने के कारण हमें पीछे घसीटनेवाले और देश के बोझ बन रहे है।

आपकी स्वराज्य-सभा जो इस समय तक अपने कार्य्यों और प्रचार द्वारा देशका बहुत कुछ हितसाधन कर चुकी है—मुझे पूर्ण विश्वास और आशा है—कि इस धन से राष्ट्रीयता और स्वराज्य की गुंजार-उन लोगों तक अवश्य पहुंचावेगी जो इस समय इतने गिरे हुए हैं और जो देश तथा राष्ट्र की सम्पत्ति और भारत के उत्थान के वास्तव कारण हैं।

यह भी नम्र निवेदन हैं कि यदि आप कर सकें, तो इस पत्र का कुछ आरम्भिक और यह अन्तिम भाग छोड़कर इसे किसी राष्ट्रीय पत्र में छपवा दें तो देश तथा राष्ट्र के साथ आपका बड़ा उपकार होगा, मैं कई कारण से इस पत्र को न छपा सका, किन्तु विश्वास है आप मेरी इस अभिलाषा को भी पूर्ण करें।

सही—

'भारतवासि'

नगर की स्वराज्य सभा के सामने आज एक बड़ी कठिन समस्या उपस्थित है। लोकमान्य तिलक कांग्रेस से लौटते समय नगर के स्टेशन से होकर जाने वाले हैं; स्वराज्य सभा ने उन्हें अपने यहाँ आने के लिये पहिले से निमंत्रित कर दिया था, उन्होंने भी निमंत्रण स्वीकार कर लिया और लिख दिया था कि कांग्रेस से लौटते समय वे उतरेंगे। अतः कल दोपहर को वे आनेवाले है, कल संध्या ही को उनका व्याख्यान हो जाना चाहिये, क्योंकि रात्रि की गाड़ी से ही वे पूना चले जावेंगे।

सभावाले महाराज को निमंत्रण तो दे चुके थे, किन्तु उन्हें ज्ञात नहीं था कि आगे चलकर क्या २ बाधाएँ पड़ेंगी और क्या २ कष्ट उठाने होंगे? इस समय उनके निवास के लिये स्थान की आवश्यकता थी, मनुष्य उनको अपने यहाँ ठहराते डरते थे। बेचारे मदनमोहन और स्वराज्य-सभा के अन्य दो एक सदस्य नगर के समस्त बड़े २ मनुष्यों से मिलते फिरे, सभी के हाथ पैर जोड़े, परन्तु कोई भी 'महाराज' को अपने यहाँ ठहराने के लिये तयार नहीं हुआ, सबों ने मनाकर दिया। देशभक्ति और देशभक्त होने का दावा भरना किसी ने न छोड़ा, सभी अपने को पूर्ण देशभक्त और राष्ट्रका सेवक कहते थे, मातृभूमि के उद्धार के लिये स्वराज्य के उपासक और पोषक भी बनते थे, परन्तु महाराज को ठहराने के लिये किसी के यहाँ स्थान नहीं था; सबों के सभी मकान व कोठियाँ भरी थी—किसी के यहाँ महिमान; किसी के यहाँ साले सालियाँ. किसी के मान और किसी के यहां बिटिया के श्वसुरालवाले आये हुए थे, कोई कहते 'मकान कल तो ख़ाली था, आज ही किराये पर उठा दिया; आपने तब से

क्योंकि नहीं कहा, नहीं तो एक दो दिन और न उठाते, जैसे अबतक पड़ा था, तो क्या इसके लिये एक दो दिन और न रख सक्ते थे? कोई कहते-'लल्ला अपनी श्वसुराल चला गया है, बिना उसकी सम्मति के हम कोई उत्तर नहीं दे सक्ते, कल संध्या तक आ जायगा, तब आप आइये"। सुतरां सबोंने इसी प्रकार बातें बना २ कर टाल बता दी, कोई भी मकान देने को तयार नहीं हुआ। सभा के सदस्य हैरान थे; ईश्वर की दया हुई, बड़ी दौड़ धूप के पश्चात् ठहराने को तो एक मकान मिल गया, अब व्याख्यान के लिये स्थान की आवश्यकता थी। छोटे मोटे स्थान से कार्य्य चल न सक्ता था, बड़ा कोई देता न था, उसमें भी यही अथवा ऐसी और अड़चनें लगाई गईं। ठीक भी है, जब उनके ठहराने के लिये ही स्थान देने को मनुष्य तयार नहीं थे, तो व्याख्यान के लिये भला क्यों देने लगे? रामलीला के कार्य्य-कर्त्ताओं ने अपना लीला-भवन नहीं दिया, नगर के धर्म्मशाला में भी व्याख्यान कराने की आज्ञा नहीं मिली, धर्म्म-सभा के मन्दिर में कल ही धर्म्म सभा होने वाली थी।

एक प्रतिष्ठित सज्जन रामकिशोर बाबू का अहाता पर्य्याप्त लम्बा चौड़ा था; नगर की कुछ सभाएं भी पहिले उसमें हो चुकी थीं, परन्तु जो सभाएं हुई थीं, वे राष्ट्रीय नही; धार्मिक थीं। रामकिशोर बाबू प्राचीन विचार के मनुष्य थे, उन्हें वर्त्तमान आन्दोलन से कोई सम्बन्ध नहीं था, वे इसे चतुरता नहीं समझते थे कि स्वराज्य का प्रचार हो, सदैव इससे दूर ही रहते थे। यद्यपि वे साधु पुरुष थे, परन्तु ऐसा करना उनकी सामर्थ्य के बाहर था, तौ भी उनकी सज्जनता के कारण मनुष्य उनसे अहाता पा जाने की आशा रखते थे, क्योंकि अभी तक

उन्होंने किसी सभा के लिये मना नहीं किया था, इसीसे स्वराज्य-सभा के सदस्य विचार रहे थे कि सम्भव है, इसके लिये भी मना न करें। इसी आशा भरोसा से मदनमोहन और उनके साथी दौड़े २ उनके यहाँ गये। जाते ही निराशा झलनी आरम्भ हुई। कहा गया—रामकिशोर जी आजकल घर पर नहीं हैं, बाहर गये हुए है।

परन्तु यह लोग निराश नही हुए; उन्होंने रामकिशोर के मुनीम से कहा—'आप उनके प्रतिनिधि है, हम तो आपको भी उन्हीं के समान समझते हैं, हमारे लिये जैसे रामकिशोर बाबू, वैसे ही आप, आप ही अहाते में व्याख्यान कराने की आज्ञा दे दीजिये।

मुनीम ने बड़ी गम्भीरता पूर्वक उत्तर दिया, महाशय! बाबू जी होते तो क्या, और नहीं हैं तो क्या? अहाता आज पन्द्रह दिवस हुए बेच दिया गया है, अब हमें आज्ञा देनेका क्या अधिकार है?

अब तक तिनके का सहारा था, अब वह भी जाता रहा; सब बड़े चक्कर में पड़े, परन्तु फिर भी धैर्य्य और आशा को नहीं छोड़ा। पूछा किसने ले लिया है?

मुनीम—ठीक २ नाम तो बाबूजी ही को ज्ञात होगा। हाँ मै इतना जानता हूं, कि लेनेवाले सज्जन यहां के नही हैं, काशी से उनका पत्र-व्यवहार हुआ था।

बस अब क्या था? इस बात को सुनकर तो सभा के सदस्यों की समस्त आशाओं पर पानी फिर गया, निराश होकर उन्हें लौटना पड़ा। अब वे लोग बड़े चिन्तित हुए, उनकी बुद्धि कार्य्य नहीं करती थी, क्या करें क्या न करें? मदनमोहन की सबसे बुरी दशा थी, अब वे इस उलझन से

घबड़ा उठे, उन्हें आज सभा का कार्य्य असह्य हो उठा। मनही मन वे उस घड़ी को कोसने लगे, जब उन्होंने इस मार्ग में पदार्पण किया था। आज रह रहकर उन्हें पिताका स्मरण हो आता था, उनका मन उस व्यवहार और उसके परिणाम पर मसोस २ उठता था, जो उन्होंने अपने पिता के साथ किया था। पिता की स्मृति, ग्लानि और पश्चात्ताप उनके मनको उथल पुथल कर रहे थे; वे सोचते थे, किसी प्रकार यह दो दिन और कट जांय और मैं इस काम को अपने सिर से उतार फेंकूं।

संध्या हो गई, व्याख्यान के लिये कोई स्थान नहीं मिला। दिनभर की कड़ी दौड़धूप और कठिन परिश्रम के पश्चात् मदनमोहन बड़ेही उदास मन से घर को लौटे। बैठक की मेज़ पर लेम्प जल रहा था; थके हुए मदनमोहन मेज़ के पास कुर्सी सरकाकर बैठ गए, उनकी कोहिनियां मेज़ पर थीं और नेत्र टमटमाते हुए लेम्प पर; शरीर निश्चल था और मनही मन संकल्प विकल्पों का तांता लगा हुआ था; इतने ही में सरस्वती धीरे २ कमरे में आई, परन्तु मदनमोहन विचारों में इतने मग्न थे कि उसका आना उन्हें न जान पड़ा। जब समीप आकर उसने कहा–'प्राणनाथ !......, तब मदनमोहन का ध्यान टूटा, और पूछा 'क्यो" ?

सरस्वती-आठ बजने वाले हैं, क्या आज भोजन नहीं कीजियेगा ? आज आप चिन्तित से जान पड़ते हैं, क्या दासी उसका कारण जानने की पात्री है ?

मदन०—हां करूंगा ! परन्तु अभी नहीं। आज एक बड़ी कठिन समस्या आ पड़ी है, बुद्धि काम नहीं करती कि क्या किया जाय ?

सर०—क्या कृपया मुझे भी बतलावेंगे? क्या दासी उसमें आपकी कुछ सहायता कर सक्ती है?

मदन०—नहीं, तुम्हारे किये उसमें कुछ नहीं होगा, तुम उसमें कोई सहायता नही दे सक्ती।

सर०—परन्तु क्या मैं उसे जान भी नहीं सक्ती?

मदन मोहन ने सारी कथा आद्योपान्त सुनादी, और फिर उसे भीतर जाने को कह आप ऊसी सोच विचार में लगे। सोचते २ देश के लोगों की मानसिक निर्बलता उनके सामने आगई। सोचने लगे :—

"मनुष्य कितने भीरु हैं? देश-भक्ति और देश भक्त को वे अच्छा समझते हैं, राष्ट्र का उत्थान उन्हें अभीष्ट है, परन्तु खुलकर राष्ट्र-सेवियों का साथ देने और उन्हें अच्छा कहने के लिये तयार नहीं है, आत्मिक-बल और साहस की इन लोगों में इतनी कमी है कि समय आने पर काम से अलग भाग खड़े होते हैं। जो लोग व्याख्यान के लिये एक स्थान नही दे सक्ते, उनसे और क्या आशा की जा सकती है? बड़े आदमियों का कपटाचार और भी भयंकर है। जहां लाभ है, वहां वे देश हितैषी बन जाते हैं और कहने लगते हैं "स्वराज्य के लिये आन्दोलन कर रहे हो, खूब करो, उसमें अपनी पूर्ण शक्तियां लगादो, हम भी साथ हैं। जिस जाति में स्वराज्य की तरंग उत्पन्न हो जाती, उस जाति में जीवन के सभी कार्य्यों में एक प्रकार की जागृति आ जाती है, और वही जाति संसार में जीवित जाति कहलाने योग्य होती है", परन्तु जहां तनिक भी जोखिम आई कि वहां झट हवा हो जाते हैं और भूल जाते है कि-'स्वराज्य की पहिली सीढ़ी हमारे भीतर है, यदि हम स्वयं अन्तःकरण से व्यस्त हैं, यदि हम तन

सर०—क्या कृपया मुझे भी बतलावेंगे ? क्या दासी उसमें आपकी कुछ सहायता कर सक्ती है ?

मदन०—नहीं, तुम्हारे किये उसमें कुछ नहीं होगा, तुम उसमें कोई सहायता नहीं दे सक्ती।

सर०—परन्तु क्या मैं उसे जान भी नहीं सक्ती ?

मदन मोहन ने सारी कथा आद्योपान्त सुनादी, और फिर उसे भीतर जाने को कह आप उसी सोच विचार में लगे। सोचते २ देश के लोगों की मानसिक निर्बलता उनके सामने आगई। सोचने लगे :—

" मनुष्य कितने भीरु हैं ? देश-भक्ति और देश भक्त को वे अच्छा समझते हैं, राष्ट्र का उत्थान उन्हें अभीष्ट है, परन्तु खुलकर राष्ट्र-सेवियों का साथ देने और उन्हें अच्छा कहने के लिये तयार नहीं है, आत्मिक-बल और साहस की इन लोगों में इतनी कमी है कि समय आने पर काम से अलग भाग खड़े होते हैं। जो लोग व्याख्यान के लिये एक स्थान नही दे सक्ते, उनसे और क्या आशा की जा सकती है ? बड़े आदमियों का कपटाचार और भी भयंकर है। जहां लाभ है, वहां वे देश-हितैषी बन जाते हैं और कहने लगते हैं "स्वराज्य के लिये आन्दोलन कर रहे हो, खूब करो, उसमें अपनी पूर्ण शक्तियां लगादो, हम भी साथ है। जिस जाति में स्वराज्य की तरंग उत्पन्न हो जाती, उस जाति में जीवन के सभी कार्य्यों में एक प्रकार की जागृति आ जाती है, और वही जाति संसार में जीवित जाति कहलाने योग्य
जहां तनिक भी जोखिम आई कि वहां
और भूल जाते हैं कि–'स्वराज्य
भीतर है, यदि हम स्वयं अन्तः

मन से कार्य्य कर रहे हैं वा करेंगे, तो सब कुछ हो जायगा; सुधार की पाठशाला में आत्मसंयम, आत्मनिर्भर आत्मसुधार, आत्मनिरीक्षण, धैर्य, साहस, सहनशीलता, त्याग और विश्वास आदि का जो पहिला पाठ है उस समय वे लोग सब भूल जाते हैं। जो लोग व्याख्यान के लिये एक अहाता तक देने को तयार नहीं है, उनसे और क्या आशा की जाय? देश की इस अधः पतित दशा में काम करना ठीक नहीं। बस अब पिण्ड छुड़ाकर इन झगड़ों से उदासीन हो घर बैठकर अपना कार्य्य करना ही अच्छा है"।

मदनमोहन इन विचारों में पड़े हुये थे कि उन्हें किसी की पांव आहट सुनाई दी, उनका ध्यान फिर टूटा और सिर उठाकर देखा तो स्वराज्यसभा का चपरासी उनके सामने खड़ा है। पूछा—क्या है?

चपरासी ने, 'वन्देमातरम' कहा, और एक लिफ़ाफ़ा उनके सामने रख दिया।

नवम परिच्छेद।

पुनर्मिलन।

उपलक्ष के पीछे कभी विचलित न जीवन लक्ष्य हो,
जब तक रहें यह प्राण तन में पुण्य का ही पक्ष हो।
सुख और दुःख में एक सा सब भाइयों का भाग हो,
अन्तःकरण में गूंजता ही राष्ट्रीयता का राग हो॥

यह लिफ़ाफ़ा सभा के उपमंत्री ने उनके नाम भेजा था, उसमें एक चिट्ठी थी, नीचे उपप्रधान के हस्ताक्षर हो रहे थे, चिट्ठी में लिखा था—

'तुरन्त आइये, एक सुसम्वाद है, अन्य सभासद और मित्रगण भी बैठे हैं, सब बातें यहीं बताई जाँयगी।

मदनमोहन बिना भोजन किये ही चलने लगे। सरस्वती ने कहा भी कि 'भोजन करते जाइये' परन्तु उन्होंने नहीं किया। 'अब आकर ही करेंगे', इतना कहा और चले गये।

मदनमोहन सभाभवन में पहुंचे। उपप्रधान ने बड़े उत्साह और प्रसन्नता से—'लो भाई! स्वराज्य की जय, ईश्वर ने हमारी प्रार्थना सुन ली, हमें घर बैठे ही स्थान मिल गया, अब नगर में एक बड़ा भारी कार्य्य हो जायगा, अब चिन्ता की बात नहीं, समय कम है, तयारी करना चाहिये'—कहा, और एक पत्र मदनमोहन को दिया। मदनमोहन पत्र पढ़ने लगे; उसमें लिखा था—

'कल से मैं इसी नगर में हूं। मुझे ज्ञात हुआ है कि आप को इस समय लोकमान्य तिलक के व्याख्यान के लिये स्थान नहीं मिलता। स्थान देना तो एक ओर, लोग आप से बात

भी नहीं करते। इससे अधिक शोकमय बात और क्या हो सक्ती है? हम नहीं समझते आजकल भारत के लोगों की क्या दशा हो गई है? आत्मत्याग, स्वाभिमान और देश प्रेम उनके हृदयों से सर्वथैव प्रस्थान कर गये हैं। जो भारतमाता वर्षों से इतने कष्ट कुठार सह रही है, उसकी इस वर्त्तमान दशा को देख कर वे लोग अब भी सचेत नहीं होते। उसके उद्धार का ध्यान भी कभी उन्हें नहीं आता। अन्य देशों में ऐसे २ देश भक्त विद्यमान हैं, जो अपनी मातृभूमि को स्वर्ग धाम से बढ़ कर समझते हैं और उसके लिये अपने तन, मन धन सभी कुछ अर्पण करने लिये सदैव तयार रहते हैं, और अपने प्यारे देश की रक्षा के लिये, अपनी जननी, जन्मभूमि के अभ्युदय के लिये अपने अमूल्य प्राणों तक को निछावर कर देते हैं। परन्तु हा ! भारत में क्या? 'मातृभूमि'—जिस शब्द में ही उत्साह, उमंग और प्रेम भरा हो, जिसके उच्चारण मात्र से मोह उत्पन्न हो आता हो, जिसमें हमने जन्म लिया और जो हमारी ही नहीं, हमारे पूर्वजों की भी जननी है— उसके लिये भारतवासी कुछ नहीं कर सक्ते? आज उसकी यह दशा, यह दीन हीनावस्था, और हम यों दूर भागें? आज भारतवासियों की आत्माओं से अपने पूर्वजों की यह बात—

जीते हुये भी मृतक सम रह कर न केवल दिन भरो,
बर वीर बनकर आप अपनी विघ्न बाधाए हरो—

बिलकुल ही निकल गई है। आज कितने भारतवासी कहते हैं कि 'भारत हमारी माता है, जन्मभूमि है, उसके गुण दोषों को न देखते हुए जननी के समानही उसे प्रेम करेंगे, उसका दुख हरेंगे और आवश्यकता होने पर उसे शरीर तक अर्पण कर देंगे? परन्तु संसार में सब मनुष्य एक से नहीं,

जहाँ ऐसे मनुष्य हैं, वहाँ ऐसे भी मनुष्य देश में बहुत हैं जो माता की स्थिति से पूर्ण परिचित हैं, मातृभूमि शब्द के स्मरण से ही उनके हृदय दुख और प्रेम से भर जाते हैं, आँखों में अश्रु आजाते है। जिनकी माता कारागार में हो, उसे उससे छुटाने के लिये नेत्र अश्रुपूर्ण हो हृदय में उत्साह, साहस, त्याग और दृढ़ संकल्प होना चाहिये अथवा एक देशभक्त के व्याख्यान के लिये स्थान भी न दें? शोक है उनकी इस निर्बलता पर, परन्तु इस समय इन बातों के रोने से क्या? काम की आवश्यकता है, समय आ रहा है स्वयं ही समझ जावेंगे।

अब आप स्थान की चिन्ता न कीजिये। आप रामकिशोर बाबू के अहातेमे व्याख्यान कराइये, उसे आज एक पक्ष पूर्व मैंने एक बड़े शिल्पविद्यालय की स्थापनार्थ पंद्रह सहस्र रुपये में ले लिया है।

कल संध्या को आठ बजे व्याख्यान के समय मैं भी आप लोगों के दर्शन करूंगा।

आपका वही—

भारतदास

इस पत्र से मदनमोहन को बड़ी प्रसन्नता हुई। सभाके सब कार्य्यकर्त्ता 'भारतदास' की प्रशंसा करने लगे, उनके दर्शनों को अब तो उनका मन और भी उत्सुक हो उठा। कल के कार्य्य के लिये कार्य्यविभाग बनाकर लोग अपने २ घर गए। प्रातः होते ही अहाते में मण्डप बनाने की तयारियां होने लगी, पचासों मनुष्य कामपर लगा दिये, बारह बजते २ साधारणत एक अच्छा बड़ा मण्डप बनकर तयार हो गया नगर और उसके आस पास के ग्रामादि में विज्ञापन बांटने

का भी प्रबंध कर दिया। इतनेही में लोकमान्य की गाड़ी आने का समय आ पहुंचा, सब लोग स्वागत के लिये स्टेशन को चल दिये।

ओहो—क्या ठीक है? एक दो दस की कौन कहे, न जाने कितनी गाड़ियाँ आज सड़क के दाये बाये खड़ी हैं? कहीं टमटम की कतार, कहीं बग्घियों की भरमार और कहीं 'भोंभों, करती मोटरों की दौड़ है। क्या कहना है? सवारियों का तो ताँता ही बंध गया। इधर बीच सड़क पर मनुष्यों के ऊपर मनुष्य गिर रहे हैं। आगे, पीछे, और दाहिने और बायें सबही ओर से धक्के लगते थे, उधर गाड़ियों और मोटरों के मारे नांकों दम था, कंधों से कंधे भिड़कर, शरीर से शरीर मिलकर, समस्त देह में पीड़ा होने लगी थी। यदि वहां पर सड़क में कोई गिर पड़ता, तो जीवित बचना तो एक ओर शरीर तक रहने की सम्भावना नहीं थी, लोगों के आने जाने से कुचलकर हड्डी भी साबित न रहती, सब पिचकर चूर हो जाती।

यह तो बाहर था, अब स्टेशन के भीतर का भी दृश्य देखिये—लोगों को भीतर जाने को स्थान नहीं मिलता था, गुंजार के मारे कानों शब्द नही आता था। कोई महाशय प्लेट-फार्म टिकट मांगते हैं तो दूसरे कहते–क्या आपही लेने वाले हैं? टिकट मिलते तो कहना ही क्या था? आज केवल इन्हीं से चांदी चमक उठती, सहस्रों रुपया रेलवे वालों को मिलता, परन्तु उनके अभाग्य से आज प्लेटफार्म टिकट ही नहीं मिलते—इतने में तीसरे बोल उठे–बस इन्हीं बातों से चित्त बिगड़ जाता है, भला कम्पनी का इसमें क्या बिगड़ता? क्या प्लेटफार्म घिस जाता अथवा स्टेशन लुट जाता? देखो तो

द्वार (Gate) ही नहीं खोला। यदि फाटक खुले रहते तो न इतना भव्वर बाहर रहता और न भीतर रहता। अच्छा तो कुछ हो अब तो भीतर पहुंचेंगे ही। उसी प्रकार वहाँ जितने मुंह उतनी ही बातें सुनाई देरही थीं, कि इतने में एक ओर फाटक अचानक खुल गया। फिर क्या था? मानसरोवर का सा बांध टूट पड़ा और कई सौ मनुष्य एक साथ भीतर घुस पड़े, पुलिस के आदमी और रेल के बाबू देखते रहगये। इसी समय स्टेशनमास्टर साहब लाल पीली आंखें किये फाटकपर पहुंचे, परन्तु इस दिखावटी क्रोध का भय वहाँ आज कौन करने वाला था? उलटे सब हसने लगे, स्टेशन मास्टर साहब को अपना सा मुंह लेकर लौट जाना पड़ा। धीरे २ सब मनुष्य भीतर पहुंच गये और प्लेटफार्म मनुष्यों से खचाखच भर गया।

अन्त को जिस आराध्य देव की पूजा और दर्शन के लिये दो तीन घंटे से केवल नगर निवासी ही नहीं, वरन् आसपास के समस्त क़स्बों और ग्रामों आदि के मनुष्य भक्ति की पुष्पांजलि लेकर उपस्थिति हुए प्रतीक्षा कर रहे थे, उसकी मनोहर मूर्ति धूमूयान पर चढ़ी हुई संध्या के ठीक तीन बजे पलक मारते २ सामने आ बिराजी। अब क्या था? उस अपार और शान्त हितभाग में बरसात मे चढ़ी गंगा यमुना की अगाध अदम्य धारा उमड़ पड़ी। अहा, क्याही विचित्र दृश्य आज यह क्षुब्ध सागर भरी भावना होकर सबको अत्यन्त प्रिय होरहा है! आज इसमें सब अपने आपको डुबानेके लिये आगे बढ़े चले जाते हैं। नेत्रों से निकली प्रेम-मन्दाकिनी में रंग कर सबका हृदय एकदम शरद्ऋतु की चाँदनी सा शुभ्र और स्वच्छ दिखाई देने लगा, कान एक साथ जयजयनाद से भर

गये, चंचल और कुटिल आंखें पथराई सी भी बेबश होकर आगे भाग निकलीं, सिर भी बड़े प्रयत्न के पश्चात पैरों के साथ यथास्थान जाही पहुंचा और जब गले से भी नहीं रहा गया, तो पूर्ण बल के साथ 'वन्देमातरम्' की मनोहर ध्वनि निकालने लगा। आध घण्टे तक पुलिस वाले किम् कर्त्तव्यं विमूढ़ के समान हो जहां के तहाँ खड़े रह गये। अन्त को भागीरथी यत्न के पीछे जब मनुष्य समुद्र मे आँधी कुछ घटी तो सबके नेत्र और हृदयों को तृप्त करता हुआ काई की भाँति मनुष्यजल को चीरता हुआ राजहंस स्टेशन के बाहर आया। मनुष्य बड़ी-भक्ति पूर्वक प्रेम और उत्साह में गद्गद हो अश्रुपूर्ण चक्षुसहित उनके चरण छू २ कर पदरज शिर से लगाने लगे, और जो पीछे वा दूर थे वे हाथ मल २ कर पछताने लगे।

स्टेशन के भीतर जैसा समारोह था बाहर भी उससे कुछ कम न था, लोग बड़े उत्कंठित हो बड़े उत्साह से किसी की प्रतीक्षा कर रहे थे, नेत्र स्टेशन की ओर लगे हुए थे। ऐसा ज्ञात होता था-मानों देवता और मनुष्य आज इकट्ठे होकर किसी की जय मनाने के लिये आये थे। अन्त को एक गाड़ी पर चढ़कर महाराज तिलक प्रेमपाश में बंधे हुए धीरे २ ठहरने के स्थान को चले। मनुष्यों की यह दशा थी कि हृदय-दुदुम्भी पर मन की चोट पड़ते ही जय २ का गम्भीर नाद बज उठता था। इस प्रकार कुछ ही मिनटों में महाराज तिलक यथास्थान पहुंचा दिये जाय।

* * * * *

संध्या के छः बजे का समय है, सभा के कार्य्य-कर्त्ता व्याख्यान कराने का प्रबंध कर रहे हैं। अहाता खचाखच

लोगों से भरा था, ऐसा ज्ञात होता था मानों लोग राष्ट्र का गौरव गान करने के लिये मंडप में एकत्रित हुये हैं। लोग एक भाव और एकही जातीयता की माला में पिरोये जान पड़ते थे जिनके नाम की पूजा लोग करते हैं, जिन्हें अपना हृदय-सम्राट कहते हैं, समाचार पत्रों में जिनका नाम पढ़तेही चित्त में भक्ति, प्रेम और उत्साह उत्पन्न होने लगता है, वही मनोहर मूर्ति कुछही समय में चक्षुओं के सामने आ खड़ी हुई, लोग व्याख्यान सुनने को उत्सुक हो उठे।

यह दशा मण्डप के भीतर थी, उसके बाहर और भी मनोहर दृष्य था, सहस्रों मनुष्यों का झुण्ड न जाने किसकी प्रतीक्षा में खड़ा था। भीतर स्थान नहीं, स्वयं-सेवक द्वार से भीतर घुसने नहीं देते, व्याख्यान कैसे सुनें? फिर भी मनुष्य न जाने किस ध्यान में मग्न थे, न ज्ञात क्या सोच रहे थे? क्या मण्डप के भीतर क्या अहाते के बाहर कोई एक उत्साह, उत्कण्ठा और एक भावनासी जान पड़ती थी।

यह भावना क्या है जो सबों के हृदयों में एक है? यह देवता कौन था जिसकी उपासना के लिये मनुष्य इतने उत्सुक हो रहे थे? क्या उस भावना, उस देवता और वस्तु को नाम बतलाने की आवश्यकता है? सभी पाठक जानते होंगे कि वह और कुछ नहीं, "मातृभूमिकी स्वाधीनता के लिये महाराज तिलक के मुखारविन्द से 'स्वराज का सन्देश' सुनना था"। उसीके लिये मनुष्य इतने लालायित हो रहे थे। इस समय जो भावना नगर के मनुष्यों के सामने उपस्थित है वह स्वराज्य है, उसीकी व्याख्या सुनने के लिये सब वहां एकत्रित हुए हैं।

अहा इस समय किसी भी कांग्रेस-अधिवेशन के समय

पंडाल के भीतर का वह दृश्य स्मरण हो आता है कि-'पंडाल में जितने मनुष्य एकत्रित होते हैं, उन सबके चेहरे पर एक ही तेज, नेत्रो में एकही प्रकाश और हृदयों में एकही इच्छा दिखलाई देती है। मातृभूमि के महत्व का एक शब्द भी आते ही पण्डाल तालियों की चटपट और बन्देमातरम की मधुर-ध्वनि से गूंज उठता है। किसी एक देशभक्त का नाम आते ही मनुष्यों के रक्त में उत्साह उत्पन्न होकर नवीन-शक्ति का संचार होने लगता है। यह सब समारोह उसी मातृ-भूमि की स्वाधीनता रूपी देवी की उपासना के लिये होता है—वही आज यहां है।

जो देखने वाले है, वह इस इच्छा के अपरमित-बल को जानते है। बढ़ी हुई भागीरथी के अनिवार्य्य जल-प्रवाह की भांति यह इच्छा विघ्न, बाधाओं को तोड़ती हुई मातृभूमि में बड़े वेग से बह रही है। उसी प्रकार जनता के हृदय में उत्पन्न हुई "स्वराज्य" आराधना की कामना रोकने की शक्ति किसमें है? जिन लोगों ने जानकर आँखे बन्द कर रखी है, उन्हें कौन सुभा सक्ता है? जो अज्ञात दशा में रहना पसन्द करें, उन्हें ज्ञान कौन करा सकता है? असम्भव को सम्भव कौन कर सक्ता है! हॉ इतना अवश्य है, कि जान-बूझ कर अंधेरे में रहने वालों के सामने दीपक लाकर रख दिया जासक्ता है। हम सब लोगों को जो देश की इच्छाको देखते हुए अनदेखा करना चाहते है, सचेत करना और बत लाना चाहते हैं कि "देशकी इच्छा अनिवार्य्य है, वह किसी प्रकार रोकी नहीं जा सक्ती।"

अस्तु; ठीक छः बजकर दस मिनट पर लोकमान्य का व्या-ख्यान आरम्भ हुआ, परन्तु सभा के कार्य्यकर्त्ता 'भारतदास"

के आठ बजे वाले वचन को नहीं भूले, वे बड़ी उत्सुकता से उनके आनेकी प्रतीक्षा कर रहते थे, इसी लिये उन सबकी दृष्टि बार २ सामने टंगी घड़ी पर पड़ती थी। साढ़े सात बज चुके थे, महाराज तिलकका "स्वराज्य" के ऊपर व्याख्यान समाप्त हुआ, स्वयंसेवक उन्हें ठहरनेके स्थान को पहुंचाने चले। इधर सभाके सदस्य "भारत दास" के आगमन की बाट जोह रहे थे, ज्यों २ समय वीतता जाता था, उनकी उत्कण्ठा प्रबल होती जाती थी। होते २ आठ बजे, इसी समय एक सज्जन ढीलाढाला गेरुआ कुर्त्ता पहने, नंगे सिर और नंगे पांव मंण्डप मे आखड़े हुए। सब सदस्य खड़े हो गये, अन्य मनुष्यों ने भी उनका अनुकरण किया। सभी की दृष्टि आये हुए सज्जन के मुखमण्डल पर पड़ी. जो कुछ उन्होंने देखा, उससे सब चकित हो गये, सबके सब चित्र लिखेसे देखते रह गये। ऐं! यह तो बा सोहनलाल हैं। उनमें इस "बिचित्र-परिवर्तन" को देखकर सबों को बड़ा विस्मय, आश्चर्य्य और हर्ष हुआ। क्षणमात्र के अचम्भे के पश्चात् सबोंने दुगुण प्रेम, और स्वाभिमान, उत्साह और राष्ट्रीयगौरव से भरे हुए स्वरमे बा० सोहनलाल का 'वन्देमातरम्' की ध्वनि के साथ अभिवादन किया।

मदन मोहन पितृभक्ति और स्वदेशानुरागके मद से उन्मत्त होकर नेत्रों में प्रेम और सम्मान के आंसू भरे हुए आगे बढ़े और पिता के श्री चरणों पर गिर पड़े, सोहनलाल ने उठा कर उन्हें छाती से लगा लिया और भरी सभामें उनका चुम्बन कर बोले—

'बेटा! यह तुम्हारे साहस, त्याग, आत्मबल, दृढ़संकल्प, स्वदेश प्रेम और सत्याग्रह का परिणाम है। ईश्वर घर २ ऐसे

पुत्र-रत्न उत्पन्न करे, जो अपने माता पिता, कुटुम्ब और देश का मुख उज्वल करने वाले हों। तुम्हारे ही कारण आजमें इस स्थिति और गौरवको पहुंचा हूं। तुम मेरे कुलमें कलंक लगाने वाले नहीं, वरन् उसका मस्तिष्क ऊंचा करने वाले सूर्य्य हो।

* * * * * * *

बा० सोहनलाल अब सपरिवार प्रसन्नता पूर्वक रहते हैं। पिता-पुत्र दोनों मिल कर तन, मन, धन से भारत की सेवा और 'स्वराज्य प्रचार' में लगे हुए हैं। बा० सोहनलाल स्थानीय स्वराज्यसभा के सभापति और बा० मदनमोहन प्रधान मंत्री (General Secretary) बना दिये गये हैं; उन्होंने भी अपना जीवन देश-सेवार्थ अर्पण कर दिया है। सरस्वती स्त्रियों में 'विद्या और स्वराज्य' का प्रचार कर रही है।

कुछ समय पश्चात् उसके दो पुत्र और एक पुत्री उत्पन्न हुई। बा० सोहनलाल का विचार है-नातियों को सब प्रकार पूर्ण योग्य बना 'भारत सेवक-समिति' (Servants of India Society) में सम्मलित करावें और नातिनी को पूर्ण दक्ष बना किसी देश सेवक योग्यवर के अर्पण कर दें।

पाठक! आपने 'विचित्र-परिवर्तन' देख लिया, अब हम भी यह शुभ कामना करते हुए कि-ईश्वर बा० सोहनलाल की भांति सभी स्वराज्य-विरोधियों और देश द्रोहियों में 'परिवर्तन' करें, और भारत शीघ्र ही अपने जन्मस्वत्वों का उपभोग करता हुआ अपनी प्राचीन-गरिमा को प्राप्त करके संसार के अन्य स्वंतत्रराष्ट्रों के सम्मुख अपना मस्तिष्क सर्वोच्च रखने योग्य हो—आपसे विदा चाहते हैं। ईश्वर भारत का कल्याण करे-यही हमारी हार्दिक इच्छा है।

इति शुभम्
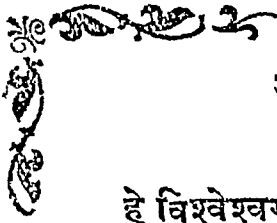
जन्म-भूमि-पूजन ।
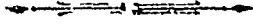
हे विश्वेश्वर देव सेव-जन-सुख संचारिणि !
हे सर्वेश्वर स्वर्ग जननि त्रय-ताप-निवारिणि !
हे मातः ! हे जन्मभूमि ! हे भ्रम, भय-नाशिनि !
हे बहुविधि-कल्याण-दायिनी, प्रीति विकाशिनि !

हे जननि ! स्वर्ग अपवर्ग दे ! हे करुणा वरुणालये !
हे सर्वलोक बन्द्ये शुभे ! हे जग-धात्रि निरामये !

करते हैं आह्वान आपका इस अवसर हम,
किन्तु सोच मन यही रहे है अपने हम—
तरुण-अरुण-जल-जात-सदृश ये चरण आपके,
कैसे अर्चित करें हरण सन्ताप दापके ?

हम लोगों का अधिकार कुछ है नन्दन वन में नहीं ।
शुचि पारिजात के सुमन शुचि यहां प्राप्त होंगे नही ॥

इससे हे प्रिय जन्मभूमि ! बनबन में फिर कर—
चुन चुन सुन्दर पुष्प गूंथ कर हार मनोहर,
होकर गद्गद् कण्ठ प्रीति-पूरणता पूरे—
रोकर अपना दुःख युगल-दृग जल से रूरे ॥

सज अर्घ्य वही निज अश्रुमय हे वरदे ! सप्रेम सब—
(हम) पूजन-हित प्रस्तुत हुए, हरिये आधि-व्याधि अब ॥
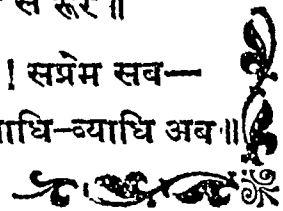
आपकी अनुपम, अमित, अतुल अनुकम्पा करके,
हृदय मातृजन-सुलभ बहुल वत्सलता भरके।
हम लोगों के अधम अपावन कर्म भुलाकर—
दर्श—सूर्य्य से हर्षित-हिय-जलजात फुलाकर॥

हे जननि! हमारे हृदय के आसन पर उपविष्ट हो।
दीजिये अभय जिससे न फिर कभी अधर्म अनिष्ट हो॥

हैं हम सब इस समय निपट निर्धनता पीड़ित,
तथा नितान्त निकृष्ट अलस-अवगुण से व्रीड़ित।
इसी हेतु पूजा-सामिग्री, शोभा संयुत—
कर न सके हम देवि! इस समय कुछ भी प्रस्तुत॥

पर तो भी ऐसा समझ कर हैं शरणागत हम सभी—
जननी सरोष होती नहीं अधम तनय पर भी कभी॥

इससे करके आत्म-समर्पण अब इस बेला,
सभी भुलाकर शोक, क्रोध, अवगुण, अवहेला।
कर प्रणाम साष्टांग आपको हर्षित होकर,
महा मोह, भय जनित हृदय दुर्बलता खोकर॥

हे जननि! विनय कर जोड़ कर करते हैं हम प्रेम से।
कर श्रवण उसे कर दीजिये पूर्ण हमें अब क्षेम से॥

खोकर निज साहस, सुबुद्धि सत्कर्म्म धर्म्म को,
तथा विचार, विवेक, वलित विज्ञान मर्म्म को।
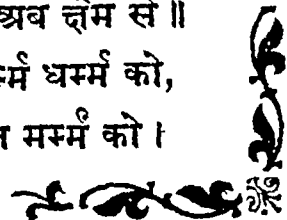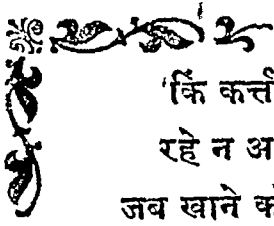
'किं कर्त्तव्यं विमूढ़' जननि ! हम हुए आज हैं,
रहे न अब अवशिष्ट शिष्ट-सम्मत-समाज हैं ॥
जब खाने को भी देश में नहीं पेट भर अन्न है,
तब अन्य विथा की क्या कहें ? तन मन तक अवसन्न है ॥
अन्न नहीं अब विपुल देश में काल अड़ा है;
पापी पामर प्लेग पसारे पांव पड़ा है।
दिन २ नई विपत्ति मर्म सब काट रही है,
उदरानल की लपट कलेजा चाट रही है ॥
हा ! बुरी विपति में ठोकरें खा २ करके हर घड़ी,
हम किसी तरह हैं सह रहे विषद विपद वेहर बड़ी ॥
यदि हम सब हे जननि ! आपको भूल न जाते,
यदि हम सब हर समय युक्त-योग्यता दिखाते।
यदि हम सब जातीय-एकता के गुण गाते,
यदि हम सब कर मेल फूट को मार भगाते ॥
यदि हम सब निज पूर्वजों की गौरव-गाथा लेखते-
तो कभी नहीं यह दुःखदा-दशा देवि ! हम देखते ॥
हे भगवति ! भ्रम-भीति-हरिणि भव्यता प्रदायिनि,
हे शरणागत दया परे ! हे मा अनपायनि !
हे सर्वज्ञे शान्तियुते ! हे दुष्ट विदारिणि !
हे सज्जन हित-रते ! प्रचुर-पाखण्ड निवारिणि !
हे सुभगे, सुखदे, शक्ति दे, जय प्रदे सब काल में !
हो करावलम्बन अम्ब ! इस जाड्य-जटित दुख जाल में ॥
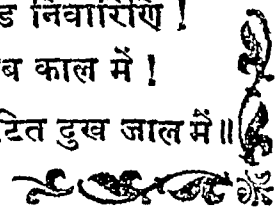
स्वतंत्रता ।

यद्यपि नाना भोग परम मन-मोहक होते,
शुचि, सुरम्य बहु दृश्य नेत्र सुख दायक होते ।
होते हैं प्रिय मित्र, नारि, धन, रत्न ख़ज़ाना,
पाकर कतिपय भोग धन्य माने जग नाना ॥
अध्ययन, दान, तप आदि में यदपि अलौकिक सुख भरा,
पर जो स्वतंत्रते ! तू नही तो समस्त सुख विष भरा ॥

स्वतंत्रते ! गुंजार तुम्हारी कैसी प्यारी ?
बार २ हे देवि ? प्राण तुझ पै बलिहारी ।
वीणा मधुमय बजी जहां तू गई उचारी ॥
हो उठती प्रस्फुटित हृदय की कली हमारी ॥
मन कर उठता नृत्य है तव केक देखि ज्यों मेघको ।
जी करता तव रंग में रंग दें सारे देश को ॥

पशु, पक्षी भी प्रेम देवि ! तुमसे करते हैं,
जब तक रहती शक्ति तुम्हारे हित लड़ते हैं ।
जर्जर होवे देह, कटे किन बोटी बोटी,
पर वे करते भक्ति तुम्हारी कभी न खोटी ॥
आहुति दे दें प्राणकी शुचि तव रक्षा-याग में,
हे देवि ! विश्वही मग्न है तव अनुपम अनुराग में ॥
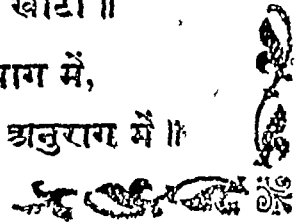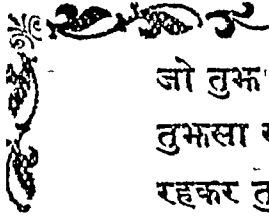
जो तुझ मे आनन्द देवि ! वह और कहाँ है ?
तुझसा सच्चा हितू विश्वका और कहाँ है
रहकर तुझसे पृथक बड़ाई किसने पाई ?
तुझ विहीन को देश उन्नति जिन कर पाई ?
तव विहीन जीवन नहीं उससे तो मरना भला।
धिक ! धिक !! धिक !!! उस देश को जहाँ न चमकी तव कला॥३॥
तेरे हित हैं अमित लोग निज रक्त बहाते,
तेरी रक्षा हेतु मनुज संग्राम मचाते।
है तेरे ही लिये द्रव्य जल-सरस बहाते,
हैं तुझ पर ही शूर शीष बलिदान चढ़ाते॥
तुझपर निज सर्वस्व सब करें निछावर हर्ष से।
हो पवित्र सब भूत तव चरण-रेणु संस्पर्श से॥
इन्द्र सदृश्य हो राज्य मिले धन-पति-भण्डरा,
तथा बृहस्पति ज्ञान-तेज-रवि सरिस अपारा।
मिले उदधि गम्भीरय्यशौर्य्य राजर्षि भीष्मसा,
बाण-कुशलता पार्थ-सरिस बल अतुल भीमसा॥
कामदेव सम रूप भी मिले हृदय-मोहन-ललित।
तदपि स्वतंत्रते! तुझ बिना तुच्छ तुच्छ सब कुछ घृणित॥
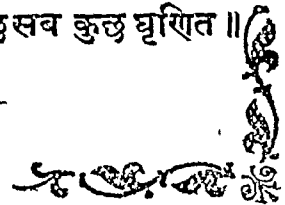
'कृतज्ञता प्रकाश'

[१]

पुस्तक के आरम्भ में जो 'मेरी प्रतिज्ञा' नामक कवित्त है, वह हमको सरस्वती आदि से नहीं, वरन् गोरस स्टुडिओ बनारस के संचालक महोदय की कृपा से प्राप्त हुई है, जो आपने लाला भगवानदीन द्वारा अपने 'मेरी प्रतिज्ञा' नामक चित्र के लिये बनवाई थी। उसके लिये हम 'विशेष विवरण' में लिखना भूल गये थे। अब हम आपके प्रति कृतज्ञता प्रकाश करते हैं।

[२]

काशी निवासी श्रीयुत् बा० श्रीप्रकाशजी बी० ए० एल एल०बी० बारएटला ने एक बार हमारी पुस्तक को पढ़ने और यत्र तत्र अपनी उचित सम्मतियों द्वारा पुस्तक की त्रुटियों को सम्भालने का जो भार अपने उपर लिया और उसमें जो परिश्रम किया है, उसके लिये हम बाबू साहब के हृदय से कृतज्ञ हैं। आपने हमारे ऊपर जो कृपा की और पुस्तक की त्रुटियां दूर करने में जो परिश्रम किया, उसे हम कभी नहीं भूल सक्ते, सदैव आपके ऋणी रहेंगे।

(लेखक)

क्षमा-याचना।

[१]

हमारा विचार पुस्तक को सर्वांग सुन्दर बनाने का था, परन्तु समय ने हमें ऐसा करने की आज्ञा नहीं दी। हमको पुस्तक कांग्रेस के समय तक तयार करानी थी, क्योंकि

इसका प्रचार शीघ्र और सब स्थानों में चाहते हैं और नके लिये यही सर्वोत्तम अवसर था, परन्तु पुस्तक केवल एक मास पूर्व ही प्रेस में दी गई, इससे वह हमारे मनानुसार सुन्दर न हो सकी, इसके लिये हमें हृदय से खेद है—

[२]

हमारा विचार था कि हम पुस्तक में कई राष्ट्रीय-चित्र दें, परन्तु समय की न्यूनता के कारण हम यह भी नहीं कर सके, इसके लिये भी हमें वहुत दुख है।

(३)

हमारा विचार पुस्तक को भारतमाता के सच्चे सपूत माननीय मालवीय जी को समर्पण करने का था, परन्तु समय की न्यूनता और श्रीमान के पंजाब-कार्य्य में लवलीन रहने के कारण हम माननीयजी की अनुमति नहीं मगा सके, इसकेलिये भी हमें हृदय से दुख है। हमारा समर्पण पृष्ठ तयार था, वह योंही रह गया, इससे अधिक क्या दुख होगा ?—

४

शीघ्रता के कारण प्रूफ ठीक संशोधित नहीं हो सका इसलिये यत्रतत्र त्रुटियां रह गईं हैं, दुख है—

इन समस्त त्रुटियों के लिये हमें बड़ा दुख और खेद है, परन्तु क्या करें, विवश थे, पाठकों से इसके लिये क्षमा चाहते हैं और विश्वास दिलाते हैं, कि आगामी संस्कार में इन सव त्रुटियों को दूर करने का वहुत कुछ प्रयत्न करेंगे फिर भी हमें आशा है कि हमारे सहृद पाठकगण त्रुटियों पर ध्यान न दे पुस्तक की उपयोगिता और गुण देखकर हमें क्षमा करेंगे।

प्रकाशक।

नागरी-ग्रन्थ-रत्न-माला

हम ने हिन्दी भाषा में उक्त नाम की एक माला निकालनी आरम्भ की है, जिसमें नागरीके उत्तम २ लेखकों द्वारा लिखी हुई सामाजिक, राजनैतिक, जीवनचरित्र, उपन्यास, नाटक, आचारशास्त्र, इतिहास, नवीनविचार, आदि सब भांति की सामयिक पुस्तकें प्रकाशित होंगी। हम हिन्दीहितैषी सज्जनोंसे प्रार्थना करते हैं कि वे कृपा कर मालाके स्थायी ग्राहक होकर हमारे उत्साह को बढ़ावें जिस में हम उत्तरोतर राष्ट्र-भाषाकी सेवा करनेमें समर्थ होसकें। स्थायी ग्राहको के नियम यहहैं:-

(१) स्थायी ग्राहक बनने के लिये आरम्भ में ॥) प्रवेश शुल्क देना पड़ेगा, जो पुनः लौटाया नहीं जायगा।

(२) स्थायी ग्राहकों को माला की समस्त पुस्तकें पौने मूल्य में दी जाया करेंगी।

(३) वर्ष में कम से कम ५) की पुस्तकें लेनी पड़ेंगी, ग्राहक होने से पहिले प्रकाशित हुई पुस्तकों का लेना न लेना ग्राहकों की इच्छा पर है; ग्राहक एक से अधिक भी पुस्तकें यदि चाहें तो ले सक्ते हैं।

(४) प्रत्येक ग्रन्थ के तयार होनेके दस दिवस पूर्व उसके मूल्य आदि की सूचना ग्राहकों को दी जायगी, फिर वी० पी० भेजा जायगा, जो ग्राहक बिना किसी कारण के सूचना दिये बिना वी० पी० वापिसकर देंगे उन्हें डाक-व्यय देना पड़ेगा। ग्रन्थ-मालाका प्रथम रत्न यह “ विचित्र परिवर्तन ” नामक उपन्यास आपके सम्मुख उपस्थित है। दूसरा रत्न :—

बेन्जेमिन फ्रेंकलिन } के सम्पूर्ण बड़े जीवन-
सरवाल्टर स्कोट } तयार किये जा रहे हैं, य

माला में प्रकाशित होंगे। स्वामी सत्यदेव परिव्राजक की
पुस्तकें माला में और फुटकर प्रकाशित होंगी, मूल्य
मात्र रखे जांयगे। मनुष्य के अधिकार, संजीवनी बूटी
शिक्षा का आदर्श सब से प्रथम प्रकाशित किये जायंगे।

और भी अन्य पुस्तकों को तयार करने का प्रबन्ध
जा रहा है। शीघ्र ग्राहक श्रेणी में नाम लिखाइये। मा
स्थायी ग्राहकों को सब पुस्तकें पौन मूल्य में मिलेंगी।

माला के अतिरिक्त हमारे यहां अन्य सब स्थानों की उ
हिन्दी की पुस्तकें मिलती है, स्थान २ से मंगाने की अ
एक ही स्थान से मंगाने मे अधिक सुभीता रहेगा तथा
व्यय में भी बचत होगी, सूचना पर पुस्तकें तुरन्त भेजी जाती

पत्र व्यवहार का पताः—

नागरी साहित्य भूषण भण्डार—क